कोटा राज्य में जागीर प्रथा
(1818 से 1947 ई. तक)

JAGIR SYSTEM IN KOTA STATE
[1818 TO 1947 A.D.]

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा
की पीएच.डी. (इतिहास) उपाधि हेतु प्रस्तुत
शोध प्रबन्ध
(समाज विज्ञान संकाय)

शोधार्थी
सुनिता ओझा

निर्देशक
डॉ. हुकम चन्द जैन

इतिहास विभाग
राजकीय कला महाविद्यालय कोटा (राज.)

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा (राज.)
2019

CERTIFICATE

I feel great pleasure in certifying that the thesis entitled ''कोटा राज्य में जागीर प्रथा (1818 से 1947 तक)'' by Sunita Ojha has been done under my guidance. She has completed the following requirements as per Ph.D. regulations of the University.

(a) Course work as per the university rules.

(b) Residential requirements of the university (200 days)

(c) Regularly submitted annual progress report.

(d) Presented her work in the departmental committee.

(e) Published/Accepted two research paper in referred research journal.

I recommend the submission of the thesis.

Date

Dr. Hukum Chand Jain
Research Superviser

ANTI-PLAGIARISM CERTIFICATE

It is certified that Ph.D. Thesis Titled **"JAGIR SYSTEM IN KOTA STATE (1818-1947 A.D.)"** in History by **SUNITA OJHA** has been examined by me with the following anti-plagiarism tools. I undertake the followings:

a. Thesis has significant new work /knowledge as compared already published or are under consideration to be published elsewhere. No sentence, equation, diagram, table, paragraph or section has been copied verbatim from previous work unless it is placed under quotation marks and duly referenced.

b. The works presented is original and own work of the author (i.e. there is no plagiarism). No ideas, processes, result or words of others have been presented as author's own works.

c. There is no fabrication of data or results which have been compiled and analyzed.

d. There is no falsification by manipulating research materials, equipment of processes,or changing or omitting data or results such that the research is not accurately represented in the research record.

e. The thesis has been checked using- plagiarismchecker.com, and found within limits as per HEC plagiarism policy and instructions issued from time to time.

SUNITA OJHA
Research Scholar

Date

Dr. HUKUM CHAND JAIN
Research Supervisor

Date

शोध सार

राजपूतानें के राजनीतिक एवं सामाजिक जीवन में जागीर प्रथा एक आधारशिला के रुप में जीवन्त बनी रही। स्वतन्त्रता से पूर्व की राजस्थान की विभिन्न रियासतों में जागीरी व्यवस्था पर शोध व साहित्य सृजन की दिशा में उल्लेखनीय कार्य हुआ है। कर्नल टॉड द्वारा यूरोप के सामन्तवाद व राजस्थान के सामन्तवाद का तुलनात्मक अध्ययन भी किया गया है। विभिन्न भारतीय लेखकों ने यूरोप व राजस्थान की सामन्ती व्यवस्था के मध्य अन्तर को स्पष्ट करते हुए राजस्थान के सामन्तवाद की विशेषताओं पर प्रकाश डाला है। राजस्थान की विभिन्न रियासतों में जागीरी व्यवस्था में कुछ साम्यताएँ देखने को मिलती हैं तो कुछ असमानताएँ भी।

कोटा राज्य की जागीर प्रथा का अनुशीलन राजस्थान के इतिहास में अभी तक रेखांकित नहीं किया गया है। यद्यपि कोटा राज्य के इतिहास पर डॉ. मथुरालाल शर्मा (कोटा राज्य का इतिहास भाग–I II) डॉ. जगतनारायण (कोटा के महाराव उम्मेदसिंह द्वितीय एवं उनका समय), डॉ. गीता यादव (कोटा राज्य की सैन्य परम्परायें) आदि के शोध कार्य हुए हैं किन्तु इनमें चयनित विषय को अत्यन्त ही आंशिक रुप से स्पर्श किया गया है। प्रस्तुत शोध इस रिक्तता को भरने की दिशा में एक लघु प्रयास है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध 6 अध्यायों में विभाजित है। प्रथम अध्याय में कोटा राज्य के उद्‌भव, भौगोलिक परिचय एवं कोटा राज्य के राजनीतिक इतिहास की संक्षिप्त जानकारी दी गई है। इसके साथ ही राजपूताने के सन्दर्भ में जागीर प्रथा की विवेचना प्रस्तुत की गई है।

द्वितीय अध्याय में कोटा राज्य में जागीर प्रथा के उद्‌भव एवं कोटा नरेशों के समय इस व्यवस्था में हुए परिवर्तनों पर प्रकाश डाला गया है। इस अध्याय में जागीरी प्रथा के मौलिक सिद्धान्तों, जागीरदारों की उपाधियों व उनके आधार पर प्रकाश डालते हुए कोटा राज्य के प्रमुख जागीरी ठिकानों का संक्षिप्त वर्णन प्रस्तुत किया है।

तृतीय अध्याय में कोटा राज्य की दिसम्बर 1817 में हुई कम्पनी से सन्धि एवं सन्धि के पश्चात् जागीर प्रथा के स्वरुप में आये परिवर्तनों का तुलनात्मक अध्ययन

प्रस्तुत किया गया है। इस अध्याय में कम्पनी प्रशासकों एवं जागीरदारों के परस्पर सम्बन्धों की विवेचना भी की गई है।

चतुर्थ अध्याय में जागीरदारों के राजनीतिक एवं वित्तीय अधिकारों के साथ वित्तीय एवं सैन्य कर्तव्यों का उल्लेख है। साथ ही कोटा में हुए राजनीतिक कुचक्रों में जागीरदारों की भूमिका की विवेचना भी प्रस्तुत की गई है।

पंचम अध्याय में जागीरदारों के धार्मिक एवं पारिवारिक उत्सवों, सामाजिक रीति–रिवाजों में उनके प्रभाव, जागीरदारों के किसानों के साथ सम्बन्धों पर चर्चा की गई है। इस अध्याय में जागीरी क्षेत्रों में जागीरदारों द्वारा करवाये गये लोक–कल्याणकारी कार्यों एवं कला के क्षेत्र में जागीरदारों के योगदान का उल्लेख भी किया गया है।

षष्ठम् अध्याय में शोध विषय से सम्बन्धित मूल निष्कर्ष एवं सुझावों का समावेश किया गया है। सार तथा प्रस्तुत शोध प्रबन्ध अन्वेषित विषय को विशुद्ध रुप में भावी शोधार्थियों एवं अन्य जिज्ञासुओं के सम्मुख प्रामाणिक आधार व मौलिक स्त्रोतों द्वारा प्रस्तुत करने का श्रम साध्य प्रयास है।

स्थान – कोटा

सुनिता ओझा
शोधार्थी

Candidate's Declaration

I, hereby, certify that the work which is being presented in the thesis, entitled "कोटा राज्य में जागीर प्रथा (1818 से 1947 ई. तक)" in partial fulfilment of the requirement for the award of the Degree of Doctor of Philosophy , carried under the supervision of Dr. Hukum Chand Jain, Former Principal Commerce College, Kota and submitted to the university of Kota represents my ideas in my own words and where others ideas or words have been included I have adequately cited and referenced the original sources. The work presented in the thesis has not been submitted elsewhere for the award of any other degree or diploma from any institutions. I also declare that I have adhered to all principles of academic honesty and integrity and have not misrepresented or fabricated or falsified any idea/data/fact/source in my submission. I understand that any violation of the above will cause for disciplinary action by the University and can also evoke penal action from the sources which have thus not been properly cited from whom proper permission has not been taken when needed.

Date

Sunita Ojha
Research Scholar

This is to certify that the above statement made by Sunita Ojha (RS/652/13) is correct to the best of my knowledge.

Date

Dr. Hukum Chand Jain
Research Superviser

प्राक्कथन

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध ''कोटा राज्य में जागीर प्रथा (1818 से 1947 ई. तक)'' कोटा राज्य के गौरवशाली इतिहास में अपनी विशिष्टताओं के साथ महत्वपूर्ण स्थान रखती है। यह प्रथा राज्य की शासन व्यवस्था से अभिन्न रुप से जुड़ी हुई थी। प्रस्तुत शोध में कोटा राज्य के उद्‌भव, भौगोलिक परिचय एवं कोटा राज्य के राजनीतिक इतिहास की संक्षिप्त जानकारी साथ ही जागीरी प्रथा के मौलिक सिद्धान्तों, जागीरदारों की उपाधियों, कोटा राज्य के प्रमुख जागीरी ठिकानों, जागीरदारों के राजनीतिक एवं वित्तीय अधिकारों, सैन्य कर्तव्यों एवं जागीरदारों के धार्मिक एवं पारिवारिक उत्सवों, सामाजिक रीति–रिवाजों में उनके प्रभाव व किसानों के साथ सम्बन्धों पर चर्चा की गई है।

इस शोध की प्रस्तुति मेरे अथक श्रम से अधिक उन अध्येताओं के सहयोग एवं आशीर्वाद की ऋणी है जिन्होंने इसकी दुर्लभ सामग्री के संयोजन एवं इसके आलेखन को सहज बनाया है। मेरे परम सम्मानीय गुरू एवं शोध निदेशक डॉ. हुकम चन्द जैन (पूर्व प्राचार्य राजकीय वाणिज्य महाविद्यालय, कोटा) से मुझे प्रतिपाद्य विषय में शोध की प्रेरणा मिली ओर एक स्वप्न देखने का अवसर मिला। इस स्वप्न को साकार रूप देने का श्रेय मै अपने गुरूदेव को देना अपना परम धर्म समझती हूँ। मुझे इस शोध में उनका पग–पग पर मार्गदर्शन एवं सहयोग मिला। उनका आभार प्रकट करने में मैं अपने शब्दकोष को असहाय पा रही हूँ। मौन साधना मे लीन, दिखावे से दूर और अपनी ही धुन में कार्यरत रहने वाले डॉ. जैन से शोध की सूक्ष्मदृष्टि का प्रशिक्षण पाना मेरा सौभाग्य रहा।

मैं सम्मानीय गुरुदेव डॉ. अरविन्द सक्सेना (सेवानिवृत उपाचार्य, कॉलेज शिक्षा) का आभार प्रकट करती हूँ जिन्होंने अपना अमूल्य समय देकर इस शोध–प्रबन्ध के सम्बन्ध में मुझे ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्यीय चेतना प्रदान की, वहीं कार्य–कारण विश्लेषण करने की प्रज्ञा से अनुप्राणित किया। मैं राजकीय कला महाविद्यालय कोटा के इतिहास विभागाध्यक्ष डॉ. बाबूसिंह नरुका एवं विभाग के सदस्यों डॉ. निधि शर्मा एवं डॉ. उषा व्यास का उनके द्वारा प्रशस्त मार्गदर्शन हेतु आभार प्रकट करती हूँ। शोध प्रबन्ध रचना में जिन विद्वान लेखकों की कृतियों का उपयोग है उन्हें उद्धरित करते

हुए मैं उनके प्रति आभार प्रकट करती हूँ। मैं राजकीय महाविद्यालय कोटा के पुस्तकालय, मण्डल पुस्तकालय, सी.ए.डी. सर्किल, कोटा, महाराव भीमसिंह पुस्तकालय, रामपुरा, कोटा के समस्त कर्मचारियों की सहयोगात्मक तत्परता के प्रति आभार प्रकट करती हूँ। मैं राजस्थान राज्य अभिलेखागार शाखा कोटा में कार्यरत श्री पूरणमल कोली एवं प्राच्य शोध संस्थान के शोध निदेशक श्री ख्यालीराम मीणा का भी आभार व्यक्त करती हूँ जिन्होंने मेरे अन्वेषण में सहानुभूतिपूर्ण रुचि लेकर शोध से सम्बन्धित तथ्यों के बारे में पाण्डुलिपियों से सत्यापन करा, मुझे कोटा राज्य की जागीरी प्रथा (सन् 1818 से 1947 ई.) के ऐतिहासिक यथार्थ को साक्ष्य के रुप में प्रस्तुत करने में सहयोग दिया।

मैं कोटा के जागीरी ठिकानों के जागीरदारों एवं अन्य व्यक्तियों जिन्होंने शोध के सम्बन्ध में अनछुए पहलुओं की जानकारी देकर मेरी मदद की, के प्रति कृतज्ञता प्रकट करती हूँ। मैं अपनी माता श्रीमती दुर्गा ओझा एवं पिता श्री रामनारायण ओझा के प्रति कृतज्ञता प्रकट करती हूँ जिन्होनें मुझे यह शैक्षणिक पृष्ठभूमि दी जिससे जीवन के वास्तविक धरातल से सामंजस्य कर ऐतिहासिक अन्वेषण के प्रति सचेतक होने की प्रेरणा मिली। आभार की इस कड़ी में मैं अपने पति श्री जितेन्द्र सिंह के योगदान को भी नहीं भुला सकती जिनके सहयोग ने मुझे प्रेरणा प्रदान की तथा इस कार्य को निरापद बनाने की हर एक कोशिश की। इस शृंखला में अपने पुत्रों चार वर्षीय अभ्युदय सिंह एवं एक वर्षीय अभिजय सिंह को भी साधुवाद देना चाहूँगी जिनकी हर मधुर मुस्कान और मन–भावन किलकारियों ने मुझे स्फूर्तिवान बनाये रखा।

मैं अपने मित्रों एवं शुभचिन्तकों श्रीमती दिव्या पुरोहित, श्री प्रियदर्शी पारीक, श्री नीलेश कुमार नामा, श्री मनमोहन मालव, श्री चन्द्रप्रकाश मीणा, श्री राहुल शर्मा, श्री मोहम्मद शरीफ अंसारी, श्री कपिल सनाढ्य, श्री जयमीन शास्त्री एवं मेरे भाई–बहिनों रत्ना, सोना, अजय, विजय का आभार प्रकट करती हूँ जिन्होंने शोध की इस कठिन डगर में मेरा सहयोग करते हुए मेरा उत्साहवर्धन किया और मुझे कर्मठ बनाये रखा।

स्थान – कोटा

सुनिता ओझा
शोधार्थी

अनुक्रमणिका

क्रम संख्या	विषय–सूची	पृ.सं.
	प्रथम अध्याय **प्रस्तावनाः कोटा राज्य की पृष्ठभूमि**	**1–26**
(क)	कोटा राज्य का उद्‌भव	
(ख)	कोटा राज्य का भौगोलिक परिचय	
(ग)	कोटा राज्य का संक्षिप्त राजनीतिक इतिहास	
(घ)	राजपूताने के सन्दर्भ में जागीर प्रथा	
	द्वितीय अध्याय **कोटा राज्य में जागीर प्रथा का उद्‌भव व विकास**	27–67
(क)	जागीरी प्रथा के मौलिक सिद्धान्त	
(ख)	जागीरदारों की उपाधियाँ व उनके आधार	
(ग)	कोटा के प्रमुख जागीरी ठिकानें	
	तृतीय अध्याय **कोटा राज्य की कम्पनी से सन्धि तथा उसके पश्चात् जागीर प्रथा का स्वरुप**	68–107
(क)	पूर्वकालीन जागीरी प्रथा पर कम्पनी प्रभाव के परिवर्तन	
(ख)	जागीरदारों की विभिन्न श्रेणियाँ व उनमें परिवर्तन के कारण	
(ग)	ब्रिटिश व जागीरदार सम्बन्ध	
	चतुर्थ अध्याय **जागीरदारों की शक्तियाँ, अधिकार एवं कर्त्तव्य**	108–145
(क)	राजनीतिक शक्तियाँ	
(ख)	वित्तीय अधिकार एवं कर्तव्य	

(ग)	सैन्य कर्तव्य	
(घ)	राजनीतिक कुचक्रों में जागीरदारों की भूमिका	
	पंचम अध्याय **जागीर प्रथा के अन्तर्गत सामाजिक व सांस्कृतिक स्थिति**	146–186
(क)	जागीरदारों के पारिवारिक एवं धार्मिक उत्सव	
(ख)	सामाजिक रीति–रिवाज एवं जागीरदार के प्रभाव	
(ग)	किसान एवं जागीरदार	
(घ)	जागीर क्षेत्रों में लोक कल्याणकारी कार्य एवं कला के क्षेत्र में योगदान	
	षष्ठम् अध्याय **सिंहावलोकन**	187–191
	• **शोध सारांश**	192–209
	• **संदर्भ ग्रन्थ सूची**	210–216
	• **छाया चित्र**	217–224
	• **प्रकाशित शोध–पत्र**	

प्रथम अध्याय

कोटा राज्य की पृष्ठभूमि

प्रथम अध्याय

कोटा राज्य की पृष्ठभूमि

भारतवर्ष के ऐतिहासिक प्रान्त राजस्थान का हाड़ौती प्रदेश अपने आँचल में प्रागैतिहासिक काल से लेकर आधुनिक काल तक विभिन्न संस्कृतियों को समेटे हुए भारतीय इतिहास के पृष्ठों पर अपनी यात्रा के गौरावान्वित इतिहास को समृद्धिशाली रूप में प्रस्तुत करता है।

आज कोटा राजस्थान के सात सम्भागों में एक प्रमुख सम्भाग है वैसे ही पूर्व में कोटा रियासत राजस्थान की प्रमुख रियासतों मे से एक महत्वपूर्ण रियासत थी। कोटा सम्भाग का इतिहास कोटा नगर से काफी पुराना है। इस क्षेत्र में प्राचीन नदी चर्मण्यवती एवं काली सिन्ध का प्रवाह रहा है और उनके साथ ही साथ विभिन्न सभ्यताओं का विकास होता रहा एवं अनेक राजवंशों का इस भू–भाग पर अधिकार रहा। पुरातात्विक अवशेषों से हमें इस क्षेत्र के प्राचीन ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक महत्व की जानकारी मिलती है।[1]

पौराणिक साहित्य मे चर्मण्यवती (चम्बल) का उल्लेख मिलता है। पौराणिक उल्लेख के अनुसार ययाति के बड़े पुत्र यदु को चर्मण्यवती (चम्बल) बेत्रावती (बेतवा) एवं शक्तिमती (केन) द्वारा सिंचित भू–भाग दिया गया था जबकि अन्य पुत्र द्रुध्य को यमुना का पश्चिमी एवं चम्बल का उत्तरी क्षेत्र दिया गया था।[2]

रामायण काल में कोटा क्षेत्र मध्य भारत में विदिशा का एक भाग था।[3] इस क्षेत्र में बौद्ध प्रभाव भी रहा है। झालावाड़ जिले मे डग क्षेत्र के कौलवी में हीनयान सम्प्रदाय की 100 बौद्ध गुफाओं का समूह है।[4] मालवों और मौखरियों का भी इस क्षेत्र पर प्रभाव रहा है। प्राचीनता की दृष्टि से अभी तक यहाँ गंगधार (शिलालेख जो चौथी शताब्दी से इस क्षेत्र मे वैष्णव व शाक्त धर्म की विद्यमानता सिद्व करता है) में आर्य सभ्यता के प्रमाण मिले हैं[5] तो केशवरायपाटन मे कुषाण काल के, अन्ता के पास बड़वा से 295 वि0 संवत के मौखरी वंश के यूप अभिलेख मिले हैं[6] जो इस क्षेत्र में

वैदिक यज्ञों के प्रचलन को सिद्ध करते हैं। कोटा जिले के दरा में भीमचौरी के शिव मन्दिर एवं कैथून के पास चारचौमा का शिवमंदिर गुप्तकालीन वास्तु शिल्प को दर्शाते हैं।

कौलवी, विनायगा, हाथियागौड़ में प्रसिद्व बौद्ध गुफा है तथा कन्सुआ, चन्द्रावती, बाडोली, शेरगढ़ मे सातवीं आठवीं शताब्दी के सुन्दर मन्दिर हैं। यहाँ परमारों का राज्य रहा है तथा अटरु विलास, काकूनी, चाचोरनी आदि उनके केन्द्र हैं। इसके कुछ हिस्सों पर गौड़, तँवर एवं खींचियों का भी समय–समय पर अस्तित्व रहा है। शाहाबाद में चौहानवंशीय नरेशों ने राज्य किया है।[7] यहाँ खुजराहो शैली का मलयवर्मन द्वारा निर्मित रामगढ़ में एक सुन्दर शिवमन्दिर है।[8]

ऐतिहासिक दृष्टि से प्राचीन काल से इतना महत्वपूर्ण होते हुए भी एक समय ऐसा आया जबकि प्रदेश का गौरव क्षीण हो गया। चौहानों एवं परमारों का राज्य समाप्त होकर स्थानीय कबीलों का आधिपत्य स्थापित हो जाने से अराजकता व्याप्त हो गई। तत्पश्चात परिस्थितियाँ पुनः परिवर्तित हुई तथा कोटा राज्य का उद्भव हुआ।

(क) कोटा राज्य का उद्भव

कोटा राज्य के उद्भव का इतिहास काफी प्राचीन है। यहाँ प्राचीनकाल की महत्ता का धूमिल होना एवं अस्त व्यस्तता होने का कारण अलाउद्दीन खिलजी द्वारा चौहान एवं परमार वंशों को हराना रहा। परमारों एवं चौहानों के पतन के बाद इस क्षेत्र में व्याप्त अव्यवस्था का लाभ उठाकर भील एवं मीणा जाति के लोगों ने इसे अपना अधिकार क्षेत्र बना लिया था। कोटिया नामक एक भील ने आस–पास के मार्गों पर अपना प्रभाव स्थापित कर लिया था तथा आने जाने वाले काफिलों को वह लूट लेता था। इसका केन्द्र अकेलगढ़ था। इस क्षेत्र में भीलों का काफी बाहुल्य था। पहले इन भीलों पर बून्दी नरेश समरसी ने आक्रमण किया था जिसमें 900 भील तथा 300 हाड़ा सैनिक मारे गये थे परन्तु कोटिया भील के जंगल में भाग जाने से उसे पूरी तरह दबाया न जा सका।[9]

कर्नल टॉड़, सूर्यमल्ल मीसण दोनों ने कोटा क्षेत्र को प्राप्त करने का श्रेय जैतसी को दिया जो कि समरसी का पुत्र था। वंश भास्कर में उल्लेख है कि बून्दी के शासक समरसी ने अपने पुत्र जैतसी का विवाह कैथून के तँवर सरदार की पुत्री से किया था।[10] महत्वाकांक्षी राजकुमार जैतसी ने अपने लिए एक स्वतन्त्र राज्य स्थापित करने की योजना बनाई और अकेलगढ़ के भीलों पर आक्रमण कर दिया। कोटिया भील इस युद्व में मारा गया तथा जैतसी ने विक्रम संवत 1321 (1264 ई0) में इस क्षेत्र पर अपना अधिकार कर लिया तथा कोटिया की बलि के नाम पर इस स्थान का नाम कोटा रखा।

जैतसी द्वारा 1264 ई. में इस भू–भाग की प्राप्ति के समय से ही कोटा नगर की स्थापना मानी जा सकती है।[11] इसी समय से कोटा का परगना बून्दी के राजकुमार की जागीर के रुप में रहने लगा।[12] समरसी के पश्चात उसका ज्येष्ठ पुत्र नापू जी बून्दी के सिंहासन पर बैठा और जैतसिंह कोटा में राज्य करता रहा।[13] यह क्रम जहाँगीर के शासनकाल के अन्तिम समय तक चलता रहा।

जैतसी के बाद उसका उत्तराधिकारी उसका पुत्र सुर्जन एवं बाद में पौत्र धीरदेह बना। जैतसी के वंश में 16 वीं सदी में वीरम कोटा का शासक था। वह सुस्त एवं प्रमादी था तथा कोटा का शासन अपने भाई कान्ह को सौंपकर अधिकतर बून्दी में रहता था। इस कमजोरी का लाभ उठाकर माण्डू के सुल्तानों का सहयोग पाकर केसर खाँ व डोकर खाँ नामक दो भाइयों ने 1546 ई. में कोटा पर अधिकार कर लिया। 26 वर्ष पश्चात बून्दी के राव सुर्जन ने भदाना के निकट एक विकट युद्ध कर पठानों से कोटा वापस छीन लिया और कोटा को अपने पुत्र भोज के सुपुर्द कर दिया। इस प्रकार 26 वर्ष मुसलमानों के अधिकार में रहकर कोटा पुनः हाड़ाओं के अधीन आ गया।[14]

राव सुर्जन ने बाद में अकबर से सन् 1569 में सन्धि की थी। अतः कोटा, बून्दी दोनों मुगल प्रभाव में आ गए थे। सुर्जन की मृत्यु के बाद भोज बून्दी का उत्तराधिकारी बना। भोज ने कोटा अपने द्वितीय पुत्र हद्यनारायण को दे दिया और इस हेतु सम्राट अकबर से स्वीकृति भी प्राप्त की थी[15] जिसने 15 वर्ष तक कोटा में शासन किया।

बून्दी के शासक राव भोज की 1607 ई. में मृत्यु के पश्चात् उसका ज्येष्ठ पुत्र रावरतन बून्दी की गद्दी पर बैठा।[16] रावरतन ने जहाँगीर के काल में मुगल दरबार में ऊँचा स्थान प्राप्त किया था। वह पाँच हजारी मनसबदार बना और सर बुलन्द राय व रामराज की उपाधि से अंलकृत हुआ। उसको केसरिया निशान और नक्कारे आदि चिन्ह प्राप्त हुये तथा वह जहाँगीर के साम्राज्य का स्तम्भ माना जाने लगा।

रावरतन का द्वितीय पुत्र माधोसिंह अपने पिता के साथ जहाँगीर के लिए दक्षिण में अनेक लड़ाईयों में भाग ले चुका था। शहजादा खुर्रम द्वारा बुरहानपुर के घेरे के समय वह वीरता के साथ मुकाबला करने पर अत्यधिक प्रसिद्धि पा चुका था।[17] शहजादा खुर्रम को जब बन्दी बनाया गया तो माधोसिंह के पास रखा गया था। एक ओर खुर्रम को जब बन्दी बनाने पर रावरतन पर जहाँगीर की विशेष कृपा हो गई थी वहीं दूसरी ओर बन्दी की स्थिति में माधोसिंह द्वारा खुर्रम से अच्छा व्यवहार रखने से खुर्रम उससे प्रसन्न हो गया था।[18] कहा जाता था कि स्वयं जहाँगीर ने राव रतन को इस बात के लिए प्रेरित किया था कि वह अपने छोटे पुत्र माधोसिंह को कोटा का स्वतन्त्र शासक बना दे। रावरतन ने यद्यपि जहाँगीर के आदेश से ही माधोसिंह को कोटा का शासक नियत किया था[19] परन्तु उसको कोटा राज्य का फरमान 1631 ई. में रावरतन की मृत्यु के पश्चात् शाहजहाँ द्वारा प्रदान किया गया था।[20] यहीं से कोटा के स्वतन्त्र राज्य की स्थापना होती है।

रावरतन की मृत्यु के उपरान्त संवत 1688 (1631 ई.)में माधोसिंह ने राज्याभिषेक कराकर महाराजाधिराज की पदवी धारण की। राज्याभिषेक के समय बादशाह ने माधोसिंह को खिलअत (राजकीय पोशाक) प्रदान की एवं 2500 जात और 2000 सवारों का मनसब प्रदान किया।[21] इस समय कोटा राज्य सीमित था। यह उत्तर में बड़ौद तक, पूर्व में पलायथा और मांगरोल तक, दक्षिण मे मुकुन्दरा पर्वत श्रेणी व शेरगढ़ तक तथा पश्चिम में चम्बल के बायें किनारे तक नान्ता आदि पाँच गाँवों तक था।[22] उस समय इस क्षेत्र में 360 गाँव थे और आमदनी दो लाख रुपयें वार्षिक थी।[23]

माधोसिंह ने मुगल साम्राज्य के मुख्य मनसबदार के रुप में महत्वपूर्ण सेवाएँ दीं। माधोसिंह ने शाहजहाँ के लिए मध्य एशिया में लड़ाईयाँ लड़ी। खानेजहाँ लोदी

के विद्रोह के दमन में माधोसिंह ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी थी। इससे प्रसन्न होकर माधोसिंह के मनसब में 500 की वृद्धि कर और वे तीन हजारी मनसबदार बना दिये गये।[24] सूर्यमल्ल मीसण के अनुसार बादशाह ने माधोसिंह को जीरापुर, खैराबाद, चेचट व खिलचीपुर के चार परगने दिये परन्तु ठाकुर लक्ष्मणदान ने लिखा है कि इस वीरता के उपलक्ष में माधोसिंह को 17 परगने और मिले थे।[25] बल्ख एवं बदक्शां के युद्धों से लौटने पर सम्राट ने माधोसिंह को बारां और मऊ के परगने जो बून्दी नरेश के पास थे, भी दिये।[26]

राव माधोसिंह ने अनेक शाही अभियानों में भाग लिया एवं मुगल साम्राज्य की सेवा की। उनको बादशाह से पंच हजारी मनसब के अतिरिक्त नक्कारा एवं एक निशान भी मिला था एवं राजा की पद्वी प्राप्त हुई थी।[27] राव माधेसिंह की मृत्यु के समय कोटा में 43 परगने और 2000 गाँव थे। इस प्रकार 1631 ई0 में कोटा के स्वतन्त्र राज्य की स्थापना होती है। राव माधोसिंह पूर्ण रूप से कोटा के स्वतन्त्र राजा बनाये गये और कोटा का सीधा सम्बन्ध मुगल सम्राट से स्थापित हो गया। अब कोटा किसी भी अंश में बून्दी का मातहत नहीं रहा था।

(ख) कोटा राज्य का भौगोलिक परिचय

कोटा रियासत राजस्थान में जिसे कि पहले राजपूताना कहा जाता था उसके दक्षिण पूर्व भाग में स्थित थी।[28] यहाँ पर चौहान वंशीय हाड़ा राजपूतों के शासन के कारण इस संभाग को हाड़ौती नाम दिया गया जिसमे प्रारम्भ में बून्दी एवं कोटा राज्य थे बाद में इसमें झालावाड़ राज्य भी जुड़ गया। कोटा, बून्दी और झालावाड़ जिलों का भू भाग हाड़ौती, हाड़ा राजपूतों के शौर्य, पराक्रम और उनकी कलात्मक अभिरूचियों के लिए प्रसिद्ध है मगर साथ ही यह अनादिकाल से ही मानव की क्रीडास्थली भी रही है। इसका कारण है इसकी खूबसूरत भौगोलिक संरचना और गहरी प्राकृतिक सम्पन्नता।

इसके उत्तर पश्चिम और पूर्व में विन्ध्य पर्वत श्रेणियाँ और मध्य में मुकुन्दरा पर्वत हैं। ये पर्वत प्रहरी की भाँति खड़े जहाँ एक ओर इस क्षेत्र की रक्षा करते हैं वहीं दूसरी ओर पानी से भरे बादलों को यहाँ बरसने के लिए बाध्य कर देते हैं। चम्बल,

काली सिन्ध, पार्वती और परवन नदियों की सलिल धाराएँ इसे वर्ष भर आप्लावित करती रहती हैं और यहीं इनसे आकर मिलती हैं।[29]

विधिवत रूप से कोटा राज्य की स्थापना चौहान वंशीय हाड़ा राजपूतों द्वारा की गई थी। प्रारम्भ से ही कोटा नगर इस राज्य का केन्द्र व राजधानी रहा है। हाड़ाओं के आगमन से पूर्व यह प्रदेश मालवा प्रदेश का एक भाग था। हाड़ौती का पठार राजस्थान के दक्षिण पूर्व में $23^0$51'से $25^0$27 उत्तरी अक्षांश एवं $75^0$15 से $77^0$25 पूर्वी देशान्तर के मध्य स्थित है। यह राजस्थान का एक सीमावर्ती भाग है जिसकी पूर्वी–दक्षिणी एवं उत्तरी–पश्चिमी सीमा वर्तमान में क्रमशः सवाई माधोपुर, टोंक, भीलवाड़ा एवं चित्तौड़ जिलों से मिलती है।[30] हाड़ौती के उत्तर में ढूँढाड़, पश्चिम में मेवाड़ एवं पूर्व में मालवा के क्षेत्र है।[31]

हाड़ौती क्षेत्र मुख्यतया कटे–फटे पठार से युक्त चम्बल के मध्य अपवाह वाला भाग है। संरचना की दृष्टि से हाड़ौती क्षेत्र में ऊपरी विंध्यन समूह की चट्टाने हैं। इन चट्टानों में अनेक शैलाश्रय निर्मित हैं। इस क्षेत्र की मध्य समुद्र तल से औसतन ऊँचाई 300 मीटर है। यह मालवा का ऊपरी पठार है जिसमें अनेक प्राकृतिक विविधताएँ हैं।

डॉ. भट्टाचार्य के अनुसार यह भूभाग उच्च धरातल एवं निम्न धरातल का एक अस्पष्ट एवं भ्रमात्मक सम्मिश्रण है।[32] चम्बल एवं उसकी सहायक नदियाँ इसके मध्यवर्ती भाग में है जो कि पहाड़ियों से घिरी हुई हैं जबकि दक्षिण भाग पहाड़ी धरातल वाला है। दक्षिण पश्चिमी भाग उष्ण भूमि वाला है। उत्तर–पश्चिम में इसकी सीमा अरावली की भ्रंश सीमा को छूती है जबकि इसकी पूर्वी सीमा राजस्थान के साथ–साथ बुन्देलखण्ड की सीमा तक जाती है।[33] इसका ढाल दक्षिण पश्चिम से उत्तर पूर्व में है। भू आकृति, ऊँचाई, संरचना एवं अपवाह के आधार पर हाड़ौती क्षेत्र को निम्नानुसार विशिष्ट भौतिक प्रदेशों में बाँटा जा सकता है।[34]

- ☐ पहाड़ी श्रृंखला
- ☐ नदीय भाग
- ☐ उच्च भूमि – शाहाबाद

☐ झालावाड़ का पठार

☐ उच्च भूमि – डग गंगधार

कोटा की भौगोलिक स्थिति

वर्तमान में कोटा नगर हाड़ौती क्षेत्र का मुख्य केन्द्र स्थल है। कोटा राजस्थान प्रान्त के दक्षिण पूर्व में स्थित है।[35] कोटा नगर $25^0$15 उत्तरी अक्षांश और $75^0$50 पूर्वी देशान्तर के मिलन बिन्दु पर बसा है। यहीं चम्बल नदी हाड़ौती के पठारी प्रदेशों को छोड़कर उपजाऊ मैदानी भागों में प्रवेश करती है। समुद्र तल से इस नगर की ऊँचांई 265 मीटर है।[36] कोटा नगर में चम्बल नदी की बहुत गहरी दरारें हैं जिसके कारण इसमें सदैव पानी भरा रहता है। नगर बसाने के लिए इस स्थान को चुनने का कारण भी सम्भवतः यही हो सकता है। भूमि का सामान्य ढाल दक्षिण से उत्तर की ओर है।

नगर के दक्षिण भाग की कठोर चट्टानें भूमि के धरातल हैं लेकिन नगर की उत्तरी और पूर्वी भागों में चट्टानें मिट्टी की परत से ढँकी हैं। इस कारण नगर में भूमिगत जल कम उपलब्ध होता है। नगर के आस पास कुछ बावडियाँ हैं जिनमें पानी चट्टानों की दरारों में बहता हुआ आता है। कहीं–कहीं कुएँ भी मिलते हैं। चम्बल नदी के कारण भूमिगत जल का अभाव नहीं खटकता है। कोटा नगर के निकट आकर चम्बल नदी के किनारे व पाट चौड़े हो जाते हैं। इसके अलावा नगर के आस–पास 12 तालाब राजकुमार धीरदेह ने 14 वीं शताब्दी में खुदवाये थे जिनमें बड़ा तालाब, छोटा तालाब, अभेड़ा और सूर सागर मुख्य हैं।[37]

जलवायु

कोटा राज्य की जलवायु उष्ण मानसूनी है। मानसून के आधार पर यहाँ वर्षा में दो मौसम होते है। पहला उत्तर पूर्व मानसून जो कि जनवरी से जून तक चलता है और दूसरा दक्षिण पश्चिमी मानसून जो कि जून से दिसम्बर तक चलता है। उत्तर–पूर्वी मानसून के अन्तर्गत जनवरी फरवरी में शीत और मार्च के मध्य से जून तक ग्रीष्म तथा दक्षिण–पश्चिमी मानसून के अन्तर्गत जून से सितम्बर तक वर्षा और अक्टूबर से दिसम्बर तक लौटते हुए मानसून की ऋतुएँ होती हैं।

जनवरी–फरवरी में तापमान अधिकतम 20^0 डिग्री सेल्सियस होता है एवं वायुमण्डल स्वच्छ रहता है। मार्च में तापमान तेजी से बढ़ता है और जून में यह 48^0 डिग्री सेल्सियस हो जाता है। अप्रेल में धूलभरी आँधियाँ और मई में लू चलती है। पथरीला प्रदेश होने के कारण आँधियाँ अधिक नहीं चलती किन्तु लू का प्रकोप अधिक रहता है। जून के अन्त में वर्षा प्रारम्भ हो जाती है। कोटा की औसत वर्षा 20^0 डिग्री सेन्टीमीटर है जिसका दो तिहाई भाग तो जुलाई और अगस्त में ही प्राप्त हो जाता हैं। वर्षा के कारण तापमान धीरे–धीरे कम होने लगता है। अक्टूबर से मानसून लौटने लगता है लेकिन कभी– कभी दीपावली पर बंगाल की खाड़ी से चक्रवात आ जाते हैं जिससे कुछ वर्षा भी हो जाती है।[38]

प्राकृतिक सम्पदा

कोटा जिला प्राकृतिक सम्पदाओं से परिपूर्ण है। इस भूमि में अनेक सम्पदाएँ छिपी हुई है। चूना, इमारती पत्थर, रंगीन पत्थर आदि यहाँ से प्राप्त होते है। कोटा स्टोन नामक हरे, सफेद, मूंगिया, स्लेटी पत्थर की यहाँ खाने तथा मण्डियाँ हैं। यहाँ से इनका निर्यात किया जाता है। इस जिले के वनों से गोंद, शहद,महुआ, लकड़ी तथा घास आदि सामग्री प्राप्त होती है जिससे इस क्षेत्र में रहने वाले निवासी अपनी जीविका उपार्जन करते हैं।[39]

(ग) कोटा राज्य का संक्षिप्त राजनीतिक इतिहास

1631 ई. से पूर्व तक कोटा का अस्तित्व बून्दी की जागीर के रूप में रहा। 1631 ई. में राव माधोसिंह के नेतृत्व में कोटा के स्वतन्त्र राज्य की स्थापना हुई। 1631 ई. से 1648 ई. तक राव माधोसिंह का शासन रहा। 1648 ई. में माधोसिंह की मृत्यु के बाद उनका सबसे बड़ा पुत्र मुकुन्दसिंह गद्दी पर बैठा। इसके शासनकाल में मुगलों का उत्तराधिकार युद्ध 14 अप्रेल सन् 1658 ई. को हुआ। मुकुन्दसिंह दाराशिकोह के पक्ष में लड़े। 1658 ई. में उज्जैन के निकट धरमत के युद्ध में मुकुन्दसिंह अपने तीनो भाईयों समेत मारे गये। राव मुकुन्दसिंह के बाद उनके पुत्र राव जगत सिंह 14 वर्ष की आयु में गद्दी पर बैठे। उनका अधिकांश समय मुगल मनसबदार के रूप में दक्खन में व्यतीत हुआ। वे निःसंतान मृत्यु को प्राप्त हुये। उनके

बाद कोयला के प्रेमसिंह कुछ समय के लिए गद्दी पर बैठे किन्तु उन्हें अक्षमता के कारण कोटा राज्य के जागीरदारों ने अपदस्थ कर दिया।[40]

प्रेमसिंह को गद्दी से हटाकर जब सामंतों ने किशोरसिंह को कोटा राज्य सौंपा उस समय यह शासन करने के लिए काफी वृद्ध थे किन्तु कोटा की अव्यवस्थित राजनीतिक व्यवस्था को सही नेतृत्व प्राप्त हो गया था। किशोरसिंह माधोसिंह के सबसे छोटे पुत्र थे जो फतेहबाद के युद्ध में बच गये थे। वे कोटा की गद्दी पर 1684 ई0 में बैठे।[41] वे भी मुगल मनसबदार के रूप में दक्खन अभियान में गये। उन्होंने मराठों के विरूद्ध युद्ध लड़े और बीजापुर के घेरे में प्रसिद्धि प्राप्त की। अर्काट के घेरे के दौरान वे युद्ध में मारे गये।[42]

राव किशोरसिंह ने अपने बड़े पुत्र बिशनसिंह को अपने साथ दक्खन चलने का आदेश दिया था जिसकी बिशनसिंह ने अवहेलना की। अतः किशोरसिंह ने उन्हें अपने उत्तराधिकार से वंचित कर दिया और उन्हें अन्ता की जागीर दे दी।[43] राव किशोरसिंह ने अपने द्वितीय पुत्र रामसिंह को अपना उत्तराधिकारी घोषित किया। रामसिंह ने अपने पिता के साथ दक्खन के मुगल अभियान में भाग लिया था।

राव किशोरसिंह की मृत्यु के पश्चात बिशनसिंह ने कोटा की गद्दी पर अपना हक जताया किन्तु रामसिंह ने मुगल सम्राट से मान्यता प्राप्त कर ली। रामसिंह दक्खन से कोटा आए उन्होंने मुगलों की मदद से अपने भाई बिशनसिंह को आंवा के निकट युद्ध में परास्त कर दिया[44] और कोटा के शासक बन गये। इसके शीघ्र बाद रामसिंह दक्खन लौट गये यहाँ उन्होंने जिंजी किले को मुगलों की ओर से जीतकर ख्याति अर्जित की। औरंगजेब की मृत्यु के बाद उत्तराधिकार के लिए हुए युद्ध में राव रामसिंह ने राजकुमार आजम का साथ दिया और उसकी ओर से लड़ते हुए जाजव के युद्ध में वीरतापूर्वक मारे गये। नूराबाद में लाकर उनका विधिपूर्वक अंत्येष्टि संस्कार किया गया।[45]

रामसिंह के बाद भीमसिंह कोटा की गद्दी पर बैठे। माधोसिंह के पश्चात उनके वंशजो में भीमसिंह प्रथम (1707–1720 ई.) अपनी वीरता के लिए प्रसिद्ध हैं। उन्होंने अनेक लडाईयाँ जीती। कोटा राज्य की सीमा का उनके समय में काफी विस्तार हुआ। राजनीतिक दृष्टि से भी वह सजग शासक थे। उनको 5000 जात एवं

5000 सवार का मनसब प्राप्त हुआ तथा माही मरातिब से सम्मानित किया गया। कोटा के शासकों में महाराव का पद प्राप्त करने वाले वह प्रथम शासक थे। बादशाह फर्रूखसियर ने इनको महाराव की पदवी से विभूषित किया था।[46] दिल्ली में फर्रूखसियर व सैयद भाईयों के समय भीमसिंह का बून्दी से निरन्तर झगड़ा रहता था।[47] करवर ठिकाने ने महाराव भीमसिंह के विरूद्ध विद्रोह का झण्डा उठाया। उसके विरूद्ध भी भीमसिंह ने सफलतापूर्वक युद्ध किया। महाराव भीमसिंह सैयद भाईयों की ओर से मालवा के विरूद्ध युद्ध लड़ते हुए मारे गये।

महाराव भीमसिंह की मृत्यु के पश्चात उनके सबसे बड़े पुत्र अर्जुनसिंह गद्दी पर बैठे। उन्होंने तीन वर्ष तक शासन किया। अर्जुनसिंह की मृत्यु के बाद 1724 ई. में उनके भाई दुर्जनसाल कोटा के शासक बने।[48] दुर्जनसाल सिंह ने मेवाड़ व शाहपुरा के साथ जयपुर रियासत के विरूद्ध उत्तराधिकार के युद्ध में भाग लिया। दुर्जनसाल के कोई पुत्र नहीं था। अतः 1756 ई. में उनकी मृत्यु के बाद उनके परिवार में से अजीतसिंह कोटा के नरेश बने। उन्होंने केवल दो वर्ष शासन किया।

उनके बाद उनके पुत्र शत्रुसाल प्रथम कोटा के शासक बने। महाराव शत्रुशाल ने 7 वर्ष (1759–1766) तक शासन किया। उनके कार्यकाल की सबसे प्रमुख घटना भटवाड़ा का युद्ध (1761) था जिसमे कोटा की सेना ने जयपुर की सेना को परास्त किया।[49] महाराव शत्रुशाल के कोई पुत्र नहीं था। उनके बाद उनका भाई गुमानसिंह गद्दी पर बैठा। महाराव गुमानसिंह के बाद उनके पुत्र उम्मेदसिंह ने 10 वर्ष की आयु में गद्दी संभाली। गुमानसिंह ने अपने पुत्र के संरक्षक के रूप में अपने साले जालिमसिंह को नियुक्त किया।[50]

जालिमसिंह बड़ा ही महत्वाकांक्षी था। अतः शासन की वास्तविक शक्तियाँ जालिमसिंह ने बड़ी चालाकी से अपने हाथ में ले ली। जालिमसिंह नान्ता का शक्तिशाली जागीरदार और रियासत का फौजदार था। उसने लगभग 45 वर्ष तक राज्य में अपना प्रभाव बनाये रखा। जालिमसिंह ने ही कोटा के महाराव एवं अंग्रेजों के बीच दिसम्बर 1817 में एक सन्धि करवाई जिसके द्वारा कोटा ब्रिटिश सरकार का संरक्षित राज्य बन गया। साथ ही सन्धि में यह शर्त रखी कि कोटा के महाराव

कोटा के राजा होंगे लेकिन शासन की वास्तविक शक्ति झाला जालिमसिंह एवं उसके वंशजो के हाथ में रहेगी।[51]

झाला जालिमसिंह अपने युग का राजस्थान का विलक्षण व्यक्ति, चालाक, चतुर और कूटनीतिज्ञ था। एक ओर उसने कोटा की मराठों एवं पिण्डारियों से रक्षा की और कोटा की शासन व्यवस्था को सुव्यवस्थित किया तो दूसरी ओर उसने अपने मालिक कोटा के महारावों के साथ विश्वासघात किया। वह ऊपर से उनका सम्मान करता रहा एवं भीतर से उनकी शक्ति को हीन बनाता रहा। वह अन्दर ही अन्दर अपने वंश का राज्य स्थापित करने के लिए झालाओं की छावनी को अपना केन्द्र बना अपनी शक्ति एवं धन संग्रह में लगा रहा। झाला जालिमसिंह राजस्थान का पहला ऐसा व्यक्ति था जिसने यह महसूस कर लिया था कि अंग्रेजों की ताकत को भारत में नहीं रोका जा सकता है इसलिये उसने कोटा राज्य को सबसे पहले अंगेजों के साथ सन्धि में बाँधा।

महाराव उम्मेदसिंह की 1819 में मृत्यु के बाद उनके पुत्र किशोरसिंह द्वितीय कोटा की गद्दी पर बैठे। महाराव किशोरसिंह द्वितीय ने जालिमसिंह व अंग्रेजों द्वारा सन्धि के उक्त गुप्त प्रावधान का विरोध किया[52] जिसके द्वारा जालिमसिंह वास्तविक शासक बन बैठा था। महाराव किशोरसिंह ने सन 1821 में मांगरोल नामक स्थान पर झाला जालिमसिंह की सर्वोच्चता को उखाड़ने के लिए युद्ध किया परन्तु उन्हें असफलता ही हाथ लगी।[53]

बाद में मेवाड़ के महाराणा के हस्तक्षेप से ईस्ट ईण्डिया कम्पनी ने महाराव किशोरसिंह से एक समझौता किया और कोटा की गद्दी पुनः किशोरसिंह को लौटा दी। जालिमसिंह की 1824 ई. में 84 वर्ष की की आयु में मृत्यु हुई और उसके बाद उसका पुत्र माधोसिंह उसका उत्तराधिकारी बना। 1828 ई. में महाराव किशोरसिंह द्वितीय की मृत्यु के पश्चात उनके भतीजे रामसिंह गद्दी पर बैठे।

झालाओं से कोटा नरेश की मुक्ति का समय किशोरसिंह के पुत्र रामसिंह द्वितीय के समय मे आया जबकि झाला जालिमसिंह के पौत्र मदनसिंह को 1838 ई. में कोटा रियासत में से पन्द्रह लाख का राज्य देकर नये राज्य झालावाड़ का राजा बनाया गया।[54] महाराव रामसिंह द्वितीय के काल की दूसरी प्रमुख घटना 1857 ई. की

क्रांति थी। जबकि बागियों ने लाला हरदयाल कायस्थ एवं मेहराब खाँ पठान के नेतृत्व में कोटा में ब्रिटिश रेजिडेण्ट मेजर बर्टन का वध कर दिया और कोटा शहर पर अपना कब्जा कर लिया परन्तु क्रान्तिकारी दिल्ली, लखनऊ जाने की अपेक्षा कोटा राज्य को हड़पने की होड़ में संघर्ष करने लगे तब महाराव की सेना ने करौली की सेना एवं अंग्रेजी सेना की सहायता से इनको परास्त कर समाप्त कर दिया।

महाराव रामसिंह द्वितीय के पश्चात महाराव शत्रुशाल द्वितीय कोटा के राजा बने। उस समय रियासत की आर्थिक स्थिति गम्भीर थी। महाराव के अनुरोध पर ब्रिटिश सरकार ने नवाब सर फैजअली खाँ को महाराव की सहायता हेतु भेजा। उनके समय कोटा के शासन के अधिकार अधिकांश समय कौसिंल के हाथ में रहे। इस कौसिंल को नवाब सर फैजअली द्वारा सन् 1881 में स्थापित किया गया था जिसमें तीन मेम्बर थे–पलायथा के आप अमरसिंह, राजगढ़ के आप कृष्णसिंह और पंडित रामदयाल।[55]

महाराव शत्रुशाल की 1889 ई. में मृत्यु के पश्चात उनके गोद आए कोटड़ा ठिकाने के जागीरदार के पुत्र उम्मेदसिंह द्वितीय गद्दी पर बैठे। महाराव उम्मेदसिंह द्वितीय आधुनिक कोटा के निर्माता माने जाते हैं। उन्होंने 1886 ई. से 1940 ई. तक पचास वर्षों से अधिक समय तक कोटा पर राज्य किया। वे जब महाराव बने तब कोटा एक पिछड़ा राज्य था। उन्होंने अपने कुशल प्रशासन एवं प्रजावत्सलता की भावना से राज्य की चहुँमुखी प्रगति कर इसे राजस्थान के शीर्ष राज्यों की श्रेणी में पहुँचा दिया। उनके समय में कृषि, शिक्षा, चिकित्सा, सार्वजनिक निर्माण, सुरक्षा आदि सभी विभागों में अभूतपूर्व प्रगति हुई। रेल, डाक, टेलीफोन, तार, सहकारी बैंक, नल, बिजली आदि अनेक सुविधाओं का कोटा राज्य में आगमन हुआ। निर्माण कार्य की दृष्टि से तो महाराव उम्मेदसिंह कोटा के शाहजहाँ माने जाते हैं। उनकी सफलता में उनके दो सलाहकार दीवान चौबे रघुनाथदास एवं उनके गुरू एवं व्यक्तिगत सचिव मुंशी शिवप्रताप का विशेष हाथ रहा। मुंशी शिवप्रताप ने ही आज के कोटा के राजकीय महाविद्यालय की हर्बट हाईस्कूल के रूप में स्थापना में अभूतपूर्व योगदान दिया। अंग्रेजों ने महाराव उम्मेदसिंह को कई उपाधियाँ व 19 तोपों की सलामी का अधिकार दिया। शासन सूत्र पूर्णरूप से अपने हाथ में लेने पर महाराव उम्मेदसिंह ने

राजकार्य ऐसी उत्तमता से किया कि साम्राज्ञी विक्टोरिया ने प्रसन्न होकर सम्वत 1956 (दिसम्बर सन् 1899 ई.) में इनको के.सी.एस.आई. की उपाधि से सम्मानित किया।[56] उनके समय में गर्वनर जनरल एवं वायसराय लार्ड कर्जन 1902 में, गवर्नर जनरल वायसराय लार्ड लिटन 1925 में तथा गवर्नर जनरल वायसराय लार्ड इरविन 1929 में कोटा यात्रा पर आए।

महाराव उम्मेदसिंह की मृत्यु के पश्चात 1940 ई. में महाराव भीमसिंह द्वितीय कोटा नरेश बने।[57] भारत की स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय महाराव भीमसिंह द्वितीय ही कोटा के नरेश थे। मार्च 1948 ई. को कोटा ने अपने साथ राजस्थान के 9 राज्यों[58] को लेकर एक राजस्थान संघ की स्थापना की तथा कोटा को राजधानी के रूप में स्वीकार किया गया। 25 मार्च 1948 को वी.एन.गाडगिल द्वारा राजस्थान संघ का उद्घाटन किया गया तथा कोटा के महाराव को राजप्रमुख बनाया। इसके उपरान्त कोटा वृहद राजस्थान में मिल गया तथा बाद में इसका आधुनिक राजस्थान में विलय हो गया।

स्वतन्त्रता के बाद में कोटा का एक औद्योगिक नगरी एवं विद्युत उत्पादन केन्द्र के रूप में विकास हुआ। स्वतन्त्रता के पश्चात एवं राजस्थान का निर्माण होने पर हाड़ौती के तीन राज्यों कोटा, बून्दी और झालावाड़ को तीन जिलो में परिवर्तित कर दिया गया। बाद में 10 अप्रेल 1991 में कोटा जिले में से बारां जिले का निर्माण किया गया।[59]

कोटा के राजस्थान राज्य में विलय के पश्चात राजनीतिक दृष्टि से पिछड़ा होने के कारण कुछ समय तक तो इसकी प्रगति रूकी रही लेकिन कुछ ही काल में कोटा के लिए चर्मण्यवती वरदान साबित हुई तथा पानी, बिजली तथा बड़ी रेल लाईन की सुविधा के कारण कोटा की औद्यौगिक प्रगति प्रारम्भ हुई और कोटा आज राजस्थान का प्रमुख औद्योगिक नगर हो गया है। उद्योगों की प्रगति के साथ–साथ अब इस नगर का सर्वांगीण विकास होता जा रहा है। उद्योगों के साथ–साथ यहाँ इस अल्प समय में शिक्षा, साहित्य, कला, खेलकूद एवं सांस्कृतिक क्षेत्रों में भी अभूतपूर्व प्रगति हुई हैं। शैक्षणिक नगरी के रूप में अब कोटा नगर देश के मानचित्र पर उभर कर सामने आया है।

(घ) राजपूताने के सन्दर्भ में जागीर प्रथा

मध्यकालीन राजस्थान के जन जीवन में सामन्ती प्रथा का विशिष्ट स्थान रहा है। राजस्थान के राजपूत राज्यों में सामन्त व्यवस्था का उद्‌भव वहाँ के शासकों की कुलीय परम्परा से हुआ था। राज्य केवल शासक की सम्पत्ति नहीं था अपितु कुलीय सामन्तों की सामूहिक धरोहर भी था। प्रत्येक राज्य में सर्वोपरि स्थान शासक का होता था तथा शासक के बाद राज्यों में महत्वपूर्ण स्थान सामन्तों का था। लगभग प्रत्येक राज्य का संगठन कुलीय भावना पर आधारित था। शासक 'कुल का नेता' होने के कारण राज्य में उसका विशेष महत्व था।[60] राज्य के सामन्त अपने आपको कुलीय सम्पत्ति (राज्य) का हिस्सेदार मानते थे।[61]

राज्य की स्थापना के साथ ही सामन्तों का अस्तित्व आरम्भ हो गया था। राजा इन सामन्तों के सहयोग से ही राज्य की स्थापना व इसकी सीमा में विस्तार करने में सक्षम हुआ था। सामन्त गण अपने को राजा के अधीन नहीं बल्कि उसका सहयोगी समझते थे। उनका राजा के साथ बन्धुत्व एवं रक्त का सम्बंध था, स्वामी और सेवक का नहीं। शासक और सामन्तों के बीच भाई–बन्धु के इस सम्बंध के कारण ही शासक की स्थिति 'बराबर वालों में प्रथम' के समान थी। सामन्त घरेलू और राजनीतिक मामलों में सामाजिक समानता का दावा करते थे। यद्यपि अन्य कुलों के राजपूतों को उनकी सेवाओं को ध्यान में रखते हुए जागीरें दी जाती थी तथापि राज्य के महत्वपूर्ण एंव विश्वसनीय पदों पर सामान्यतः स्वकुलीय सामन्तों को ही नियुक्त किया जाता था। एक ही कुल के सदस्य होने के कारण तथा स्वामी धर्म के सिद्वान्त से उत्प्रेरित होकर वे राजा की सेवा करने के लिए सदैव तत्पर रहते थे। युद्व के समय सामन्त राजा की सहायता करते थे क्योंकि उनमें यह भावना निहित थी कि वे अपनी पैतृक सम्पत्ति की सामूहिक रूप से रक्षा करने हेतु ऐसा कर रहे हैं।[62]

राजा की ओर से अपने भाई–बेटों को जीवनयापन हेतु भूमि दे दी जाती थी जो उनकी वंशानुगत जागीर के रूप में बनी रहती थी। राजा अपने सामन्तों को 'भाई जी' और 'काकाजी' आदि आदरसूचक शब्दों से सम्बोधित करते थे। इसी प्रकार सामन्त भी राजा को 'बापजी' कहकर सम्बोधित करते थे क्योंकि राजा उनके वंश का मुखिया था और वह कुल का प्रतिनिधित्व करता था।[63]

स्वकुलीय सामन्त जो अपनी–अपनी खांप के 'पाटवी' थे व अपने अधीन क्षेत्र में एकाधिकार शासक के रूप आचरण करते थे। वे रावत, राव, रावराजा जैसी सम्मानसूचक पदविंयाँ धारण करते थे। सामान्यतः वे 'ठाकुर' कहलाते थे। सामन्त कई खांपों में विभक्त थे। प्रत्येक खांप का एक मुखिया या पाटवी होता था। ठाकुर भी अपने भाई–बेटों को जीवन निर्वाह के लिए अपनी जागीर में से भूमि वितरित करता था। ठाकुर अपने उप सामन्तों की मदद से अपनी जागीर में शांति व सुव्यवस्था कायम रखने सम्बन्धी कर्तव्यों का पालन करता था। ये उप सामन्त अपने पाटवी के प्रति पूर्ण निष्ठावान होते थे। ठिकाने की जमीयत (बिरादरी की सेना) इन्हीं की सैनिक टुकडियों से बनी होती थी और राज्य के विभिन्न ठिकानेदारों की सैनिक टुकड़ियों को मिलाकर राजकीय सेना का गठन होता था जिसका प्रयोग देश की रक्षार्थ व उसकी सीमा विस्तार हेतु किया जाता था। धीरे–धीरे राज्य में एक ही खांप के कई स्वतंत्र ठिकाने स्थापित हो गये थे फिर भी वे सभी अपने 'पाटवी' (प्रथम) ठिकानेदार को ही अपना नेता मानते थे और उसके प्रति निष्ठा बनी रहती थी। ठिकानों के सैनिक अपने ठाकुर को ही सर्वस्व मानते थे। इस प्रकार उस समय राजपूत राज्य एक शिथिल संघ व्यवस्था के रूप में था जिसमें अनेक स्वतन्त्र व अर्द्धस्वतन्त्र प्रशासनिक इकाइयों का जमघट था।[64]

राजस्थान के राज्यों में स्वकुलीय सामन्तों के अतिरिक्त अन्य समकक्ष राजपूत सामन्त भी होते थे। कोटा नरेश मुकुन्द सिंह ने हाड़ा राजपूतों के अतिरिक्त सोलंकी, कछवाहों, राठौड़ों, चन्द्रावत, तँवर, पँवार, बड़गुर्जर, झाला, राजपूतों को भी जागीरें दी थीं। इनके अतिरिक्त गुर्जर, मीणा, अहीर, भील, सहरियों और मुसलमानों को भी कई गाँव जागीर में दिये हुए थे।[65] उनका राजा के साथ स्वामी और सेवक का सम्बन्ध होता था। ऐसे सामन्तों का अस्तित्व व सम्मान राजा की कृपा पर ही निर्भर था। ऐसी स्थिति में इन सामन्तों का राजा के प्रति वफादार रहना स्वाभाविक था।

कई राज्यों में कुछ राजपूत सामन्त तो वे थे जिनका विभिन्न क्षेत्रों पर किसी विशिष्ट राजपूत घराने के आधिपत्य स्थापित होने से पहले से ही अधिकार था। कम शक्तिशाली होने के कारण उन्होंने नवोदित शासक का सामन्त बनना स्वीकार कर लिया। उनकी भूमि पहले की भाँति उन्हीं के पास बनी रही। वे नवोदित शासक को

कुछ रकम कर के रूप में देते थे और समय समय पर शासक की सेवा में उपस्थित होते थे। समकक्ष राजपूत सामन्तों के राजकीय कुल में शादी सम्बन्ध भी होते थे। कहीं–कहीं ऐसे सामन्तों को 'गनायत' के नाम से सम्बोधित किया जाता था। कुछ राजपूतों ने अपनी विशिष्ट सेवाओं के लिए विभिन्न राज्यों में सामन्त पद प्राप्त कर लिया था। कोटा के झाला और सिसोदिया इस श्रेणी में आते हैं। ऐसे समकक्ष राजपूत सामन्तों के कारण राज्य में शांति सन्तुलन भी बना रहता था।[66]

कर्नल टॉड ने राजस्थान की सामन्ती प्रणाली की तुलना मध्ययुगीन यूरोपीय सामन्ती पद्धति से की है। इस सम्बन्ध में डॉ. गोपीनाथ शर्मा का मत है कि यहाँ की सामन्त पद्धति और यूरोप की सामन्त प्रणाली में कई समानताएँ है परन्तु राजस्थानी सामन्त प्रथा एक प्रकार की सामाजिक व राजनीतिक व्यवस्था का रूप है जिसमें नेता के रूप में एक राजा रहता है और उसके साथ उसी के वंशज या अन्य जाति के वंशज उसके साथी और सहयोगी बने रहते हैं जबकि यूरोप में एक स्वामी के साथी ऐसे आश्रित के रूप में रहते थे जिनकी कोई स्वतंत्र स्थिति नहीं थी।[67]

राजस्थानी सामन्ती प्रथा व यूरोपीय सामन्त प्रथा में अनेक विषमताएँ स्पष्ट रूप से दृष्टिगत होती हैं। सर्वप्रथम तो इस प्रथा का दोनों स्थानों पर विभिन्न परिस्थितियों में उदय होना है। रोमन साम्राज्य के पराभव काल में और पतन के समय यूरोप में सर्वत्र अराजकता व अशान्ति फैल गई। सरकार अपनी प्रजा की जान व माल की सुरक्षा प्रदान करने के लिए प्राथमिक कर्तव्य का पालन करने में असमर्थ थी। फलतः यूरोपीय समाज के लिए अपरिहार्य हो गया था कि आन्तरिक सुरक्षा हेतु कोई उपाय निकाले। यूरोप में सामन्त प्रथा का उदय इसी युक्ति के फलस्वरूप हुआ। टॉड व गिबन प्रभृति विद्वानों ने भी स्वीकार किया है कि यूरोप मे सामन्ती प्रथा का जन्म बर्बरता पूर्ण वातावरण के फलस्वरूप हुआ था। स्थानीय जन–धन की रक्षा का दायित्व सामन्तों पर डाला गया। सामन्तों को अपने क्षेत्र में शान्ति व व्यवस्था रखने के लिए अनेक अधिकार दिये गये जैसे सिक्कों का प्रचलन करवाना, निजी तौर पर युद्व लड़ना, सामन्ती कर के अतिरिक्त और किसी भी प्रकार के कर न देना, अपने क्षेत्र के लिए कानून बनाना व न्याय करना आदि। यूरोप में सामन्त और राजा

के बीच एक सौदेबाजी थी। उनका सम्बन्ध स्वामी और सेवक का था। इसका आधार पारस्परिक सुरक्षा व सेवाएँ थीं।[68]

राजस्थान में सामन्ती प्रथा के अभ्युदय के लिए ऐसी परिस्थितियाँ नहीं थीं। राजा और सामन्त का सम्बन्ध रक्त और बन्धुत्व का था इसलिए प्रत्येक सामन्त अपनी पैतृक सम्पत्ति का दावा करता था और उस सम्पत्ति का हिस्सा उसे जागीर के रूप में मिलता था। वे अपने मुखिया के साथ सामाजिक समानता की अपेक्षा करते थे। वे राजा को अपना नेता मानते थे। यूरोप में सामन्त भूस्वामी के रूप में था और उसे व्यापक अधिकार प्राप्त थे जबकि राजस्थान में इसके विपरीत सामन्त को राज्य कुल का सदस्य होने के नाते मातृभूमि का उपभोग करने का अधिकार प्राप्त था। राजस्थान में सामन्ती प्रथा राजा की क्षीणता से विकसित नहीं हुई जैसा कि यूरोप में हुआ था। यूरोप के सामन्तों की भाँति राजस्थान में सिक्कों को ढलवाने, अपने क्षेत्र के लिए स्वतन्त्र रूप से कानून बनाने, न्याय करने आदि जैसे व्यापक अधिकार उन्हें सामान्यतः प्राप्त नहीं थे। सामन्त लोग युद्व में राजा की सहायता करते थे। उसके पीछे भी यह विचार निहित था कि वे अपनी पैतृक सम्पत्ति की सामूहिक रूप से रक्षा करने हेतु ऐसा कर रहे हैं।

द्वितीय विषमता इस बात में है कि यूरोप में भूमि राजा की मानी जाती थी तथा जमीन का स्वामित्व भी राजा का था। उसके विपरीत राजस्थान में भारत के अन्य भागों की तरह भूमि का स्वामी किसान था, राजा या उसका सामन्त तो भूमि की उपज का भाग लेने का अधिकारी था। राजा के पास भूमि के सम्बन्ध में मात्र उपभोक्ता का अधिकार था, स्वामित्व का अधिकार नहीं। राजा जागीरदार को अपने अधिकार का हस्तानन्तरण उतना ही कर सकता था जितना कि उसका अधिकार था इससे अधिक नहीं।

राजस्थान में सामान्यतः न्याय का कार्य तो ग्राम पंचायत या जाति पंचायत के हाथ में था। यह व्यवस्था राजस्थान के सामन्ती युग में विद्यमान थी और इन पंचायतों के कार्यों में सामन्त वर्ग कभी भी हस्तक्षेप नहीं करता था। यूरोप में इस प्रकार की संस्था कभी नहीं रही। वहाँ सामन्त के पास न्याय सम्बन्धी सभी अधिकार प्राप्त थे। राजस्थान में 19 वीं शताब्दी में कुछ सामन्तों को न्याय सम्बन्धी अधिकार मिले, वे भी

आंशिक रूप में ही। यूरोपीय सामन्ती प्रथा के अन्तर्गत पंचायत जैसी संस्था का होना सम्भव ही नहीं था।

यूरोप में सामन्त अपने स्वामी की मदद में युद्व करने जाता था। यह उसका दायित्व था और एक प्रकार से यह उनके आपसी समझौते का परिणाम था। राजस्थान में जागीरदार राजा को युद्व में सैनिक सहायता देता था क्योंकि उसका उससे व्यक्तिगत व रक्त का सम्बंध था। राज्य उनकी सामूहिक धरोहर थी जिसकी रक्षा करना उनका कर्तव्य था।

यूरोप में जब राजसत्ता का उदय हुआ अर्थात राजा जब शाक्तिशाली व प्रभुसत्ता सम्पन्न हो गया तो सामन्तों का पतन हुआ और शनैः–शनैः सामन्ती प्रथा पूर्णतः लुप्त हो गई। राजस्थान में राजा और सामन्तों की संस्थाएँ साथ–साथ अन्त तक चलती रहीं। अतः यह स्वीकार करना तर्कसंगत ही होगा कि यूरोप और राजस्थान में सामन्ती प्रथा का अभ्युदय भिन्न–भिन्न परिस्थितियों में हुआ और उनके विकास में भी कोई विशेष समता नहीं रही । राजस्थान में सामन्ती प्रथा का विकास सामाजिक व नैतिक कारणों से हुआ राजनीतिक आवश्यकता के कारण नहीं।[69]

कर्नल टॉड ने जिन मुद्दों को लेकर यूरोप और राजस्थान की सामन्ती व्यवस्था में साम्य बताने का प्रयास किया है, वह युक्तियुक्त नहीं है। खड्गबन्दी के समय सामन्त द्वारा दी जाने वाली नजराना नामक धनराशि (नजराना) वैध उत्तराधिकारी के अभाव में जागीर का राजगमन किये जाने, सामन्त को स्वामित्व का हस्तान्तरण करने, राजपरिवार मे विवाह के अवसर पर दी जाने वाली न्योत (धनराशि), सामन्ती कर और अवयस्क सामन्त के रक्षापाद की स्थिति को लेकर टॉड द्वारा जो इन दोनों व्यवस्थाओं में समानताएँ प्रदर्शित की गई हैं वे मात्र संयोग वश हैं, सामन्ती प्रथा के आवश्यक लक्षणों के रूप में नहीं। इसलिए यह मानना ठीक ही होगा कि यूरोप की सामन्त व्यवस्था राजस्थान की सामन्त व्यवस्था से मेल नहीं खाती।[70]

टॉड ने जिस समय इस प्रथा को देखा था उस समय राजस्थान के सामन्त निर्बल हो चुके थे और उस समय उनकी स्थिति बहुत कुछ राज्य के आश्रित के रूप में थी। उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि राजस्थान के राजपूत राज्यों में कुलीय सामन्त प्रारम्भ से ही बड़े शक्तिशाली थे। राज्य के कार्य, व्यवस्था और प्रबन्ध में

उनकी साझेदारी रहती थी। सामन्तों की इच्छा के विपरीत शासकों के लिए सामान्यतः कोई भी महत्वपूर्ण निर्णय लेना संभव नहीं था। उत्तराधिकार के मामले में भी सामन्तों का दखल रहता था।

कोटा राज्य के फौजदार एवं सामन्त झाला जालिमसिंह ने अपनी चतुराई, चालाकी व कूटनीति के बल पर ऐसा वातावरण निर्मित किया कि अपने जीवन काल में वह राज्य का मुख्य प्रशासक एवं सर्वेसर्वा बना रहा और यहाँ के महारावों को नाममात्र का शासक बनने पर मजबूर कर दिया। उसने अपनी कूटनीति से ना केवल स्वयं ने शासन किया अपितु अपने उत्तराधिकारियों का भविष्य भी सुरक्षित करने में कोई कसर नहीं छोड़ी।

राजस्थान के राज्यों के कुल क्षेत्र का लगभग 80 प्रतिशत भू भाग स्वकुलीय व अधीनस्थ सामन्तों के अधिकार में था। राज्य के उपजाऊ भाग पर भी इनका स्वामित्व था। इस तथ्य ने आने वाले समय में शासक–सामन्त सम्बन्धों पर महत्वपूर्ण प्रभाव डाला था। शासक की महत्वाकांक्षाओं तथा राज्य के बढ़ते हुये उत्तरदायित्वों के कारण जब शासकों ने खालसा भूमि में वृद्वि करने का प्रयास किया तब राजा और सामन्तों के बीच तनाव का वातावरण बनने लगा। वस्तुतः राजाओं और सामन्तों के पारस्परिक विरोधी हितों के फलस्वरूप यदा–कदा उनके बीच आपसी मतभेद होना स्वाभाविक था। सामन्त राज्य में स्वकुलीय व्यवस्था को अक्षुण्ण रखने के पक्ष में थे जबकि शासक अपनी शक्तियों व प्रतिष्ठा को बढ़ाने के लिए प्रयत्नशील थे। वे शासकीय नेतृत्व के अधीन सामन्ती व्यवस्था को संगठित करना चाहते थे।[71]

राजस्थान की सामन्त प्रथा में समय–समय पर अनेक उतार चढ़ाव एवं परिवर्तन देखने को मिलते हैं। साथ ही अलग–अलग रियासतों के सन्दर्भ में इसका स्वरूप भी अलग–अलग रहा। कहीं कहीं पर सामन्त इतने शक्तिशाली रहे कि शासक कठपुतली मात्र बने रहे तो कई बार शासकों की शक्ति के आगे इन्हें झुकना पड़ा।

मुगलकाल, मराठाकाल एवं अंग्रेजों के शासन काल के दौरान भी हमें राजस्थान की सामन्ती प्रथा में अनेक परिवर्तन देखने को मिले। मुगलकालीन युग सामन्त शक्ति में स्वेच्छीकरण का प्रादुर्भाव करने का युग था। इस समय राजस्थान में रियासतों के

शासक स्वयं केन्द्रीय शक्तियों के सामन्त अर्थात जागीरदार थे। कोटा के राव माधोसिंह से लेकर महाराव भीमसिंह प्रथम तक अनेक शासकों ने मुगलों के मनसबदार रहते हुए अनेक शाही अभियानों में भाग लिया। धरमत की लड़ाई में राव मुकुंदसिंह, विजयपुर के घेरे के जगतसिंह, अरणी के युद्व में किशोरसिंह, जाजव के युद्व में रामसिंह एवं पन्धार के युद्व में महाराव भीमसिंह वीरगति को प्राप्त हुए।[72]

रियासतों के शासकों के क्षेत्र में छोटे जागीरदार थे जो एकाधिक जागीरों की श्रृखंला बनाते हुए विकृत विकेन्द्रीकरण व्यवस्था के द्योतक थे। इस काल में जागीरदारों के अधिकार क्षेत्र में तीन प्रकार की जागीर धृतियाँ हमें प्राप्त होती हैं – (1) प्रशासनिक जागीरदार (2) धर्म के लिए अनुदानित जागीरदार (3) पैतृक जागीरदार। कालान्तर में शासक व जागीरदारों के सम्बन्ध में सैनिक सेवा और सहायता का स्वरूप परिवर्तित हो आर्थिक सहायता एवं अधिकारों पर निर्भर हो गया।

मराठों के आगमन से स्थिति और अधिक विकट होती चली गई। शासक और सामन्तों के बीच के मतभेद और अधिक बढ़ते चले गये। मराठों ने इनके आपसी सम्बन्धों में दरार उत्पन्न करने का कार्य किया।

कोटा रियासत में कोटरियात के राज्यों ने सन् 1758 में कोटा की मातहती स्वीकार कर ली थी। कोटा नरेश से उन्हें बड़ा सम्मान व अधिकार प्राप्त थे किन्तु मराठा काल में मराठा वकील द्वारा कोटरियों से मामलात वसूली को लेकर कोटरियों के जागीरदारों द्वारा विद्रोह कर लिया जाता था। ऐसे अवसरों पर मराठा वकील इन जागीरदारों के विरूद्ध कोटा नरेश से सैनिक सहायता माँगते एवं विवश होकर कोटा नरेश को सहायता देनी पड़ती थी।[73] इस प्रकार मराठों ने नरेशों एवं सामन्तों के मध्य के सम्बन्धों को प्रभावित किया।

अंग्रेजों के काल में (1818 ई. की सन्धियों के पश्चात्) सामन्तों एवं शासकों का परम्परागत सम्बन्ध छिन्न भिन्न हो गया। अंग्रेजों की नीति स्वार्थपरता पर आधारित थी। वे समय एवं परिस्थिति के अनुसार अपना पक्ष बदल लिया करते थे।

कोटा में झाला जालिमसिंह के प्रति अंग्रेजों की उदारता ने यहाँ के शासकों के पैतृक अधिकारों पर चोट की एवं नाममात्र का बनने पर मजबूर किया। इससे उत्पन्न संकट से महाराव की प्रतिष्ठा एवं सम्मान को तो आघात पहुँचा ही बाद में

कोटा राज्य का विभाजन भी करना पड़ा।[74] विभिन्न कालों में सामन्ती प्रथा में कई परिवर्तन आए।

संक्षेप में राजस्थान की सामन्ती व्यवस्था आपसी सांझेदारी थी और उसका स्वरूप एक प्रकार से सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक विशेषताओं से युक्त था। इस प्रथा में निजी रूप से भूमि से लाभ और राज्य की सैनिक सेवा सम्मिलित थी। ये विशेषताऐं ही उनके चिर स्थायित्व का प्रमुख कारण रही। आगे चलकर इस व्यवस्था में अनेक बुराइयाँ आ गई किन्तु इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि एक युग में राजस्थान के अस्तित्व एवं स्वरूप के लिए इसका महत्वपूर्ण योगदान रहा है।[75]

सन्दर्भ

1. परजीटर ई. ई., एनशियेन्ट हिस्टोरिकल ट्रेडिशन, 1962, पृ. 254
2. राष्ट्रदूत वीकली, जयपुर, 10 अप्रेल, 1988
3. शर्मा, दशरथ, राजस्थान थ्रू द एजेज, भाग प्रथम, पृ. 331
4. (अ) गंगधार, कापर्स इस्क्रिप्शन इण्डिकेरम, वो.–iii, पृ. 72
   (ब) गुप्ता, सीमा कोटा नगर का पुरातात्विक सर्वेक्षण, पृ. 5
5. (अ) बड़वा, एपिग्राफिया इण्डिका, भाग, पृ. 42
   (ब) गुप्ता, सीमा, कोटा नगर का पुरातात्विक सर्वेक्षण, पृ. 5
6. श्रीवास्तव, डॉ. जगत नारायण, कोटा के महाराव उम्मेद सिंह द्वितीय एवं उनका समय, पृ. 2
7. शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास, भाग प्रथम, पृ. 50
8. टॉड, कर्नल जेम्स, एनल्स एण्ड एन्टीक्वीटीज ऑफ राजस्थान, भाग–3, (सम्पादित क्रुक) लन्दन 1920, पृ. 1330–33
9. (अ) मीसण, सूर्यमल्ल वंश भास्कर भाग तृतीय, पृ. 1678–79
   (ब) शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास, भाग प्रथम, पृ. 61
10. शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास, भाग प्रथम, पृ. 62
11. शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास, भाग प्रथम, पृ. 62
12. (अ) ठाकुर लक्ष्मण दान, कोटा राज्य का इतिहास,
    (ब) मीसण, सूर्यमल्ल, वंश भास्कर, भाग तृतीय, पृ. 1679
    (स) टॉड, कर्नल जेम्स, एनल्स एण्ड एन्टीक्वीटीज ऑफ राजस्थान, भाग द्वितीय, पृ. 506
    (द) शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास, भाग प्रथम, पृ. 62
13. (अ) मीसण, सूर्यमल्ल, वंश भास्कर, भाग तृतीय, पृ0 1715
    (ब) शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास, भाग प्रथम, पृ. 63
14. (अ) मीसण, सूर्यमल्ल, वंश भास्कर, भाग तृतीय, पृ. 2239
    (ब) शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास, भाग प्रथम, पृ. 73
15. (अ) टॉड, कर्नल जेम्स, एनल्स एण्ड एन्टीक्वीटीज ऑफ राजस्थान, भाग द्वितीय, पृ. 521
    (ब) शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास, भाग प्रथम, पृ. 83
16. टॉड, कर्नल जेम्स, एनल्स एण्ड एन्टीक्वीटीज ऑफ राजस्थान, भाग द्वितीय, पृ. 520–21
17. (अ) इकबाल नामा, पृ. 243–441
    (ब) मीसण, सूर्यमल्ल, वंश भास्कर भाग तृतीय, पृ. 2487, 2500–04
    (स) मुंशी मूलचन्द, पृ. 73–76
    (द) खाँ, खाफी, जिल्द 1, पृ. 349–50

(य) शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास, भाग प्रथम, पृ. 96–97

18. (अ) मीसण, सूर्यमल्ल, वंश भास्कर, भाग तृतीय, पृ. 2510–12
(ब) शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास, भाग प्रथम, पृ. 99

19. शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास, भाग प्रथम, पृ. 104

20. (अ) बादशाह नामा, पृ. 401
(ब) शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास, भाग प्रथम, पृ. 106

21. (अ) मुंशी मूलचन्द, पृ. 70
(ब) बादशाह नामा, पृ. 401
(स) शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास, भाग प्रथम, पृ. 106–107

22. शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास, भाग प्रथम, पृ. 108

23. (अ) शाहजहाँनामा, भाग 23, पृ. 28
(ब) मुंशी मूलचन्द, तारीख–ए–राजगान कोटा हिस्सा अव्वल , पृ. 80–86
(स) श्रीवास्तव, डॉ. जगतनारायण, कोटा के महाराव उम्मेदसिंह द्वितीय एवं उनका समय, पृ. 4

24. मीसण, सूर्यमल्ल, वंश भास्कर, भाग तृतीय, पृ. 2595

25. (अ) शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास, भाग प्रथम, पृ. 111–112
(ब) मीसण, सूर्यमल्ल, वंश भास्कर, भाग तृतीय, पृ. 2594

26. (अ) मीसण, सूर्यमल्ल, वंश भास्कर , भाग तृतीय, पृ. 2630
(ब) शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास, भाग प्रथम, पृ. 128

27. शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास, भाग प्रथम, पृ. 133

28. (अ) शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास, भाग प्रथम, पृ. 17
(ब) गहलोत, जगदीश सिंह, राजपूताने का इतिहास, पृ. 113

29. गिरिराज कुमार, हाड़ौती का पुरातत्व, पृ. 14 हाडौती के शैल चित्र

30. श्रीवास्तव, डॉ. जगतनारायण, महाराव उम्मेदसिंह द्वितीय एवं उनका समय, पृ. 1

31. (अ) गियर्सन, लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इण्डिया, भाग–2 पृ. 20
(ब) वर्मा, बद्री नारायण, कोटाः भित्ति चित्रांकन परम्परा, पृ. 7

32. भट्टाचार्य ए.एन. व अन्य उदयपुर, ग्वालियर प्रदेश इण्डिया, एन. जी. एस., पृ. 520

33. (अ) मिश्रा, वी.सी., ज्योग्राफी ऑफ राजस्थान, पृ. 37
(ब) गुप्ता, सीमा, कोटा नगर का पुरातात्विक सर्वेक्षण, पृ. 3

34. मिश्रा, वी.सी., ज्योग्राफी ऑफ राजस्थान, पृ. 37

35. गहलोत, जगदीश सिंह, राजपूतानें का इतिहास, पृ. 113

36. (अ) गुप्ता, सीमा, कोटा नगर का पुरातात्विक सर्वेक्षण, पृ. 3
(ब) जोन, डॉ. सचिता, अप्रकाशित ग्रन्थ, पृ. 06

37. (अ) शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास, भाग प्रथम, पृ. 66
(ब) गुप्ता, डॉ. बेनी, राजस्थान का इतिहास, पृ. 279

(स) ठाकुर लक्ष्मणदान, कोटा राज्य का इतिहास
(द) टॉड, कर्नल जेम्स, एनल्स एण्ड एन्टीक्वीटीज ऑफ राजस्थान, जिल्द–2, पृ. 506

38. (अ) जोन, डॉ. सचिता, अप्रकाशित शोध प्रबंध, पृ. 06
(ब) गुप्ता, सीमा, कोटा नगर का पुरातात्विक सर्वेक्षण, पृ. 4

39. (अ) वर्मा, बद्री नारायण, कोटाः भित्ति चित्रांकन परम्परा , पृ. 8–9
(ब) मनोहर प्रकाश, राजस्थान ज्ञानकोष, पृ. 1499

40. (अ) टॉड, कर्नल जेम्स, एनल्स एण्ड एण्टीक्वीटीज ऑफ राजस्थान तृतीय भाग, पृ. 2523
(ब) मीसण, सूर्यमल्ल, वंश भास्कर, पृ. 2889
(स) शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास, भाग प्रथम, पृ. 201
(द) ठाकुर लक्ष्मणदान, कोटा राज्य का इतिहास

41. (अ) शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास भाग प्रथम, पृ. 197
(ब) ठाकुर लक्ष्मणदान, कोटा राज्य का इतिहास

42. (अ) टॉड, कर्नल जेम्स, एनल्स एण्ड एन्टीक्वीटीज ऑफ राजस्थान, जिल्द–2, पृ. 554
(ब) शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास भाग प्रथम, पृ. 209–10

43. (अ) ठाकुर लक्ष्मणदान, कोटा राज्य का इतिहास
(ब) टॉड, कर्नल जेम्स, एनल्स एण्ड एन्टीक्वीटीज ऑफ राजस्थान, जिल्द–2, पृ. 554
(स) शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास भाग प्रथम, पृ. 202

44. शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास भाग प्रथम, पृ. 221–222

45. (अ) भीमसेन, नुस्खा ए दिलकुश, पृ. 167 अ
(ब) इरविन, लेटर फ्राम मुगल्स जिल्द–1, पृ. 34
(स) शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास भाग प्रथम, पृ. 240

46. (अ) मीसण, सूर्यमल्ल, वंश भास्कर चतुर्थ भाग, पृ. 3042
(ब) टॉड, कर्नल जेम्स, एनल्स एण्ड एन्टीक्वीटीज ऑफ राजस्थान, जिल्द–2, पृ. 555
(स) खाँ, खाफी, भाग प्रथम, पृ. 851
(द) शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास, भाग प्रथम, पृ. 302

47. (अ) मीसण, सूर्यमल्ल, वंश भास्कर, चतुर्थ भाग, पृ. 3040–43
(ब) टॉड, कर्नल जेम्स, एनल्स एण्ड एन्टीक्वीटीज ऑफ राजस्थान, भाग तृतीय, पृ. 2524

48. (अ) टॉड, कर्नल जेम्स, एनल्स एण्ड एन्टीक्वीटीज ऑफ राजस्थान भाग तृतीय, पृ. 1524
(ब) शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास भाग प्रथम, पृ. 337

49. (अ) टॉड, कर्नल जेम्स, एनल्स एण्ड एन्टीक्वीटीज ऑफ राजस्थान, जिल्द–2, पृ. 563

(ब) शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास भाग द्वितीय, पृ. 444–445

50. शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास भाग द्वितीय, पृ. 470

51. (अ) टॉड, कर्नल जेम्स, एनल्स एण्ड एन्टीक्वीटीज ऑफ राजस्थान, जिल्द–2, पृ. 608
(ब) शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास भाग द्वितीय, पृ. 534–35

52. टॉड, कर्नल जेम्स, एनल्स एण्ड एन्टीक्वीटीज ऑफ राजस्थान, भाग तृतीय, पृ. 1543

53. (अ) .शास्त्री, आर.पी., झाला जालिम सिंह, पृ. 236
(ब) टॉड, कर्नल जेम्स, एनल्स एण्ड एन्टीक्वीटीज ऑफ राजस्थान, जिल्द–2, पृ. 1421–1422

54. (स) श्रीवास्तव, डॉ.जगतनारायण, महाराव उम्मेदसिंह द्वितीय एवं उनका समय, पृ. 5

55. (अ) प्राईवेट सैक्रेटरी, रिकार्ड ग्रुप–1 (फाईल मुख्य) , 0/41
(ब) डॉ. जगतनारायण, महाराव उम्मेद सिंह द्वितीय एवं उनका समय, पृ. 05
(स) शर्मा, डॉ .मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास भाग द्वितीय, पृ. 595–96

56. शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास भाग द्वितीय, पृ. 672

57. एडमिनिस्ट्रेटिव रिपोर्ट ऑफ कोटा, सम्वत 1956, पृ. 01

58. (अ) गहलोत, जगदीश सिंह (कोटा राज्य) राजपूतानें का इतिहास, पृ. 92–93
(ब) श्रीवास्तव, डॉ. जगत नारायण, महाराव उम्मेद सिंह द्वितीय एवं उनका समय, पृ. 05

59. ये नौ राज्य थे–कोटा, बून्दी, बाँसवाड़ा, डूंगरपुर, झालावाड़ , किशनगढ़ , प्रतापगढ़, शाहपुरा, टोंक।

60. गुप्ता, सावित्री, राजस्थान डिस्ट्रीक गजेटियर्स 1982, पृ. 44

61. व्यास डॉ. रामप्रसाद, रोल ऑफ नोबिलिटी इन मारवाड, पृ. 08

62. राजस्थान राज्य अभिलेखाकार, (जोधपुर रिकार्डस) हकीकत खाता बही 20, पृ. 95

63. (अ) खास रूक्का परवाना, बही न0 2 , पृ. 110
(ब) व्यास, डॉ. रामप्रसाद, आधुनिक राजस्थान का वृहद इतिहास, पृ . 309

64. (अ) शर्मा, डॉ गोपीनाथ, सोशल लाईफ इन मिडाइवल राजस्थान, पृ. 86
(ब) व्यास, डॉ. आर.पी., रोल ऑफ नोबिलिटी इन मारवाड़, पृ. 08

65. (अ) टॉड, कर्नल जेम्स, एनल्स एण्ड एन्टीक्वीटीज ऑफ राजस्थान, भाग प्रथम, पृ. 127
(ब) व्यास, डॉ. आर.पी., रोल ऑफ नोबिलिटी इन मारवाड़, पृ. 79

66. (अ) कागजात सम्वत, 1704–1705
(ब) तकसीम सम्वत 1711, परगना उरमाल, करवर, रायपुरा, सोजत इत्यादि।
(स) शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास भाग द्वितीय, पृ. 143

67. टॉड, कर्नल जेम्स, एनल्स एण्ड एन्टीक्वीटीज ऑफ राजस्थान, भाग द्वितीय, पृ. 565–66

68. शर्मा, डॉ गोपीनाथ, राजस्थान का इतिहास, पृ. 472

69. व्यास, डॉ. आर.पी., आधुनिक राजस्थान का वृहद इतिहास, पृ. 311

70. पी. सरन, स्टडीज इज मिडाइवल इण्डियन हिस्ट्री में प्रकाशित लेख
द फ्यूड़ल सिस्टम ऑफ राजपूताना , पृ. 3–21

71. टॉड, कर्नल जेम्स, एनल्स एण्ड एन्टीक्वीटीज ऑफ राजस्थान, भाग प्रथम, पृ. 128–331

72. (अ) टॉड, कर्नल जेम्स, एनल्स एण्ड एन्टीक्वीटीज ऑफ राजस्थान, भाग द्वितीय, पृ. 21
(ब) आसोपा, रामकरण, हिस्ट्री ऑफ द राठौड़ज, पृ. 32–33

73. शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास भाग प्रथम, पृ. 331–32

74. शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास भाग द्वितीय, पृ. 527

75. जैन, डॉ. एम.एस., आधुनिक राजस्थान का इतिहास, पृ. 92

76. शर्मा, डॉ. गोपीनाथ, सोशल लाईफ इन मिडाइवल लाइफ इन राजस्थान, पृ. 90

अध्याय द्वितीय

कोटा राज्य में जागीर प्रथा का उद्भव एवं विकास

अध्याय द्वितीय

कोटा राज्य में जागीर प्रथा का उद्‌भव एवं विकास

तेरहवीं शताब्दी ई0 के अन्तिम चतुर्थांश में बून्दी राज्य के अधीन होकर कोटा 1631 ई. वीं तक एक परगना बना रहा जिसे इसी वर्ष शाहजहाँ ने राव माधोसिंह के राजत्व में स्वतंत्र राज्य का स्वरूप प्रदान कर दिया। यहीं से कोटा के स्वतन्त्र राज्य की स्थापना होती है।[1]

राव माधोसिंह के पाँच पुत्र थे – मुकुन्दसिंह, मोहनसिंह, जुझारसिंह, कन्हीराम और किशोरसिंह। मुगल साम्राज्य की सेवा हेतु बल्ख एवं बदक्शां जाते समय राव माधोसिंह अपने राज्य का शासन मुकुन्द सिंह के सुपुर्द कर गये थे। मुकुन्दसिंह ने अपने पिता की आज्ञा से महाराजाधिराज की पदवी धारण कर ली।[2] मुकुन्दसिंह ज्येष्ठ पुत्र थे इसलिए उन्हें कोटा का राजा बनाया। मोहनसिंह अपनी वीरता एवं पराक्रम के कारण राव माधोसिंह के प्रिय थे तथा प्रायः अपने पिता के साथ लड़ाईयों में रहा करते थे। उनको 84 गाँव के साथ पलायथा की जागीर दी गई। तीसरे पुत्र जुझारसिंह को 21 गाँव के सहित कोटड़ा की और कन्हीराम को 27 गाँव के साथ कोयला की जागीर मिली। पाँचवें पुत्र किशोरसिंह को 24 गाँव सहित सांगोद की जागीर दी गई।[3] इस व्यवस्था से कोटा राज्य में जागीर प्रथा का उद्‌भव हुआ।

राव माधोसिंह के वंशज माधाणी हाड़ा कहलाये। कोटा से माधाणी हाड़ाओं की उपशाखाओं का प्रादुर्भाव होता है। उनके बारे में संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है–

(1) **माधाणी** – कोटा के शासक राव माधोसिंह के वशंज माधाणी हाड़ा कहलाये। राव माधोसिंह के पश्चात् उनके पाटवी पुत्र मुकुन्दसिंह गद्‌दी पर आसीन हुए। राव मुकुन्दसिंह धरमत के युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुए। तत्पश्चात उनके एक मात्र पुत्र जगतसिंह कोटा की गद्‌दी पर आसीन हुए। निःसन्तान जगतसिंह भी शाही पक्ष के लिए युद्ध भूमि में मारे गये। इस प्रकार जगत

सिंह के पश्चात माधाणी उपशाखा का टीकायत उत्तराधिकारी कोई नहीं रहा क्योंकि बाद में राव माधोसिंह के अन्य पुत्रों के नाम खांपें विभक्त हो गईं।

(2) **मोहनसिंहोत** – राव माधोसिंह के द्वितीय पुत्र मोहनसिंह के वशंज मोहनसिंहोत हाड़ा कहलाये। मोहनसिंह को 84 गाँव सहित पलायथा की जागीर दी गई थी।[4] मोहनसिंहोतों का कोटा राज्य के विकास में बड़ा योगदान रहा। मोहनसिंहोत हाड़ाओं के मुख्य ठिकाने हैं–(1) पलायथा (2) नागदा (3) राजगढ़ (4) कुन्दनपुर (5) डाबरी (6) बड़वा (7) कुंजेड (8) कमोलर (9) कँवरपुरा (10) अड़नान्द (11) फूसरा (12) खुराड़िया मध्यप्रदेश में।[5]

(3) **जुझारसिंहोत** – राव माधोसिंह के तीसरे पुत्र जुझारसिंह को 21 गाँव सहित कोटड़ा की जागीर मिली थी। इनके वंशज दीपसिंह के नाम से इस कोटड़ा गाँव को कोटड़ा–दीपसिंह कहा जाने लगा। महाराव भीमसिंह प्रथम ने कोटा राज्य का विस्तार किया तो जुझारसिंह के वशंजों को 40 हजार की रेख का रेलावन व आस–पास का इलाका जागीर में दिया गया। मराठों और पिण्डारियों से रक्षा के लिए आप जुझारसिंह के वशंज विजय सिंह को 12 गाँव सहित बोरदा की जागीर दी गई। उन्हें महाराजा की पदवी भी दी गई।

जुझारसिंहोत के निम्न ठिकाने रहे हैं–(1) कोटड़ा–दीपसिंह (2) रेलावन (3) नोनेरा (4) बोरदा (5) कवँलदा (6) डूंडा (7) बाँसखेड़ा (8) छीनोद (9) बिछलस (10) सकतपुरा (11) बरखेड़ा (12) हतोला (13) खेड़ी (14) बड़ोद।[6]

(4) **प्रेमसिंहोत** – राव माधोसिंह के चौथे पुत्र कन्हीराम थे। उन्हें 27 गाँव के साथ कोयला की जागीर मिली थी। कन्हीराम के बाद उनके पुत्र प्रेमसिंह कोयला जागीर के उत्तराधिकारी बने। इन्हीं के नाम पर ये शाखा प्रेमसिंहोत कहलाई। राव जगतसिंह के पश्चात इन्हीं प्रेमसिंह को कोटा की गद्दी पर बिठाया।[7] प्रेमसिंहोत के प्रमुख ठिकाने रहे हैं–(1)कोयला (2) रानीबड़ोद (3) मकरावदा (4) सोजपुर (5) देगंणी (6) खुरी (7) सुवासण (रटावद) (8)

मूण्ड़ला (9) गोरल (10) गोयड़ा (11) माथनी (12) कंकरावदा (13) जलवाड़ा (14) बड़ोद (15) पचेल।[8]

(5) **किशोरसिंहोत** – राव माधोसिंह किशोरसिंह के पाँचवे पुत्र थे। इन्हें 24 गाँव सहित सांगोद की जागीर मिली थी। जब कोटा के राव जगतसिंह निःसन्तान युद्ध में शाही अभियान में युद्ध में मारे गये तो कोयला के आप कन्हीराम के पुत्र प्रेमसिंह को कोटा राज्य के सामन्तों द्वारा कोटा की गद्दी पर बैठा दिया था लेकिन बादशाह औरंगजेब ने राव जगतसिंह के उत्तराधिकार का फरमान किशोरसिंह (जगतसिंह का काका) के नाम जारी कर दिया।[9] इनके वशंज किशोरसिंहोत हाड़ा कहलाये। तब से अब तक कोटा का राजवंश किशोरसिंहोत माधाणी का है। कोटा राजवंश के अलावा किशोरसिंहोत के निम्न ठिकाने रहे हैं–(1) सांगोद (2) अन्ता (3) नोनेरा इटावा (4) खेड़ली इटावा (5) आटोण (6) बमूल्या (7) चमलासा (8) मूंड़ली (9) कोटड़ा (10) आमली (11) निपाणिया (12) बिशनखेड़ी (13) रटावद (14) अमृत कुआँ (15) कुदेत (16) कमोलर (कमोलर आधा मोहनसिंहोतो का तथा आधा किशोरसिंहोतो का)।[10]

कोटा राज्य में जागीर प्रथा के उद्भव के पश्चात कोटा के महारावों के संरक्षण में इसका स्वरूप परिवर्तन होता चला गया। राजस्थान के राज्यों ने मुगलों से लेकर अंग्रेजों के शासन काल तक अनेक उतार चढ़ावों को देखा। अलग–अलग काल में जागीरी प्रथा के स्वरूप में भी परिवर्तन आता गया। साथ ही जागीरी क्षेत्रों के अधिकार व राज्य के प्रति कर्तव्य भी समयानुसार परिवर्तित होते गये।

(क) जागीरी प्रथा के मौलिक सिद्धान्त

स्वतंत्रता के पूर्व राजस्थान के सामाजिक संगठन में सामुदायिक चारित्रिक विशेषता सामन्तवाद की संज्ञा से अभिजनित की जा सकती है। यह एक ऐसी सामाजिक साझेदारी की व्यवस्था थी जिसमें मात्र अधिकार ही नहीं अपितु कर्तव्य भी निहित थे। यह अधिकार और कर्तव्य किसी समझौते की उपज नही होकर परम्परा से चले आ रहे पैतृक अधिकार, देशभक्ति की भावना, स्वामी धर्म तथा सामाजिक,

आर्थिक कर्तव्य का सामाजिक निर्वहन थे। इस प्रकार समाज के सभी तत्वों पर परिलक्षित होने वाली यह पद्धति सामन्तवाद थी।

डॉ. परमात्मा शरण के अनुसार सामन्तवाद मात्र राजनीतिक व्यवस्था का परिचालन करने की संस्था या प्रणाली नहीं थी अपितु उसका आधार सामाजिक, आर्थिक स्वरूप में परम्परागत आदर्शों पर टिका हुआ था।

जागीरी प्रथा के कुछ मौलिक सिद्धान्त थे, जिन पर यह व्यवस्था आधारित थीः–

(1) **रक्त सम्बंध** – राजस्थान के सामन्त अधिकांशतः राजा के रक्त सम्बन्धी ही होते थे। उन्हें जागीर इसलिए दी जाती थी कि वे राजा के भाई–बान्धव होते थे। कोटा के शासक राव माधोसिंह ने अपने ज्येष्ठ पुत्र मुकुन्दसिंह को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया एवं अन्य चार पुत्रों को जागीरें प्रदान कीं।[11]

कालान्तर में अन्य जाति के कुलीन व्यक्ति भी जागीरदार बनाये गये थे किन्तु ऐसे जागीरदारों का मान सम्मान राजपूत जाति या वंश के सामन्त से अधिक नहीं हो सका। भले ही ऐसे सामन्तों की पद प्रतिष्ठा उनकी राज्य सेवा के अनुसार वंशज सामन्त से अधिक थी। कोटा में भी मोहनसिंहोत एवं किशोरसिंहोत जागीरदारों की विशेष प्रतिष्ठा थी क्योंकि ये महाराव के भाई थे।[12]

(2) **कुल धारणा** – राजपूतों का राजनीतिक समाज पैतृक कुल के विचार पर आधारित था। प्रत्येक राज्य का शासक वर्ग विशिष्ट वंश या जाति का होता था। राजा के वंश वाले अन्य लोग शासक की तरह ही पैतृक सम्पत्ति और अधिकारों का उपयोग करते थे क्योंकि दोनों की पैतृकता एक ही थी। जैसे कोटा, बून्दी में हाड़ा, मेवाड़ में सिसोदिया इत्यादि। शासक के निःसंतान होने की स्थिति में शासक के भाई–बांधव के परिवार से ही गोद लेने की परम्परा रही है।

(3) **राज्य की सांझेदारी** – डॉ. अनिल चन्द्र बनर्जी के अनुसार राज्य मात्र राजा की सम्पत्ति अथवा अधिकार नहीं था अपितु राजा के वंश के लोगों की

सांझेदारी का साधन था। इसी विचार से राज्य की रक्षा के लिए मर मिटना सभी का पुनीत कर्तव्य समझा जाता था। कोटा के महाराव को सदैव हाड़ा जागीरदारों का सहयोग प्राप्त होता रहा। ये जागीरदार राज्य की रक्षार्थ हमेशा तैयार रहते थे। मांगरोल के युद्ध के समय जबकि कम्पनी भी झाला जालिमसिंह के समर्थन में खड़ी थी, हाड़ा जागीरदारों ने किशोरसिंह का साथ देकर अपना राज्य धर्म का पालन किया।[13]

(4) **स्वामिभक्ति** – राजस्थान में जागीरदार व शासक के सम्बन्धों में समय–समय पर उतार चढ़ाव आते रहे। सामन्त शक्तिशाली हुए और शासक का विरोध भी किया किन्तु संकट के समय स्वामी का साथ देना अपना धर्म मनाते थे। राजस्थान में यूरोप के समान सामन्त का शासक से सम्बन्ध मालिक व नौकर का नहीं था बल्कि अग्रज व अनुज का था। महाराव रामसिंह द्वितीय के समय 1857 की क्रान्ति हुई जिससे कोटा भी अछूता नहीं रहा। कोटा पर बागियों द्वारा अधिकार हो गया था एवं महाराव को गढ़ में बन्द कर दिया गया । उस समय कोटा के राजपूत सरदार राज्य की सहायता एवं सेवा हेतु आये थे। जिनमे प्रमुख थे– गैंता के महाराजा चतुर्भजसिंह, पीपल्दा के ठाकुर अजीतसिंह, कोयला के आप अजीतसिंह तथा उनके काका सरदार सिंह, भैंसरोड़ के रावत अमरसिंह के छोटे भाई मोहब्बतसिंह जी इत्यादि। इन सबने मिलकर कोटा की बागियों से रक्षा की।[14]

(5) **अग्रज और अनुज जैसी समानता** – यद्यपि सामन्त और शासक में ऊँच–नीच का आधार था किन्तु यह ऊँच–नीच स्वामी और सेवक के समान नहीं थी। दोनों के सम्बन्धों में आदर और सम्मान की भावना निहित रहती थी। महाराव के दरीखाने की बैठक में इनके बैठने का क्रम निश्चित था जो उनकी महत्ता और प्रतिष्ठा का सूचक था। कोटा में जागीरदारों के प्रति शिष्टाचार एवं ताजीम का कोटा नरेश पूरा ध्यान रखते थे। महाराव द्वारा जागीरदारों के सम्मान उनके स्वागत सत्कार में कोई कमी नहीं की जाती थी। जागीरदारों को महाराव द्वारा उपाधियाँ प्रदान की जाती थीं।[15] सामन्त भी महाराव के प्रति अपने कर्तव्यों का पूर्णतः पालन करते थे।

(6) **सैनिक सेवा की अनिवार्यता** – राज्य के सभी जागीरदार अपने वंश, देश, स्वामी आदि के गौरव के लिए तन,मन और धन से सेवा करने के लिए तत्पर रहते थे। राजस्थान की सामन्त प्रथा का एक मुख्य आधार सामन्त द्वारा प्रदान की जाने वाली सैनिक सेवा भी थी। सामन्त अपनी सेना सहित व्यक्तिगत सेवा के लिए राज्य आमंत्रण पर सदैव तैयार रहते थे। कोटा के महाराव भी मुगलों के मनसबदार रहे और अनेक शाही अभियानों में भाग लेते थे। कोटा नरेश के साथ उनके सामन्त भी युद्धों में सम्मिलित होते थे।[16] साथ ही कोटा राज्य पर संकट आने पर यहाँ के सरदारों ने राज्य की रक्षार्थ अपना पूर्ण सहयोग दिया। इस प्रकार राजस्थान की सामन्त प्रथा का आधार साझेदारी था जो केवल राजनीतिक ही नही अपितु आर्थिक एवं सामाजिक कारकों पर आधारित थी।

(ख) जागीरदारों की उपाधियाँ एव उनके आधार

राजस्थान के शासकों द्वारा अपने सामन्तों को उपाधियाँ प्रदान की जाती थी जो राज्य में उनकी प्रतिष्ठा व सम्मान का सूचक होती थी। इन उपाधियों का आधार सामन्तों की महाराव से नजदीकी एवं उनके महाराव से सम्बन्ध होता था। ये उपाधियाँ सामन्त की प्रतिष्ठा को व्यक्त करने के साथ ही उसके राज्य में महत्वपूर्ण स्थान को भी व्यक्त करती थीं।

कोटा राज्य में ऐसे जागीरदार जिनका महाराव से निकट का सम्बन्ध था, वे राजवी कहलाते थे।[17] इनके अतिरिक्त अन्य सरदार अमीर उमराव के नाम से सम्बोधित किये जाते थे। कोटड़ा, बमूल्या, सांगोद, आमली, खेरला, अन्ता तथा मूण्डली के जागीरदार किशोरसिंहोत परिवार के थे। इनमें से कुछ कम दर्जे में मोहनसिंहोत घराने के सरदार थे। इनका मुखिया पलायथा का ठाकुर था। इन सभी को 'आपजी' कहा जाता था। इन्हीं घरानों से राज गद्दी के लिए गोद लेने की प्रथा थी।[18] महाराव उम्मेदसिंह द्वितीय भी कोटड़ा के जागीरदार छगनसिंह के पुत्र थे जो महाराव शत्रुशाल द्वारा गोद लिये गये एवं कोटा के शासक बने। कोटड़ा के जागीरदारों को 'महाराजा' की उपाधि प्राप्त थी। इस प्रकार कोयला का ठिकाना राव माधोसिंह द्वारा अपने चौथे पुत्र कन्हीराम को प्रदान किया गया था। इन्हें भी 'आप'

की उपाधि से सम्बोन्धित किया जाता था। कुनाड़ी का ठिकाना कोटा नरेश मुकुन्दसिंह द्वारा 1644 में देलवाड़ा (मेवाड़) के राजराणा जीतसिंह झाला के तीसरे पुत्र अर्जुनसिंह को 'राज' की उपाधि सहित प्रदान किया था।

हरनौदा ठिकाने के जागीरदार राव अर्थात भाट जाति के थे। यहाँ के जागीरदार प्रताप सहाय को कोटा राज्य से 'राव राजा' की उपाधि तथा तीन गाँव की जागीर प्राप्त हुई थी। सन् 1919 में 'राव राजा' शंकर सहाय इस जागीर के उतराधिकारी हुए। कोटा के महाराव दुर्जनशाल ने 1727 में बम्बूलिया एक दर्जन गाँव सहित महाराजा सूरजमल को जागीर में दिया था। बम्बूलिया के जागीरदारों को 'महाराजा' की उपाधि प्राप्त थी।

इसी प्रकार कोटा में सम्मिलित कोटरियात के राज्यों के जागीरदारों की विशेष प्रतिष्ठा थी। इन्द्रगढ़, खातौली, बलवन व आन्तरदा के सरदारों को मुगल काल से ही महाराजा का खिताब मिला हुआ जो कोटा महाराव द्वारा बदस्तूर जारी रखा गया। इन जागीरदारों की प्रजा इन्हें दरबार कहती थी। गैंता के जागीरदारों को भी महाराजा की पदवी मिली हुई थी। गैंता, करवाड़, पूसोद, पीपल्दा के सरदारों को उनकी प्रजा 'सरकार' कह कर उनका सम्मान करती थी।[19] कोटरियात के सरदारों को अपनी जागीर क्षेत्र में पूर्ण अधिकार प्राप्त थे। कोटा के दरीखाने की बैठक में प्रत्येक जागीरदार का एक निश्चित क्रम था। महाराव द्वारा उन्हें ताजीम प्रदान की जाती थी। कोटा में ताजीमी सरदार की संख्या 36 थी। ताजीमी सरदार वे थे जो महाराव को नजर भेंट करते थे तो महाराव अपने आसन से खड़े होकर नजर स्वीकार करते थे।

इस प्रकार कोटा में जागीरदारों को कई उपाधियाँ एवं विशेष सम्मान प्राप्त था। सामन्तों के विशेषाधिकारों ने ही कोटा महाराव व जालिमसिंह के मध्य सन्तुलन बनाये रखा।

(ग) कोटा राज्य के प्रमुख जागीरी ठिकाने

कोटा राज्य के ताजीमी सरदारो की संख्या 36 थी। इनमें अधिक संख्या हाड़ा चौहानों की थी। इनमें 8 जागीरें उन हाड़ा वंश के शासकों की हैं जिन्हें कोटरियात कहा जाता था। कोटा राज्य के प्रमुख ठिकानों में से कोटड़ा, बमूलिया, सांगोद, आमली, खेरला, अन्ता तथा मूण्डला के ठिकाने किशोरसिंहोत परिवार के थे। पलायथा का ठिकाना मोहनसिंहोत परिवार का था।

पलायथा – राव माधोसिंह के द्वितीय पुत्र मोहनसिंहोत को 84 गाँव सहित पलायथा की जागीर दी गई थी।[20] यह ठिकाना कोटा राज्य के पूर्व में 26 मील दूर काली सिन्ध नदी के दायें तट पर था। शासक के भाई होने के कारण यहाँ के जागीरदारों की कोटा राज्य में विशेष प्रतिष्ठा रही है। कोयला एवं पलायथा का स्थान राज्य में एक समान ही होने से ये दोनों प्रायः एक साथ दरबार में नहीं आते थे।[21] पलायथा के जागीरदारों ने कोटा राज्य की खूब सेवा की।

यहाँ के जागीरदारों को 'आप' की पदवी प्राप्त थी। आप मोहनसिंह पलायथा के जागीरदार ही नहीं अपितु मुगल साम्राज्य में आठ सौ सवार के मनसबदार भी थे। धरमत के युद्ध में इन्होंने भी राव मुकन्द सिंह के साथ वीरगति पाई थी।[22] इसी ठिकाने के आप रूपसिंह ने भटवाड़ा के युद्ध में अपनी वीरता दिखाई तो आप अमरसिंह ने अंग्रेजों की सहायतार्थ रणभूमि में अपने प्राणों का बलिदान दिया। जिसके प्रति अंग्रेजों ने आभार प्रकट किया।

महाराव शत्रुशाल द्वितीय के शासन काल में शासन प्रबन्ध हेतु फैजअली खाँ द्वारा कौंसिल का गठन किया तो इसी ठिकाने के आप अमरसिंह ने सन् 1877 से 1896 में कौंसिल भंग होने तक शासनकार्य में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। वे अपने समय के शक्तिशाली जागीरदार थे। जिनके महत्व एवं प्रतिभा को अंग्रेज सरकार तक मान्यता देती थी। आप अमर सिंह के पुत्र औंकार सिंह ने महाराव उम्मेदसिंह द्वितीय के शासनकाल में पुलिस एवं सेना विभाग के महत्वपूर्ण उच्च पदों पर कार्य किया। वे महकमा खास के सदस्य भी रहे एवं निष्ठा ,परिश्रम से महाराव की सेवा की। उन्हें

भारत सरकार द्वारा 1940 में 'नाईट हुड' की उपाधि भी प्रदान की गई। वे महाराव क विश्वासपात्र एवं राज्य के प्रमुख स्तम्भ रहे थे।[23]

आप औंकारसिंह के पिता आप अमर सिंह को सेवानिवृति के समय महाराव ने दो हजार वार्षिक आय की जागीर एवं दो सौ पचास रूपये प्रति माह पेन्शन दी थी।[24] आप अमरसिंह के ज्येष्ठ पुत्र प्रतापसिंह को कोटा राज्य की ओर से 5000 रूपये वार्षिक आय की जागीर दी गई थी किन्तु इनकी मृत्यु हो जाने पर कनिष्ठ पुत्र औंकार सिंह को ही यह जागीर प्राप्त हो गई थी।[25] इस ठिकाने की वार्षिक आय 21000 रूपये थी।

पलायथा के जागीरदार प्रारम्भ में शक्तिशाली एवं वीर साहसी रहे। इसलिए जालिमसिंह के मन में इनके प्रति ईष्या की भावना रही। आप अमरसिंह जो अंग्रेजों की सहायतार्थ कर्नल मानसून को बचाते हुए वीरगति को प्राप्त हुए थे। इनकी मृत्यु के पश्चात पलायथा की जागीर जालिमसिंह द्वारा षड़यन्त्र पूर्वक छीन ली थी। पलायथा के पाँच भाई डाबरी, नागदा, कुन्जेड़, बड़वा और राजगढ़ प्रतिष्ठित जागीर वाले थे।[26] ये भी झाला के विरोधी थे। अतः झाला ने इनकी भी जागीरें छीन इन सबको राज्य से निर्वासित कर दिया था। फिर महाराव किशोरसिंह ने इन्हें पुनः बसाया।[27] पलायथा के कुँवर औंकारसिंह जॉर्ज पंचम के राजतिलक दरबार में महाराव उम्मेदसिंह के साथ दिल्ली में उपस्थित हुए थे।[28]

कोयला – यह ठिकाना कोटा राज्य के प्रथम नरेश राव माधोसिंह द्वारा उनके चौथे पुत्र कन्हीराम को प्रदान किया गया था। राज दरबार में इनकी पहली बैठक होती थी। इन्हें 'आप' की उपाधि से सम्बोधित किया जाता था।[29] इस ठिकाने के कन्हीराम भी धरमत के युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुए थे।[30] इस ठिकाने के कुँवर पृथ्वीसिंह ने राजमहल के युद्ध में जयपुर के माधोसिंह की ओर से ईश्वरसिंह के विरूद्ध युद्ध लड़ा था एवं वीरता पूर्वक लड़ते हुए बुरी तरह घायल हो गये थे।[31] महाराव भीमसिंह प्रथम के समय बून्दी के जालिम सिंह ने कोटा पर आक्रमण किया। उस समय महाराव कोटा से बाहर थे तब कोयला के आप अजबसिंह ने वीरता पूर्वक कोटा नगर की रक्षा हेतु युद्ध का संचालन किया था।[32] महाराव दुर्जनशाल के समय भी आप

अजबसिंह (कोयला) ने सन 1804 में गरोठ (इन्दौर) के युद्ध में प्रसिद्धि प्राप्त की थी जब वे अंग्रेजी सेना के कर्नल मानसून की तरफ से लड़ते हुए घायल हुऐ थे।[33]

महाराव उम्मेद सिंह प्रथम के समय देशथी जागीरदारों में आप भगोतसिंह कोयला के मुख्य जागीरदार थे। उस समय कोयला की जागीर में अठारह गाँव थे और एक सौ तिरेपन घोड़ों से उनको चाकरी करनी पड़ती थी।[34] महाराव किशोरसिंह व जालिम सिंह के मध्य हुये मांगरोल के युद्ध में कोयला के आप राजसिंह महाराव की तरफ से सम्मिलित हुए थे। इन्हीं आप राजसिंह ने महाराव रामसिंह द्वितीय के समय भी कोटा राज्य को अपनी महत्वपूर्ण सेवाएँ दी थीं। 1857 की क्रान्ति के समय कोयले के आप अजीतसिंह एवं उनके काका सरदार सिंह ने कोटा की सहायतार्थ क्रान्तिकारियों से युद्ध किया । 1857 में बागियों द्वारा सबसे बड़ा हमला कोयला की हवेली पर हुआ था।[35]

आप कन्हीराम की 10 वीं पीढ़ी में आप गोविन्द सिंह हुये। आप गोविन्द सिंह कोयला कोटा राज्य की सेना के जनरल आफिसर कमाण्डिंग के पद पर रहे।[36] इन्होंने सेना के पुनर्गठन का कार्य किया। भारत सरकार ने इनकी सेवाओं के बदले इन्हें 'राय बहादुर' का खिताब दिया था।[37] 2 अप्रेल 1929 को उनका अल्पायु में निधन हो गया था। उनके निधन से दरबार के एक योग्य व्यक्ति का अभाव हो गया।[38] सेना का उच्चतम पद प्राप्त करने के साथ ही आप गोविन्द सिंह कोटा राज्य के क्रिकेट के एक उत्कृष्ट खिलाडी भी रहे हैं। उन्होंने मेयो कॉलेज से शिक्षा प्राप्त की। 10 सितम्बर 1904 को मेयो कॉलेज में क्रिकेट खेलते हुए नसीराबाद जिमखाना के विरूद्ध नाबाद 142 रन बनाये थे। उनके द्वारा क्रिकेट मैंचों में लगाये गये छक्के दर्शनीय होते थे।[39] कोयला के आप गोविन्दसिंह जॉर्ज पंचम के राजतिलक दरबार में महाराव उम्मेदसिंह के साथ दिल्ली में उपस्थित हुए थे।[40]

कोयला की जागीर में आप गोविन्द सिंह के समय 9 गाँव थे। ये कोटा राज्य को 2101 रूपये वार्षिक कर देते थे एवं सेवाएँ एवं सिपाही रखने के एवज में 1894 रूपये पौने एक आना राज्य को देते थे। कोयला ठिकाना की 11 वीं पीढ़ी के आप रघुराजसिंह थे। आप कोटा नरेश के 1948 से मिलिट्री सचिव रहे थे। ये 1952 से

1957 तक राजस्थान विधानसभा के सदस्य भी रहे थे।[41] कोटा राज्य को कोयला के जागीरदारों द्वारा महत्वपूर्ण सेवाएँ प्राप्त हुई।

कुनाड़ी – कुनाड़ी चम्बल नदी के बायें तट पर कोटा नगर के सामने स्थित है। कुनाड़ी का ठिकाना कोटा नरेश राव मुकुन्दसिंह हाड़ा ने सन् 1644 में देलवाड़ा (मेवाड़) के राजराणा जीतसिंह झाला के तीसरे पुत्र अर्जुन सिंह को राज की उपाधि सहित प्रदान किया था।[42] यहाँ के सरदार राज चन्द्रसेन का कोटा राज्य में बहुत प्रभाव था। ये झाला राजपूतों के जेतावत शाखा के थे। राज दरबार में इनकी बैठक प्रथम एवं बायीं तरफ थी।[43] इस ठिकाने में कई प्रमुख जागीरदार हुए जिन्होंने कोटा राज्य को महत्वपूर्ण सेवाएँ दीं। राज भवानी सिंह, राज अर्जुन सिंह द्वितीय, राज विजय सिंह इत्यादि ने कोटा राज्य की सेवा की। राज चन्द्रसेन, राज विजय सिंह के पुत्र थे। भारत सरकार द्वारा राज विजय सिंह को 'रायबहादुर' की उपाधि प्रदान की गई थी।[44] महाराव उम्मेदसिंह द्वितीय के समय वे कोटा राज्य में पुण्य विभाग देखते थे।

राज विजयसिंह विद्यानुरागी एवं इतिहास प्रेमी थे। वे राज रूपसिंह के स्वर्गवासी हो जाने पर देलवाड़ा (मेवाड़) से गोद आकर कुनाड़ी ठिकाने के उत्तराधिकारी बने। सन् 1926 में राज चन्द्रसेन कुनाड़ी के उत्तराधिकारी हुये। राज चन्द्रसेन ने मेयो कॉलेज से शिक्षा प्राप्त की। इनके अतिरिक्त इस ठिकाने के कई कुँवर मेयो कॉलेज शिक्षा प्राप्ति हेतु गये। राज चन्द्रसेन के समय इस जागीर में 8 गाँव थे। ये दो हजार छः सौ नब्बे रूपये वार्षिक राज्य को देते थे।[45] राज चन्द्रसेन महाराव के प्राईवेट सेक्रेटरी के पद पर नियुक्त हुऐ थे। इनके तीन कुँवर हुए – कुँवर गजेन्द्र सिंह, कुँवर किशन सिंह एवं कुँवर लक्ष्मण सिंह। कुँवर गजेन्द्र सिंह कोटा के सब जज के पद पर नियुक्त थे।[46]

सारोला – सारोला कोटा नगर से 70 मील उत्तर पूर्व में स्थित है। इस ठिकाने के संस्थापक बालाजी पण्डित पूना के पेशवा बाजीराव की सेवा में थे। जब मराठों ने उत्तरी भारत पर आक्रमण किया तब कोटा राज्य से गुजरते हुए बाजीराव पेशवा ने बालाजी यशवन्त को बून्दी और कोटा दरबार से चौथ तय करने के लिए नियुक्त किया था और बाद में बून्दी, कोटा तथा उदयपुर (मेवाड़) से ये चौथ वसूल करने के

लिए नियुक्त हुए।[47] बाजीराव ने कोटा पर अधिकार कर महाराव दुर्जनशाल से 40 लाख रूपये प्राप्त किये। बालाजी यशवन्त नाम के कोंकणस्थ सारस्वत ब्राह्मण को धन का हिसाब लेने के लिए यहाँ भेज दिया। बालाजी यशवन्त की सेवा के उपलक्ष में महाराव दुर्जनशाल ने बरखेड़ी नामक गाँव जागीर में दिया। पेशवा ने उसे अपना वकील बना कोटा में नियुक्त किया।[48] बालाजी ने अपनी कोठी कोटा में ही स्थापित की और महाजनी का कारोबार भी प्रारम्भ कर दिया। बालाजी के पुत्र ने कोटा के राजराणा दीवान जालिमसिंह झाला से मित्रता बढ़ाई और सन् 1766 में जब होल्कर ने कोटा पर अपना प्रभाव स्थापित करना चाहा तब जालिमसिंह ने कोटा की सहायता की। उसने होल्कर की सेना को समझा बुझा कर वापस भेज दिया। उस समय कोटा राज्य ने इनसे 927364 रूपये ऋण लिए था। सन् 1771 में सारोला की जागीर इस ऋण के एवज में गिरवी रखी गई।

सन् 1817 में ईस्ट इण्डिया कम्पनी व कोटा में सन्धि के बाद मराठों को दिया जाने वाला राजस्व कम्पनी को दिया जाने लगा। बालाजी का चौथ इकट्ठा करने वाला पद समाप्त हुआ परन्तु सारोला की जागीर पण्डित गणपत राव के पास ही रही।[49] दरबार में सारोला के ठिकानेदारों की बैठक महाराव के बायें हाथ की ओर दूसरे स्थान पर रही थी।[50] इस जागीर की वार्षिक आय 27000 रूपये थी एवं 7 गाँव जागीर में थे। यहाँ के मराठा जागीरदार राज्य को चाकरी नहीं देते थे।[51] सन् 1925 में गणपत राव के स्वर्गवासी हो जाने पर पण्डित पुरूषोत्तम राव गणपतराव के बड़े पुत्र चन्द्रकान्त राव के साथ उत्तराधिकारी हुए। पं. चन्द्रकान्त राव का जन्म सन् 1903 में हुआ था। पं. पुरूषोत्तम, पं. गणपतराव, चन्द्रकान्त राव के अतिरिक्त सूर्यकान्त राव तथा लक्ष्मीकान्त राव दो पुत्र और थे। पं. पुरूषोत्तम राव सन् 1936 में स्वर्गवासी हो गये। इनके बाद चन्द्रकान्त राव उत्तराधिकारी हुए।[52]

राजगढ़ – राव माधोसिंह के पुत्र मोहन सिंह के एक पुत्र गोवर्धन सिंह ने इस जागीर का स्वामित्व ग्रहण किया था।[53] औरंगजेब एवं जाटों के मध्य हुए युद्ध में औरंगजेब की ओर से कोटा के राव किशोर सिंह व बून्दी के राव राजा अनिरूद्ध सिंह युद्ध में सम्मलित हुए थे। राव किशोर सिंह के साथ राजगढ़ के आप गोवर्धन सिंह भी थे। जब बून्दी के राव राजा अनिरूद्ध सिंह ने युद्ध से पलायन करने का प्रयास किया

तो राजगढ़ के आप गोवर्धन सिंह ने उनका मार्ग रोक उनसे युद्ध क्षेत्र में डटे रहने का आग्रह किया। परन्तु अनिरूद्ध सिंह का पीछे मुड़ने का साहस नहीं हुआ। तब गोवर्धन सिंह ने बून्दी नरेश की पगड़ी धारण की एवं उनके चँवर वरदार को साथ रख कर लड़ने लगे। इससे स्वपक्ष और विपक्ष के सैनिकों को यह विश्वास बना रहा कि अनिरूद्ध सिंह अब तक युद्ध लड़ रहे हैं।[54] इस युद्ध में आप राजगढ़ वीरगति को प्राप्त हुये थे। उनका पुत्र दौलत सिंह महाराव भीमसिंह के साथ निजाम उलमुल्क के विरूद्ध युद्ध में मारा गया। दौलतसिंह के पौत्र आप नाथ सिंह सन् 1761 में कोटा और जयपुर के बीच हुए भटवाड़ा के युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुए।[55]

महाराव उम्मेदसिंह के समय राजगढ़ के आप शिवनाथ सिंह थे। नाथ सिंह के पौत्र एवं शिवनाथ सिंह के पुत्र देवसिंह ने जालिम सिंह झाला के विरूद्ध महाराव किशोरसिंह के पक्ष में मांगरोल के युद्ध में भाग लिया और वीरगति को प्राप्त हुए।[56] पलायथा, डाबरी, नागदा के जागीरदार इनके भाई–बन्धु थे। आप माधोसिंह राजगढ़ में गोद आए एवं 1917 में उत्तराधिकारी हुए।

घाटी – बून्दी के राव वीरसिंह के पोते मेवसिंह ने इस जागीर की स्थापना की थी। यह जागीर मेवात उपशाखा के हाड़ाओं की कही जाती है। इस जागीर में घाटी के साथ तीन गाँव और सम्मिलित हैं। ये सभी कोटा से 36 मील दक्षिण की ओर स्थित हैं। राव मेवसिंह के वंशजो में जोरावर सिंह महाराव भीमसिंह के साथ 1736 ई0 में निजाम के विरूद्ध हुए मुकाबले में मारे गये। जोरावर सिंह के बेटे खुशालसिंह को यह जागीर प्राप्त हुई परन्तु उसके पुत्र अजीतसिंह ने कोटा के दीवान को मरवा डाला इसलिए यह जागीर जब्त कर ली गई। अजीतसिंह के पोते गुमानसिंह ने भटवाड़ा के युद्ध में वीरता का प्रदर्शन किया। अतः घाटी की जागीर उसे प्रदान की गई।[57] राव शत्रुशाल सिंह, राव दुर्जनशाल सिंह इत्यादि यहाँ के जागीरदार रहे हैं। सन् 1924 में रावत दुर्जनशाल के देहान्त के पश्चात रावत पृथ्वीसिंह यहाँ के उत्तराधिकारी बनाये गये।[58]

सारथल – यह झालावाड़ का सबसे बड़ा ठिकाना था। किन्तु सन् 1898 में जब झालावाड़ के नरेश जालिमसिंह को भारत सरकार ने कुप्रबन्ध से असन्तुष्ट होकर गद्दी से हटाया तो 15 परगने पुनः कोटा राज्य में मिला दिये गये[59] तब यह जागीर

पुनः कोटा के अधीन आ गई। ठाकुर अमरसिंह जो जोधपुर में रहते थे, महाराजा मानसिंह से अनबन हो जाने के कारण सन् 1806 में कोटा आ गये। उनका कोटा के राजराणा जालिमसिंह पर बहुत प्रभाव था। अतएव उन्हें हरिगढ़ की जागीर प्राप्त हो गई। उनकी मृत्यु के पश्चात उनके पुत्र प्रेमसिंह ,मदनसिंह झाला के साथ 1838 में झालावाड़ आ गये और यहाँ उन्हें सारथल की जागीर प्राप्त हुई। उस समय सारथल की जागीर नरपतसिंह नामक राजपूत के अधीन थी किन्तु वे कोटा चले गये और उन्हें कोटा की ओर से कचनावदा की जागीर प्रदान की गई।

ठाकुर प्रेम सिंह की निःसंतान मृत्यु होने के पश्चात उनकी विधवा पत्नी ने मारवाड़ के विजयसिंह को गोद लिया। सन् 1888 में ठाकुर विजयसिंह के देहान्त के पश्चात उनके पुत्र शिवदान सिंह इस जागीर के उत्तराधिकारी हुए। सन् 1921 में शिवदान सिंह की मृत्यु हो गई तथा उनके छोटे भाई ठाकुर बख्तसिंह जागीर के उत्तराधिकारी बने। ठाकुर साहब की सन् 1929 में मृत्यु हो गई। तत्पश्चात् इनके पुत्र दीपसिंह उत्तराधिकारी बनाये गये। सारथल ठिकाने से छः सौ तिरेपन रूपये वार्षिक खिराज के रूप में और 20 घुड़सवारों के बदले सोलह सौ अस्सी रूपये नकद कोटा राज्य को दिये जाते थे। यहाँ के ठाकुर चम्पावत शाखा के राठौड़ राजपूत थे।[60]

कचनावदा – बून्दी के राव सुर्जन के तीसरे पुत्र रायमल ने इस जागीर को स्थापित किया था। यहाँ के जागीरदार भी हाड़ा वंशी राजपूत थे। बादशाह अकबर ने रायमल को उनकी महत्वपूर्ण सेवाओं के बदले पलायथा जागीर में दिया था लेकिन रायमल के पोते हरिसिंह से वह जागीर छीन ली गई। हरिसिंह के पुत्र दौलतसिंह को महाराव भीमसिंह ने सारथल जागीर में दिया था।[61] सन् 1838 में सारथल का इलाका झालावाड़ राज्य में चला गया वहाँ के ठाकुर नरपतसिंह कोटा आ गये। इन्हें कोटा राज्य की ओर से कचनावदा जागीर में दिया गया।[62] इस जागीर में 7377 रूपये वार्षिक आय के 3 गाँव थे। इनको राज्य को खिराज नहीं देना पड़ता था।[63] ठाकुर नरपत सिंह की मृत्यु के पश्चात् उनके पुत्र मोतीसिंह सन् 1876 में इस जागीर के उत्तराधिकारी हुए। उनके पश्चात उनके पुत्र अमरसिंह सन् 1914 में उत्तराधिकारी बने।[64] यहाँ के जागीरदारों को कोटा रियासत के दरीखाने की बैठक में दाहिनी ओर तृतीय क्रम में स्थान प्राप्त था।[65]

खेड़ली – यह ठिकाना झाला उपशाखा के तनवारवंशी राजपूतों का है। इस ठिकाने के संस्थापक प्रतापसिंह थे।

श्रीनाल – यह ठिकाना भी झाला उपशाखा के तनवारवंशी राजपूतों का है। इस ठिकाने के जागीरदार खेड़ली के प्रतापसिंह के वंशज ही है। इस जागीर में एक गाँव है जो कोटा के पूरब में उससे 42 मील की दूरी पर स्थित है। फरवरी 1935 में यहाँ के ठाकुर जालिमसिंह की मृत्यु हो जाने पर उनके छोटे भाई इस जागीर के उत्तराधिकारी हुए।[66]

डाबरी – यह ठिकाना भी हाड़ा वंशी राजपूतों का है। यहाँ के जागीरदार कोटा के प्रथम नरेश राव माधोसिंह ने मोहनसिंह को पलायथा की जागीर प्रदान की थी। डाबरी की जागीर में केवल एक गाँव है जो कोटा से 38 मील दूरी पर पूरब दिशा में स्थित है। पलायथा,नागदा,कुन्जेड़,बड़वा एवं राजगढ़ के जागीरदार डाबरी के जागीरदारों के भाई हैं। जब झाला जालिम सिंह ने पलायथा की जागीर छीनी तब इन लोगों की भी जागीरें छीन ली गई थी। जो बाद में महाराव किशोरसिंह द्वारा लौटाई गईं।[67] यहाँ के आप करणसिंह के संतान न होने पर खुमाणसिंह को गोद लिया जो गया सन् 1910 में इस जागीर के उत्तराधिकारी हुये। आप खुमाणसिंह ने मेयो कॉलेज से शिक्षा प्राप्त की थी।[68]

हरनौदा – इस ठिकाने के जागीरदार राव अर्थात भाट जाति के है। ये लोग करौली के निवासी थे। यहाँ से चतुर्भुज टोंक के गूगेर नामक स्थान पर आया और खिलजी राजा ने उन्हें हरनौदा की जागीर प्रदान की। चर्तुभुज का पुत्र प्रतापसहाय था जिसे रावराजा भानू सिंह ने बून्दी आने का निमन्त्रण दिया। रावराजा ने प्रतापसहाय को हरनौदा के साथ अन्य तीन गाँव की जागीर भी प्रदान की। प्रतापसहाय को ही कोटा राज्य से रावराजा की उपाधि तथा तीन गाँव की जागीर प्राप्त हुई थी। यहाँ के जागीरदार अमरसहाय के पुत्र न होने पर शंकर सहाय को गोद लिया गया । सन् 1919 से रावराजा शंकर सहाय इस जागीर के उत्तराधिकारी थे।[69]

कोटड़ा – ठिकाना मूण्डली के महाराजा प्रतापसिंह के कनिष्ठ पुत्र शिवनाथ सिंह हाड़ा को कोटड़ा व चरेल कोटा महाराव रामसिंह द्वितीय द्वारा 1857 की क्रान्ति के

पश्चात पुरस्कार स्वरूप जागीर में दिया गया था। इन्होंने कैथूनीपोल में बागियों से संघर्ष कर अपने साहस व पराक्रम का परिचय दिया था।[70]

इनके पुत्र नहीं था अतः इन्होंने अपने ज्येष्ठ भ्राता के पुत्र छगनसिंह को आमली से गोद लिया था जो इनके उत्तराधिकारी हुये। छगनसिंह के दो पुत्र हुये।

महाराजा छगनसिंह ने बपावर के समीप परवन नदी के बाँये तट पर कोटड़ा के गढ़ व महलों का निर्माण करवाया था। महाराव खुशालसिंह द्वितीय के समय इनसे चरेल गाँव लेकर उसके स्थान पर करारिया गाँव जागीर में दिया था। जिसकी वार्षिक आय दो हजार रूपये थी। महाराजा छगनसिंह के ज्येष्ठ पुत्र लालसिंह बमूल्या ठिकाने में 1887 में जयसिंह के नाम से गोद चले गये जबकि कनिष्ठ पुत्र उदयसिंह उम्मेदसिंह के नाम से कोटा महाराव शत्रुशाल द्वितीय के उत्तराधिकारी बने। तत्पश्चात महाराव छगनसिंह ने रटावद के महाराजा शंकरसिंह के पुत्र गुलाबसिंह को गोद लिया । महाराजा छगनसिंह के समय कोटा के दरीखाने की बैठक में कराड़िया का चतुर्थ स्थान था, जो महाराव के दाहिनी ओर था।[71]

महाराजा छगनसिंह की मृत्यु के पश्चात 1916 में महाराजा गुलाबसिंह कोटड़ा की गद्दी पर बैठे। इनकी शिक्षा मेयो कॉलेज से हुई थी। इनके एक पुत्री नरेन्द्र कुमारी थी। महाराजा गुलाबसिंह की मृत्यु के पश्चात आमली के महाराजा देवसिंह के द्वितीय पुत्र बुद्धसिंह कोटड़ा में गोद आये और उत्तराधिकारी बने। महाराजा बुद्धसिंह के समय में ही कोटड़ा वीरान हो गया। महाराजा बुद्धसिंह का सम्पूर्ण जीवन कोटा में रेतवाली के समीप कोटड़ा हाउस में व्यतीत हुआ। इन्होंने मेयो कॉलेज अजमेर से 1947 में बी.ए. पास किया। ये कोटड़ा के अन्तिम जागीरदार थे। इन्होंने रामराज्य परिषद के बैनर तले सन् 1952 में बाँरा विधानसभा क्षेत्र से चुनाव लड़ा किन्तु पराजित हुये। कोटा राज्य को 1700 रूपये वार्षिक कर के रूप में दिये जाते थे।[72]

बम्बूलिया – कोटा के महाराव दुर्जनशाल ने सन 1727 मे इटावा के समीप नौनेरा के बाद आटोन सहित बमूलिया चालीस हजार रूपये वार्षिक में एक दर्जन गाँवों सहित महाराजा सूरजमल को जागीर में दिया था।[73] महाराजा सूरजमल अन्ता के महाराजा पृथ्वीसिंह के तृतीय पुत्र थे। सन 1761 में भटवाड़ा के युद्ध में सूरजमल ने कोटा की ओर से बड़ी वीरता से युद्ध लड़ा।[74] सन् 1764 में महाराजा सूरजमल के निधन के

पश्चात उनके ज्येष्ठ पुत्र देवसिंह गद्दी पर बैठे। महाराव उम्मेदसिंह प्रथम के समय इनकी जागीर की वार्षिक आय एक लाख के लगभग थी।[75]

कोटा राज्य में झाला जालिमसिंह की बढ़ती हुई शक्ति एवं उसके कुचक्रों के विरूद्ध हाड़ा सरदारों ने अपना गुट तैयार किया था। इन असन्तुष्ट हाड़ा सरदारों के नेता देवसिंह थे। झाला जालिमसिंह ने इनके विरूद्ध युद्ध हेतु कोटा की फौज को रवाना होने का आदेश दिया था। किन्तु महाराव उम्मेदसिंह प्रथम ने सेना को आक्रमण नहीं करने का आदेश दिया क्योंकि ये कोटा के भाई थे।[76] उस समय तो जालिमसिंह ने महाराव के आदेश का विरोध नहीं किया किन्तु एक वर्ष बाद ही उसने एक अंग्रेज फौजी अफसर मूसाकल्पी को इसके विरूद्ध रवाना कर दिया।[77] साथ ही गैंता के महाराजा बैजनाथ के नेतृत्व में भी एक सेना कोटा से रवाना कर दी। कई दिनों तक घेरा डला रहा एवं गोलाबारी जारी रही। अन्त में विवश होकर महाराजा देवसिंह जालिम सिंह की शर्त स्वीकार कर अपनी वंश परम्परागत भूमि को छोड़कर परिवार सहित चले गये। काफी समय इधर–उधर भटकने के पश्चात उन्हें सिन्धिया के राज्य में एक छोटी सी जागीर प्राप्त हुई। फिर सिन्धिया के कहने पर जालिम सिंह ने देवसिंह के पुत्र जोरावर सिंह को सात गाँव सहित बम्बूलिया की जागीर प्रदान की जिसकी आय दस हजार रूपये थी।[78]

महाराजा देवसिंह वापस बम्बूलिया नहीं आये बल्कि ग्वालियर में ही रहे। सन् 1804 में ग्वालियर में रहते हुए उनका निधन हो गया। सन् 1804 में इनके पुत्र जोरावरसिंह ने अपने पिता की स्मृति में बम्बूलिया के क्षारबाग एक छतरी का निर्माण करवाया। इन्होंने बम्बूलिया में महल बनवाए एवं डोरा भी फिरवाया। कर्नल टॉड ने एक सर्वे के दौरान बम्बूलिया होकर कोटा जाते समय 1807 में महाराजा जोरावरसिंह के निवेदन पर उनका आतिथ्य सत्कार स्वीकार किया।[79]

मांगरोल के युद्ध के समय महाराजा जोरावरसिंह ने जालिमसिंह के विरूद्ध महाराव किशोरसिंह के पक्ष में युद्ध लड़ा था। महाराव की इस युद्ध में पराजय हुई। इस युद्ध के पश्चात कोटा के अनेक जागीरदारों ने कर्नल टॉड को पत्र लिख कर माफी माँगी थी। बम्बूलिया की माँ जी साहिबा ने भी पत्र भेजा जिसमें लिखा था कि उनके पुत्र ने महाराव का साथ देकर स्वामिभक्ति का परिचय दिया है। अतः उसको

दण्ड न देकर सम्मान किया जाना चाहिये। टॉड ने पत्र का उत्तर देते हुये लिखा कि आपके पत्र का उत्तर और आपका पुत्र दोनों साथ ही बम्बूलिया पहुँच रहे हैं। इस प्रकार टॉड ने बम्बूलिया के पक्ष में निर्णय दिया।[80]

कोटरियात के राज्य

हाड़ौती के उत्तरी भाग को अंग्रेजों के समय कोटरियात कहा जाता था। उस समय के सभी नक्शों और कागजातों में इस क्षेत्र को कोटरियात के नाम सें दर्शाया गया है। कोटरियात का सामान्य अर्थ है 'कोटड़ियों का समूह'। उदयपुर, जयपुर, जोधपुर, बीकानेर, कोटा में ये विशेष अधिकार प्राप्त बड़ी जागीरें या ठिकानें थे जो कोटड़ी कहलाते थे। अन्य राज्यों की कोटड़ियों को इतने अधिकार नहीं थे जितने कोटा राज्य या हाड़ौती की कोटड़ियों को थे। सन् 1817 तक इस क्षेत्र के 15 राज्य में से केवल 8 ही रह गये थे। दिसम्बर सन् 1817 को जब कोटा राज्य और कम्पनी सरकार के बीच सन्धि हुई थी, इन आठ छोटे–छोटे राज्यों को कोटा राज्य से सम्बद्ध करके इनका नाम कोटरी कर दिया। सुविधा की दृष्टि से कम्पनी सरकार से इनका पत्र व्यवहार कोटा राज्य की मध्यस्थता से होने लगा तभी से यह इलाका कोटरियात कहलाने लगा। ये अपना ंखिराज भी सीधे कम्पनी सरकार को देते थे।[81]

1761 से पूर्व इस क्षेत्र में हाड़ाओं के ये 15 छोटे–छोटे राज्य थे जो गढ़ रणथम्भौर सरकार और अजमेर सूबे द्वारा सीधे मुगल सल्तनत से जुड़े हुए थे।[82] ये सारे राज्य बून्दी राज परिवार से निकले थे। बादशाह अकबर एवं जहाँगीर के समय मुगल दरबार में बूँदी के शासकों राव सुर्जन, राव भोज, राव रतन की काफी प्रतिष्ठा थी। राव भोज ने अपने पुत्र हृदयनारायण और केशवदास तथा राव राजा रतनसिंह ने अपने पाटवी कुँवर गोपीनाथ के राजकुमारों इन्द्रसाल, बैरीसाल, मोहकमसिंहोत को रणथम्भौर सरकार के क्षेत्र में जागीरें दिलवाई जिसमें बूँदी और कोटा के अलावा हाड़ाओं के 15 छोटे राज्य स्थापित हो गये। ये राज्य थे – दूनी, ढीपरी, करवाड़, बमोरी, आवां (कनवास), इन्द्रगढ़, बलबन, करवर, खातौली, गैंता, पुसोद, पीपल्दा, पाड़ली, आंतरदा और फलौदी। इन राज्यों की स्थापना मुगल बादशाहों के फरमान से हुई थी। अतः नये शासक के गद्दी पर बैठने पर नया फरमान तथा खिलअत भेजी

जाती थी। मुगल दरबार में इन्हें राजा शब्द से सम्बोधित किया जाता था। गढ़ रणथम्भौर की रक्षा का इन राजाओं पर विशेष दायित्व था।[83]

बादशाह जहाँगीर से लेकर फर्रुखसियर (1720) तक तो इन राजाओं ने मुगल तख्त हेतु अपने प्राणों का उत्सर्ग किया किन्तु बाद में स्थिति परिवर्तन हो जाने से बाद शक्ति क्षीण होती गई। इस समय जयपुर के सवाई जयसिंह का प्रभाव बढ़ता जा रहा था। रणथम्भौर एवं इसके इलाके पर मुगलों का प्रभाव या पकड़ कम हो जाने से सवाई जयसिंह ने 1724 में बादशाह मुहम्मद से यह प्रदेश इजारे पर ले लिया। रणथम्भौर दुर्ग में बादशाह का किलेदार रहता था जो खिराज एवं लगान की वसूली कर इजारे की निर्धारित राशि शाही खजाने में व शेष राशि जयपुर को भेज देता था। इन छोटे राज्यों की खिराज भी किलेदार के माध्यम से जयपुर में जाने लगी। ये राजा सवाई जयसिंह को बादशाह का इजारेदार मानते थे अतः इन राज्यों ने खिराज देने में कोई आपत्ति नहीं की।[84] सवाई जयसिंह ने भी इन राजाओ के साथ मधुर सम्बंध बनाये रखे।

सन् 1736 ई के बाद राजस्थान में मराठों का दबाव व घुसपैठ बढ़ जाने से इस इलाके में भी लूटपाट बढ़ती गई। मुगल सल्तनत इनकी रक्षा करने में असमर्थ थी। रणथम्भौर के किलेदार ने बूँदी के रावराज उम्मेदसिंह से सहायता माँगी किन्तु वह असहाय था क्योंकि उसने 1748 में मराठों की मदद से ही अपना राज्य प्राप्त किया था। साथ ही उसे अपने राज्य का प्रबन्ध देखना था। अतः इन परिस्थितियों से किलेदार की सिफारिश से यह दुर्ग और इलाका मुगल बादशाह ने पूर्ण रुप से जयपुर के माधोसिंह को दे दिया।[85]

जब सवाई माधोसिंह को इस इलाके का स्वामित्व मिल गया तो उसने इन राजाओं से मुगल बादशाहों की भाँति नौकरी लेना चाहा। ये राजा जयपुर के अधीन नहीं जाना चाहते थे। बून्दी राज्य इस समय इनकी मदद करने में असमर्थ था। अतः इन राज्यों ने कोटा की शरण ली। ये सब राजा मिलकर महाराव शत्रुशाल के पास आये और कहा कि ये राज्य कोटा की मातहती करने को तैयार है तथा कोटा राज्य जयपुर से इनकी रक्षा करे। कोटा महाराव ने इस प्रस्ताव को स्वीकार कर अपने मुहासिब राय अखयराय, खेड़ली के महाराजा बख्तसिंह और सांगोद के महाराजा

नाथसिंह को इन राजाओं के साथ सन्धि की शर्तें तय करने हेतु नियुक्त किया। शर्त के अनुसार इन्द्रगढ़, खातौली इत्यादि के शासक कोटा को नालबन्दी देगें और कोटा इनकी रक्षा करेगा।[86]

इन्हीं कोटरियात के राज्यों के स्वामित्व को लेकर कोटा एवं जयपुर के मध्य सन् 1761 में भटवाड़ा का प्रसिद्ध युद्ध हुआ। इस युद्ध में कोटा और जयपुर के कितने ही सरदार मारे गये किन्तु विजय कोटा राज्य को प्राप्त हुई। कोटा राज्य की सेना ने जयपुर को बुरी तरह परास्त किया। भटवाड़ा की पराजय के बाद जयपुर ने फिर कोटा राज्य से कर माँगने का कभी साहस नहीं किया। सवाई जयसिंह, ईश्वर सिंह तथा माधोसिंह ने कोटा पर बाद में भी आक्रमण किया किन्तु कोटा राज्य सदैव विजयी रहा।[87]

कोटा राज्य के साथ सैनिक सन्धि (सन् 1758) से जुड़ जाने के पश्चात् इन राज्यों ने कोटा राज्य की ओर से अनेक अभियानों में भाग लिया। ये सरदार सदैव कोटा राज्य की सेवा हेतु तत्पर रहे। कोटा राज्य ने भी कई बार अपनी क्षति कर इन राज्यों की सेवा की। कोटरियात के राज्यों की आन्तरिक एवं पारस्परिक सीमा सम्बंधी विवादों को भी कोटा महाराव समय–समय पर सुलझाते रहे।[88]

बूँदी, कोटा, जयपुर और ग्वालियर के बीच ये छोटे राज्य बफर स्टेट के रुप में थे। इन राज्यों का अपना स्वतंत्र अस्तित्व था। अपनी सेना, पुलिस, न्याय व शासन व्यवस्था थी। मुगल सल्तनत से अलग होने तथा रणथम्भौर दुर्ग के जयपुर के अधिकार में चले जाने के बाद (सन् 1754 से 1817) इन राज्यों ने किसी को खिराज नहीं दिया।[89]

मराठों की घुसपैठ व लूटमार से ये कोटरियात के राज्य भी अछूते नहीं रहे और मराठों के कोटा राज्य मे रहने वाले वकील द्वारा इनकी सम्पूर्ण निगरानी की जाती थी।

सिंधिया एवं होल्कर द्वारा इनसे मामलात की वसूली की जाती थी। मामलात की राशि के अत्यधिक होने के कारण कोटरिया अदा नहीं कर पाती थीं तब मराठों ने कोटरियात के सरदारों को नाममात्र का बना कर अपना शासन भी स्थापित किया।

इस कारण से इन सरदारों एवं मराठो में कई बार लड़ाई हो जाती थी एवं मराठे कोटा नरेश को इनके विरुद्ध सैनिक सहायता देने को विवश कर देते थे।[90]

दिसम्बर, 1817 की कम्पनी व कोटा राज्य के मध्य हुई सन्धि से इन कोटरियात के राज्यों को झाला जालिमसिंह की कूटनीति का शिकार होना पड़ा। इन राज्यों को कोटा से सम्बद्ध कर दिया गया। इन छोटे राज्यों को कोटड़ी की संज्ञा दी गई। तब से कम्पनी सरकार के पत्र कोटा की मध्यस्थता से आने जाने लगे। इनके स्वामियों को राजा के स्थान पर कोटड़ी सरदार कहा जाने लगा। चौथ जो सिंधिया द्वारा वसूल की जाती थी उसे अब कम्पनी सरकार को खिराज के रुप मे दिया जाने लगा। इन्द्रगढ़ आदि बड़ी कोटड़ियाँ अपनी खिराज सीधे ब्रिटिश सरकार के पास देवली मे जमा कराती थीं तथा गैंता, करवाड़ इत्यादि हरदावतों की कोटड़ियाँ सुविधा की दृष्टि से कोटा दरबार के पास खिराज जमा कराती थीं। कोटा अपनी खिराज के साथ उसे देवली भेज देता था।

कोटा राज्य मे इन कोटड़ियों के सियासी मामलों एवं अन्य पत्र व्यवहार हेतु अलग विभाग होता था जिसे 'इजलाये गैर' कहा जाता था। करवाड़ के रिकार्ड में ऐसे पत्र संग्रहित हैं। कोटा राज्य की मर्दम शुमारी, पैमाइश, मालगुजारी, वार्षिक आय आदि में भी इन राज्यों की गणना अलग होती थी।[91] इन कोटरियात के राजाओं या सरदारों की कोटा राज्य में बड़ी प्रतिष्ठा थी। कोटा नरेश इन सरदारों के शिष्टाचार एवं ताजीम का पूरा ख्याल रखते थे। कोटा के दरीखाने में इन राज्यों की विशेष बैठक थी। इनकी बैठक प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय दर्जे की थी।[92] बूंदी के नरेशों से भी इन सरदारों का सम्बंध एवं शिष्टाचार पूर्ववत स्थापित था।

इन कोटड़ियों के सरदारों को कई उपाधियाँ प्राप्त थी। इन सरदारों को कई विशेषाधिकार भी प्राप्त थे। इन कोटड़ियों के अपने इजलास खास भी होते थे। अपने मोहर स्टाम्प, पिटीशन पेपर, दस्तावेजी स्टाम्प होते थे जिन पर राज्य चिन्ह तथा राज्य या रियासत अंकित होते थे। उनका अपना झण्डा होता था जिस पर अपना राजचिन्ह अंकित होता था। उनका अपना न्यायालय होता था तथा उन्हें प्रथम श्रेणी के फौजदारी तथा पाँच हजार के दीवानी दावे सुनने का अधिकार था। उनकी अपनी सेना और पुलिस थी । अपने राजस्व, वन, आबकारी, जकात शहधारी आदि विभाग

थे। उन्हें अपने राज्य मे शासन व्यवस्था बनाये रखने की छूट थी। उनके अपने थाने एवं तहसीलें थीं। राजधानियों में कोतवाली होती थी जो छोटे विवाद तत्काल निपटा देती थी। इन्द्रगढ़ में तो नाजिम का पद भी होता था। इन राज्यों का प्रशासनिक अधिकारी कामदार कहलाता था। कोटरियात के शासक अपनी सुविधानुसार मुद्रा चलाने के लिए स्वतंत्र थे।[93]

इन कोटड़ी सरदारों एवं कोटा महाराव भीमसिंह के बीच 28 अप्रेल 1948 को एक एग्रीमेण्ट हुआ जिसके अनुसार इन सरदारों के प्रशासनिक, न्याय और कानून व्यवस्था के अधिकार कोटा नरेश के हाथ में आ गये। कोटरियों के अधिकार बड़े राज्यों के साथ ही भारत सरकार के पास चले गये। अब ये सरदार सामान्य जागीरदार थे जिनको केवल मालगुजारी तथा जंगलात के अधिकार रह गये। कोटा आदि बड़े राज्य को तो राज्य का दर्जा होने से प्रीविपर्स मिला लेकिन इन सरदारों को केवल जागीरदारों की हैसियत से।[94]

इन्द्रगढ़

कोटरियात का सबसे बड़ा राज्य इन्द्रगढ़ था। इन्द्रगढ़ कोटा से लगभग 45 कि.मी. उत्तर की ओर स्थित है। इस राज्य के संस्थापक इन्द्रसाल थे। इन्द्रसाल के वंशज इन्द्रसालोत हाड़ा कहलाते थे।[95] इन्द्रगढ़ की जागीर में 92 गाँव थे जिनकी आय 232822 रुपये थी। ये कोटा राज्य को खिराज के रुप में 17506 रुपये 12 आना देते थे जिसमें से 6969 रुपये जयपुर राज्य को देते थे।[96]

इन्द्रसाल को पहले 12 गाँव का अणघोरा का परगना मिला था। बाद में ढीपरी व ककरावदा का क्षेत्र भी मिल गया। इन्द्रसाल ने इन्द्रगढ़ का किला बना अपनी राजधानी बनाई। इन्द्रसाल राज्य स्थापित करने से पूर्व अपने पिता रावराजा रतनसिंह के साथ रहकर कई शाही युद्धों में भाग ले चुके थे। इसके साथ ही वे अपने काका माधोसिंह के साथ भी कई शाही अभियानों में गये। शाहजहाँनामा के अनुसार उनका देहान्त सन् 1651 में हुआ।

कर्नल टॉड के अनुसार इन्द्रगढ़ के राजा को पहले ''आप'' की पदवी प्राप्त थी बाद में 'महाराजा' की पदवी मिली। महाराजा इन्द्रसाल के पश्चात उनके पाटवी

पुत्र गजसिंह सिंहासन पर बैठे। उन्होंने रावराजा शत्रुशाल के साथ सामूगढ़ के मैदान में (1658) शहजादा औरंगजेब के विरुद्ध युद्ध किया था।

महाराजा गजसिंह के पश्चात् उनका पुत्र सरदार सिंह 1669 ई. में गद्दी पर बैठा। इनके छोटे भाई अमरसिंह ने दौलत खाँ पठान को हराकर खातौली पर अधिकार कर नये राज्य की स्थापना की। महाराजा सरदार सिंह के बाद मेघसिंह एवं छत्रसिंह गद्दी पर बैठे। महाराजा छत्रसिंह के पश्चात् महाराजा देवसिंह गद्दी पर बैठे। इनके बूंदी के राव राजा बुद्धसिंह एवं उम्मेदसिंह से अच्छे सम्बन्ध नहीं थे। राव उम्मेदसिंह ने अप्रसन्न होकर महाराजा देवसिंह इनके पुत्र एवं पौत्र को मरवा दिया एवं इन्द्रगढ़ पर अधिकार कर लिया था। खातौली के राजा व इन्द्रगढ़ के जागीरदारों ने महादेव सिंह के छोटे भाई भगतराज का राज्याभिषेक कर दिया किन्तु बूंदी नरेश ने उसे स्वीकार नहीं किया। बाद में मराठा सरदार के दबाव में भगतराम को राजा बनाया गया। महाराजा भगतराम के बाद में उनके कुँवर सनमान सिंह गद्दी पर बैठे। महाराज सनमानसिंह ने कोटरियात के लिए जयपुर व कोटा के बीच होने वाले युद्धों में भाग लिया।[97]

महाराजा सनमान सिंह के पश्चात सन् 1798 में उनके पुत्र शिवदास सिंह शासक बने। उनके समय मराठों के कई आक्रमण हुए। वे चतुर, नीतिज्ञ होने के साथ ही विद्वान व लेखक भी थे। इन्होंने इन्द्रगढ़ दुर्ग में सरस्वती भण्डार की स्थापना की। महाराजा शिवदान सिंह के पश्चात् संग्रामसिंह 1856 में शासक बने।

ये भी अपने पिता के समान विद्या व्यसनी, विद्वानों व साहित्यकारों का आदर करने वाले थे। इनके एकमात्र पुत्र की कँवर पदी में ही देहान्त होने से इनके पश्चात सन् 1879 छापोल के महाराजा अर्जुनसिंह के पुत्र शेरसिंह गद्दी पर बैठे। उनके और कोटा के बीच कुछ मुद्दों पर विवाद था।

महाराव उम्मेदसिंह ने मनोमालिन्य समाप्त करने के लिहाज से महाराजा इन्द्रगढ़ को अनेक अधिकार प्रदान कर दिये तथा पारस्परिक शिष्टाचार के नियम एवं दस्तूर निश्चित कर दिये जिससे महाराजा सन्तुष्ट हो गये एवं दोनों के बीच के मतभेद भी समाप्त हो गये।[98]

उनका समय विकास एवं प्रशासनिक सुधार का रहा। वे निःसन्तान थे अतः उनके बाद सन् 1917 में छापोल के महाराजा उम्मेदसिंह के पुत्र सुमेरसिंह को गोद लेकर उत्तराधिकारी बनाया गया। उनके शासन काल में शिक्षा का विकास हुआ। इन्द्रगढ़ में चिकित्सालय, सड़क, बिजली आदि की सुविधाएँ प्राप्त हुई। सुमेरसिंह भी निःसन्तान थे उनके निकटतम भाई व उनके बीच मनमुटाव होने से उन्होंने छापोल के स्थान पर खातौली के महाराजा बलवीर सिंह के दूसरे पुत्र भगवती सिंह के पुत्र को अपना उत्तराधिकारी बनाया। जागीर पुनर्ग्रहण के समय (1954) में महाराजा भगवती सिंह कोटड़ी सरदार थे।

इन्द्रगढ़ के नरेशों के लिए यह सोरण प्रसिद्ध रहा है–

इन्द्र गजा, सरदार छता देवा भगत।
सनमाना शिवदान, शिव संग्राम शेरा सुमेरू।[99]

इन्द्रगढ ठिकाने के प्रमुख रहे हैं–

1. ढ़गारिया 2. बेजपुर 3. आमल्या–केमल्या 4. ठीकरदा 5. पाली बसवाड़ा 6. नयागाँव 7. निमोला 8. ककरावदा 9. घटोद 10. कैथोदा 11. ठिकाना गोठड़ा 12. बगावदा 13. उदयपुरा 14. बमूलिया 15. नियाण 16. बागली 17. गोठड़ा 18. छापोल 19. जटवाड़ी 20. रामपुरा 21. खोलासपुर 22. दलोद 23. खेड़ली 24. मुई

छापोल एवं जटवाड़ी का ठिकाना इन्द्रगढ़ का सबसे नजदीक का ठिकाना था।[100] ये ठिकाने 1954 तक कायम रहे।

इन गाँवों के अलावा राजावत उमराव इन्द्रगढ़, बाबई, ककरावदा व मोहनपुरा में, तँवर उमराव ढीपरी में, सोलंकी तथा नरूका उमराव बालुपा में थे जिनके पास भी माफी की जागीरें थीं। अणधोरा में चौहान रहते थे। पुरोहितों, भाट गुजरातियों और पुजारियों को भी स्थान–स्थान पर माफी की जमीनें दी गईं थीं। धाभाईयों को रामपुरिया एवं धनवां में माफी की जमीनें दी हुईं थीं।[101] कोटा राज्य के दरीखाने की बैठक में इन्द्रगढ़ के महाराजा को महाराव के दाहिनी ओर प्रथम पंक्ति में स्थान प्राप्त था।[102]

खातौली

कोटरियात का दूसरा बड़ा राज्य खातौली था। यह भी इन्द्रसालोत हाड़ाओं का राज्य था। महाराजा इन्द्रसाल के पौत्र एवं महाराजा गजसिंह के दूसरे पुत्र अमरसिंह ने सन् 1673 में दौलत खाँ पठान को हराकर खातौली में अपना राज्य स्थापित किया था।[103]

यह ठिकाना पार्वती नदी के किनारे पर कोटा से 62 मील की दूरी पर उत्तर पूर्व में स्थित था जो कि वर्तमान पीपल्दा तहसील में स्थित है। इस ठिकाने में 37 गाँव हैं। इसके अलावा ग्वालियर में भी 7 गाँव है जो (वि.स. 1807) सन् 1750 में श्योपुर के राजा से प्राप्त हुए थे। इस जागीर की आमदनी महाराजा भवानीसिंह के समय 82578 रूपये की थी। कोटा में खिराज के 7622 रूपये दिये जाते थे। उसमें से जयपुर का हिस्सा 2982 रूपये था।[104] महाराजा अमरसिंह ने सन् 1695 से 1707 ई. तक बूंदी महाराव के साथ औरंगजेब के दक्षिण के युद्धों में वीरता प्रदर्शन किया। उसका देहावसान बूंदी में हुआ।

महाराजा अमरसिंह के पुत्र मत्तुसिंह भी बड़े वीर और साहसी थे। उन्होंने उदयपुर महाराणा की सेना में बड़ी ख्याति अर्जित की थी किन्तु उनको युवावस्था में ही देबारी में, जहाँ उनका स्मारक बना हुआ है, वीरगति प्राप्त हो गई थी। अतः महाराजा अमरसिंह के पश्चात उनका पौत्र अजीतसिंह गद्दी पर बैठा। उसके बाद महाराजा फकीरसिंह गद्दी पर बैठे। वे बहुत वीर थे । जब बूंदी नरेश उम्मेदसिंह ने इन्द्रगढ़ के देवसिंह, उनके बेटे व पौत्र को मरवा कर इन्द्रगढ़ पर अधिकार कर लिया था तो इन्होंने इन्द्रगढ़ के जागीरदारों का नेतृत्व करते हुए बूँदी की सेना को खदेड़ा था। सन् 1750 ई0 में श्योपुर में समझौता भी उन्हीं के समय हुआ था जिसमें श्योपुर के 7 गाँव सदैव के लिए खातौली में मिल गये।

महाराजा फकीरसिंह के बाद रतनसिंह गद्दी पर बैठे। कोटा के साथ हुई 1758 की कोटरियात के राज्यों की सन्धि एवं भटवाड़ा के युद्ध में उन्होंने मुख्य भूमिका निभाई थी। कोटा व जयपुर के मध्य हुए युद्धों में वे उपस्थित थे। उन्होंने मराठों की घुसपैठ का भी कई बार सामना किया। महादजी सिंधिया की सहायता हेतु

भेजी गई सेना में भी महाराजा रतनसिंह कोटरियात के राजाओं के साथ सम्मिलित थे।[105]

1809 में ग्वालियर के दौलतराव सिंधिया ने श्योपुर पर अधिकार किया तो खातौली के सात गाँव भी उसकी चपेट में आ गये। महाराजा जोरावर सिंह ने इनके आधिपत्य को लेकर अपना पक्ष प्रस्तुत किया तब ये गाँव खातौली की जागीर में जागीर पुनर्ग्रहण तक बने रहे।

महाराजा जोरावर सिंह के पश्चात उनके पुत्र भवानीसिंह उत्तराधिकारी बने। उसके समय की महत्त्वपूर्ण घटना माँगरोल का युद्ध (1821) था।[106] जिसमें वह महाराव किशोरसिंह के पक्ष मे लड़े। उनके समय कला और साहित्य की उन्नति हुई।[107] वे खातौली में सरस्वती भण्डार के संस्थापक थे। इनके पश्चात् भैरूसिंह गद्दी पर बैठे। उन्होंने खातौली को डकैतों के उत्पात से मुक्त करवाया। इन्होंने 1857 के गदर के समय कोटा महाराव को सहायता दी।

इनके पश्चात इनके पुत्र भोपालसिंह एवं उनके बाद प्रतापसिंह गद्दी पर बैठे। तत्पश्चात इनके निःसंतान होने पर माखना खेड़ली के जागीरदार श्यामसिंह के पुत्र बलवन्तसिंह गद्दी पर बैठे। बलवन्त सिंह के पुत्रों की अल्प आयु में मृत्यु से इनके पौत्र बलवीर सिंह गद्दी पर बैठे। वे बड़े होनहार एवं प्रशासनिक क्षमता वाले थे किन्तु उनका भी देहान्त कम आयु में ही सन् 1942 में हो गया। महाराजा बलवीर सिंह के समय खातौली पर कोटा राज्य का 111941 रूपये 8 आने ऋण बकाया था।[108]

उनके दो पुत्र भवानी सिंह और भगवती सिंह हुए। भवानी सिंह खातौली के उत्तराधिकारी बने एवं भगवती सिंह को इन्द्रगढ़ के महाराजा सुमेर सिंह ने गोद ले लिया। जागीर का पुनर्ग्रहण महाराजा भवानी सिंह के समय ही हुआ।

खातौली ठिकाने के अधीन प्रमुख जागीरदार निम्न है –

(1) फरेरा (2) खेड़ली कालापट्टा (3) कड़ीला (4) गोपालपुरा (5) बणजारी (6) खेड़ली बैरिसाल (7) गांवड़ी (8) पानड़ी (9) माखना खेड़ली (10) लाखणी (11) उमराव नरूका सरदार (12) शहरकाजी

खेड़ली बैरिसाल के जागीरदारों को कोटा राज्य की ओर से भी चार गाँव जागीर में मिलने से यह जागीर विस्तृत हो गई थी। कोटा दरीखाने में यहाँ के जागीरदारों की विशेष बैठक थी। खेड़ली माखना भी प्रसिद्ध जागीर रही है। महाराजा बलवन्त सिंह यहीं से खातौली गोद आये थे। इन गाँवों के आन्तरिक धाभाई, पुजारी, हकीम, पुरोहितों को भी माफी की जमीन दी गई थी।[109] कोटा राज्य के दरीखाने में खातौली ठिकाने के जागीरदारों को महाराव के दाहिनी ओर द्वितीय बैठक में स्थान प्राप्त था।

बलवन

बलवन जागीर के संस्थापक बूंदी के रावरतन के पौत्र एवं गोपीनाथ के पुत्र बैरीसाल थे। इस राज्य में 21 गाँव थे। यह ठिकाना खिराज के 1728 रूपये 6 आने देता था जिसमें से 1128 रूपये 6 आने जयपुर को एवं शेष ब्रिटिश सरकार को जाते थे।[153]

महाराजा बैरिसाल ने अपने पिता राव राजा रतन के साथ शाही सेना तथा बूंदी की रक्षा हेतु हुए युद्धों में भाग लिया। बैरीसाल ने अपने बड़े भाई शत्रुशाल और इन्द्रशाल के साथ कई युद्धों में भाग लिया। जुझार सिंह बुन्देला एवं शाहजादा खुर्रम के विद्रोह को दबाने में बैरीसाल का महत्वपूर्ण योगदान था। महाराजा बैरीसाल के बाद गोपाल सिंह गद्दी पर बैठे। वे भी शाही अभियानों में सम्मिलित हुए।

महाराजा गोपाल सिंह के बाद उनके पाटवी पुत्र दुर्जन सिंह उत्तराधिकारी हुए। उनकी बूंदी के रावराजा भाव सिंह से तारागढ़ पर कब्जा कर लेने के मामले में अनबन हो गई थी। उस समय रावराजा भाव सिंह दक्षिण में थे। वहीं उनका देहान्त हो गया तब राव राजा अनिरूद्ध सिंह जो दक्षिण में थे, बूंदी आये एवं दुर्जन सिंह को बूंदी से खदेड़ा। इसके पश्चात दुर्जनसिंह दुर्गादास राठौड़ के पास जोधपुर पहुँचा। दुर्जनसिंह के छोटे भाई फतेहसिंह को बलवन का उत्तराधिकारी बनाया गया।

महाराजा फतेहसिंह के बाद उनके पुत्र अभयसिंह गद्दी पर बैठे। वे बड़े वीर पराक्रमी थे। उन्होंने सवाई जयसिंह के षड़यन्त्र में महाराव राजा बुद्धसिंह का पूर्ण

रूप से पक्ष लिया। पांचोलास के युद्ध (1729ई.) में उन्होंने पाँच प्रमुख मानसिहोतों का वध करके वीरगति प्राप्त की। उनके लिए यह दोहा प्रचलित है–

अब्ब आसरा बर गई, शीश गयों श्यों पास।
पाँचो मार्‌या मान का, पाँचो पाँचोलास।।

महाराजा अभयसिंह के पश्चात् नाथसिंह गद्‌दी पर बैठे। इन्होंने सवाई जयसिंह एवं बूँदी के सेनापति सालिमसिंह ने मित्रता कर ली। इनके पश्चात क्रमशः किशोरसिंह, मालमसिंह, मोडसिंह, मुरजाद सिंह, किशनसिंह, गोपालसिंह बलवन के महाराजा बने। अडीसालसिंह, गगनसाल, बैरिसाल, प्रतापसिंह बलवन राज्य की गद्‌दी पर बैठे।[111] महाराजा प्रतापसिंह 1929 में गद्‌दी पर बैठे एवं जागीर पुनर्ग्रहण तक वे ही कोटरी के सरदार थे। महाराजा प्रतापसिंह के समय इस ठिकाने पर कोटा राज्य का 91 हजार 437 रूपये 11 आने बकाया था।[112]

बैरीसाल के पौत्र एवं गोपालसिंह के तीसरे पुत्र जैत्रसिंह ने अपने भाई दुर्जनसिंह के विद्रोह के समय बूंदी राजपरिवार को बड़े सम्मानपूर्वक केशोरायपाटन पहुँचाया था। वे राव राजा अनिरूद्ध सिंह एवं बुद्धसिंह के बड़े वफादार एवं सहायक थे। राव राजा अनिरूद्ध सिंह ने उन्हें बड़ाखेड़ा सहित 25 हजार की जागीर प्रदान की थी। उन्होंने बूंदी नरेशों के साथ कई शाही अभियानों में भाग लिया एवं बूंदी की प्रतिष्ठा बढ़ाई।

शहजादा मुअज्जम (बहादुरशाह) को 1707 में जाजव के युद्ध में विजय दिलवाने में भी उन्होंने सराहनीय भूमिका निभाई। बादशाह बनने पर बहादुरशाह ने उन्हें रणथम्भौर के इलाके में से 28 गाँव सहित फलौदी की जागीर प्रदान की। उन्होंने फलौदी का महल एवं परकोटा एवं कुस्तला की हवेली बनवाई। सन् 1720 में वे बादशाह फर्रूखसियर की रक्षा करते हुए दिल्ली में वीरगति को प्राप्त हुए।

उनके लिए यह दोहा प्रसिद्ध हैः–

जननी जने तो एहा जण, जैहां का जैत।
दिल्ली हल्दा चौक में, जूझ रह्‌यो रणखेत।।[113]

महाराणा जैतसिंह के पश्चात् उनके पुत्र देवसिंह गद्दी पर बैठे। वे भी बड़े वीर साहसी थे। उन्होंने बूंदी नरेश की खूब सेवा की। पांचोलास के युद्ध (सन् 1729) में जयपुर की सेना के विरूद्ध लड़े। इस युद्ध में जयपुर की विजय के पश्चात सवाई जयसिंह ने फलौदी अपने अधिकार में ले लिया।

महाराजा देवसिंह के पुत्र शिवसिंह एवं पौत्र भारतसिंह ने बूंदी रावराजा उम्मेदसिंह को बूंदी वापस दिलवाने में बड़ी सहायता की। महाराव उम्मेदसिंह ने बूंदी का शासक बनने पर भारतसिंह को यह जागीर पुनः प्रदान की।

बड़ाखेड़ा की जागीर के अतिरिक्त धाभाइयों, पुरोहितों, पुजारियों, व राजपूतों को भी माफी की जमीनें दी हुई थीं। बलवन के जागीरदारों को कोटा दरीखाने की बैठक में महाराव के दाहिनी ओर प्रथम बैठक में स्थान प्राप्त था। करवाड़, गैंता, पूसोद और पीपल्दा के ठिकाने, हरदावतों की कोटड़ियाँ कहलाती थीं क्योंकि इनके जागीरदार बूदी के हृदयनारायण हाड़ा के वंशज थे।

गैंता

बूँदी के हृदयनारायण के वंशज राजा विजयराम के तीसरे पुत्र अमरसिंह को मोरखूंदना 7 गाँव सहित जागीर से प्राप्त हुआ था। बाद में उनके वंशज नाना नाथसिंह से गैंता गाँव प्राप्त हुआ था। महाराजा नाथसिंह ने गैंता को अपनी राजधानी बनाया। महाराजा नाथसिंह और शिवदानसिंह के उल्लेखनीय कार्यों के कारण कोटा दरबार से 8 गाँव और प्राप्त हो गये। इस प्रकार इस जागीर में 15 गाँव हो गये।[157]

गैंता कोटा से 50 किलोमीटर दूर चम्बल नदी के किनारे स्थित था। महाराजा नाथसिंह के द्वारा यहाँ किला बनवाया गया था। नाथसिंह इस ठिकाने में गोद आये थे। ये बड़े वीर और पुरूषार्थी थे। इन्होंने कोटा की सेना के साथ अनेक युद्धों में भाग लिया। इन्होंने भटवाड़ा के युद्ध में बड़ी वीरता प्रदर्शित की थी। भटवाड़ा की पराजय के पश्चात भी जयपुर ने कोटरियात पर आधिपत्य स्थापित करने हेतु कोटा पर अनेक आक्रमण किये। कोटा राज्य द्वारा सम्वत् 1839 में जो सेना भजी गई थी उसमें भी कोटा के नाथसिंह सम्मिलित थे।[115]

महाराजा नाथसिंह के पश्चात उनके पुत्र शिवदान सिंह गैंता की गद्दी पर बैठे। वे बड़े बुद्धिमान, योद्धा और कुशल प्रशासक थे। वे झाला जालिमसिंह के बड़े विश्वासपात्र थे। उन्होंने सिन्धिया से माखीदा सहित पाँच गाँव इजारे पर लेकर माखीदा महल बनवाया था। सन् 1817 में कोटा राज्य और ब्रिटिश कम्पनी सरकार के मध्य हुई सन्धि पर कोटा महाराव की और से प्रतिनिधि के रूप में महाराजा शिवदानसिंह ने हस्ताक्षर किये थे।[116]

सन् 1831 में महाराव रामसिंह के साथ महाराजा शिवदानसिंह वायसराय के दरबार में अजमेर में सम्मिलित हुये। वहीं अकस्मात् वे बीमार हो गये और उनकी मृत्यु हो गई।[117] महाराजा शिवदान सिंह के पश्चात् उनके कुँवर बलभद्रसिंह गद्दी पर बैठे। इन्होंने महाराव किशोरसिंह के साथ मांगरोल के युद्ध में भाग लिया था एवं लेफ्टिनेण्ट क्लार्क को धराशायी कर अपनी वीरता प्रदर्शित की थी।[118] महाराजा बलभद्र सिंह के पुत्र चतुर्भुज सिंह ने 1857 की क्रान्ति के समय बागियों को खदेड़ने में अपनी वीरता का परिचय दिया।[119]

महाराजा चतुर्भुज सिंह के पश्चात इन्द्रशाल एवं उनके बाद माधोसिंह गैंता के जागीरदार बने। महाराजा माधोसिंह ने शिक्षा प्राप्त की थी। वे कोटा में राजस्व अधिकारी थे। उन्हें अग्रेंजों ने 'राय बहादुर' की उपाधि से सम्मानित किया था।[120]

सन् 1954 में जागीर पुनर्ग्रहण के समय महाराजा तेजराजसिंह गैंता के अन्तिम कोटरी सरदार थे। वे राजस्थान की पहली विधानसभा में पीपल्दा विधानसभा क्षेत्र से विधायक थे। इस ठिकाने की वार्षिक आय 35874 रूपये थी। यहाँ से 1808 रूपये 4 आने 6 पैसे कोटा राज्य को कर के रूप में दिये जाते थे जिसमें से 193 रूपये जयपुर दरबार को मिलते थे।[121] पहले यहाँ के जागीरदार कोटा दरबार की सेवा में 13 घोड़ों से नौकरी करते थे। बाद में इसके एवज में 1092 रूपये नकद दिये जाने लगे।[122]

गैंता के जागीरदारों ने भी कोटा राज्य की सेवा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। यहाँ के जागीरदारों को कोटा राज्य के दरीखाने में महाराव के दाहिने ओर द्वितीय बैठक प्राप्त थी।[123]

पीपल्दा

बूँदी के हृदय नारायण के वंशज राजा विजयराम के वंशज दौलतसिंह को पीपल्दा सहित सात गाँव जागीर में प्राप्त हुए थे। राजा दौलतसिंह ने पीपल्दा में महल बनवाया जिसे छोटी हवेली कहा जाता था। यहाँ की प्रजा इन्हें 'सरकार' कहकर सम्बोधित करती थी। राजा दौलतसिंह ने अपने भाई अमरसिंह, जगतसिंह व भतीजे महासिंह के साथ अनेक युद्धों में भाग लिया। ये रणथम्भौर के मनसबदार थे। इनके पुत्र महाराजा गुमानसिंह प्रथम ने भटवाड़ा के युद्ध में भाग लिया था।[124]

भटवाड़ा के युद्ध के पश्चात भी जयपुर द्वारा कोटरियात पर आधिपत्य स्थापित करने हेतु अनेक आक्रमण किये गये। इन युद्धों में पीपल्दा के भारत सिंह अपनी सेना सहित कोटा राज्य की ओर से सम्मिलित हुए थे।[125] पीपल्दा के जागीरदार महाराजा अजीतसिंह प्रथम ने 1857 की क्रांति के समय विद्रोहियों को पाटनपोल व कैथूनीपोल के इलाके से खदेड़ने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी।[126] पीपल्दा के अजीतसिंह प्रथम को महाराव रामसिंह द्वारा झालावाड़ के कोटा से पृथक राज्य बन जाने के समय अयाणी व उमरी गाँव जागीर में दिये थे।[127]

महाराजा अजीतसिंह के पश्चात गुमानसिंह, लालसिंह, भारतसिंह द्वितीय, गुलाबसिंह पीपल्दा के उत्तराधिकारी बने। गुलाबसिंह के पश्चात उनके पुत्र कर्णसिंह जागीर के उत्तराधिकारी हुये। जागीर पुनर्ग्रहण के समय वे अन्तिम कोटड़ी सरदार थे। पीपल्दा की जागीर में 18000 की आय के 11 गाँव थे। इनमें से 1006 रूपये 1 आना 6 पैसा कोटा को कर के रूप में दिया जाता था जिसमें से 331 रूपये 12 आने 3 पैसे जयपुर को प्राप्त होते थे।[128] महाराजा कर्णसिंह की उम्र गद्दी पर बैठने के समय मात्र 7 वर्ष थी उस समय पीपल्दा पर 601000 रूपया बकाया चल रहा था।[129] कोटा राज्य में दरीखों की बैठक में पीपल्दा के जागीरदारों को महाराव के दाहिनी ओर पाँचवी बैठक में स्थान प्राप्त था।[130] पीपल्दा ठिकाने के अन्तर्गत छोटा पीपल्दा, मरझाना इत्यादि अन्य जागीरें भी थी।

पूसोद

पुसोद की जागीर राजा विजयराम के चौथे पुत्र जगतसिंह को सात गाँव

सहित प्रदान की गई थी।[131] राजा जगतसिंह ने अपने राज्य का विस्तार करने के लिए श्योपुर की सीमा पर आक्रमण किया। उन्होंने बाडोली पर अधिकार कर लिया। उनके पश्चात उनके पुत्र महासिंह ने भी श्योपुर के इलाके पर कई बार आक्रमण किये एवं यहाँ के 3 गाँव पर अधिकार कर लिया एवं कई वर्षों तक इनका अधिकार बना रहा। बाद में श्योपुर के राजा इन्द्रसिंह के पुत्र किशनसिंह ने महाराजा से युद्ध किया जिसमें महासिंह घायल हुये और उनका प्राणान्त हो गया। उनका सूरथाग और पीपल्दा में स्मारक बना हुआ है।[132]

महासिंह के पश्चात पुसोद में महाराजा खुशालसिंह, जालिमसिंह, निर्भयसिंह, जुहारसिंह गद्दी पर बैठे। तत्पश्चात महाराज रणजीतसिंह इस ठिकाने में गोद आये। इनके शासनकाल में गैंता और पूसोद के बीच तेजाजी के स्थान को लेकर झगड़ा हुआ। इन विवादों के कारण कोटा दरबार ने सहायक कोटरियात हाकिम का कार्यालय पीपल्दा में खोल दिया तथा तेजाजी की मूर्ति को विवादित स्थान से हटाकर इस कार्यालय में रख दिया । आज भी इसी भवन में तेजाजी की पूजा होती है। वर्तमान में यह भवन तहसील का कार्यालय है। महाराज रणजीतसिंह के निःसन्तान मृत्यु होने पर उनके भाई भवानीसिंह गद्दी पर बैठे । इनके पश्चात जससिंह एवं जगतसिंह पूसोद के शासक हुए। जगतसिंह इस ठिकाने में गोद आये थे। उनकी गोदनशीनी पर विवाद होने पर महकमा खास ने उनके पक्ष में निर्णय किया था। ये जागीर पुनर्ग्रहण के समय अन्तिम कोटरी सरदार थे।[133]

महाराजा जगतसिंह के पुत्र नहीं था अतः इन्होंने अपनी कोटड़ी की वसीयत अपनी दोनों पुत्रियों गिरिराज कुमारी तथा शिवकुमारी के नाम कर दी। इनकी प्रजा इन्हें 'सरकार' कहकर सम्बोधित करती थी। पूसोद के जागीरदारों को कोटा राज्य के दरीखाने की बैठक में महाराव के दाहिने ओर पाँचवी बैठक में स्थान प्राप्त था।[134]

पूसोद की जागीर में 6 गाँव 16761 रूपये की आय वाले थे। पूसोद द्वारा कोटा राज्य को 1002 रूपये कर दिया जाता था जिसमें से जयपुर का हिस्सा 332 रूपये था।[135]

करवाड़

बूंदी के राजा ह्रदय नारायण के पुत्र बलराम ने 1628 ई. में करवाड़ को

अपनी राजधानी बनाया था।[136] राजा बलराम के पुत्रों का देहावसान युवावस्था में ही हो जाने से उन्होंने आवां (कनवास) के विजयराम के दूसरे पुत्र कुशलसिंह को गोद ले लिया। कुशलसिंह बूंदी की सेना में सिलेहदार थे। वे बूंदी के राव राजा अनिरूद्ध सिहं के सलाहकार एवं अंगरक्षक भी रहे। इनके पश्चात दलेलसिंह एवं तत्पश्चात समरथसिंह गद्दी पर बैठे। समरथसिंह के समय ही ये कोटरियात के राज्य जयपुर सें मुक्त होकर कोटा में मिले। जयपुर द्वारा सम्वत् 1839 में कोटा पर आक्रमण करने पर कोटा राज्य की सेना में करवाड़ के समरथसिंह भी अपनी सेना सहित सम्मिलित हुए थे।[137]

महाराजा समरथसिंह के पश्चात सुमेरसिंह, सरवरसिंह, शिवसिंह, संग्रामसिंह, सौभागसिंह एवं शार्दुलसिंह गद्दी पर बैठे। वे बड़े दानी, आयुर्वेद के ज्ञाता एवं विद्वानों का आदर करने वाले थे। उनके जीवन पर "शार्दुल प्रकाश" नामक पुस्तक लिखी गई। 1923 में गिरिवरसिंह करवाड़ की गद्दी पर आसीन हुए। उन्होंने मेयो कॉलेज से शिक्षा प्राप्त की। वे कवि और साहित्यकार थे। वे जागीर पुनर्ग्रहण के समय करवाड़ कोटड़ी के अन्तिम सरदार थे। इनके दो पुत्र हुए युद्धिष्ठर सिंह और भोजराज सिंह हुए ।

करवाड़ के जागीरदारों को कोटा के दरीखाने में महाराजा के दाहिने ओर पाँचवी बैठक में स्थान प्राप्त था।[138] करवाड़ राज्य मे सात गाँव 12000 की आय वाले थे। इस ठिकाने की ओर से कोटा राज्य को कर के 1002 रूपये 14 आने दिये जाते थे जिसमें से 331 रूपये 14 आने जयपुर का हिस्सा था।[139] महाराव उम्मेदसिंह ने शासन के पूर्णाधिकारों की प्राप्ति के पश्चात कोटरियात के राज्यों का दौरा किया था। महाराव ने करवाड़ का शासन प्रबन्धन ठीक पाया किन्तु करवाड़ पर 60000 रूपये का कर्ज बकाया था।[140]

आंतरदा

इस राज्य के संस्थापक करवर के राजा मोहकमसिंह के छठे पुत्र सगतसिंह थे।[141] उन्हें आंतरदा सहित सात गाँव जागीर मे प्राप्त हुए थे। आंतरदा ठिकाना कोटा से 51 मील उत्तर पश्चिम में इन्द्रगढ़ से 10 मील दक्षिण पश्चिम में पहाड़ों के बीच स्थित था। पहाड़ व जंगल अधिक होने से ये राज्य शिकार के लिये प्रसिद्ध था। यहाँ

के शिकारगाह दर्शनीय थे। राजा सगतसिंह नें मुगल साम्राज्य के कई शाही अभियानों में भाग लिया था। उन्होंने कोटा राव किशोरसिंह के साथ दक्षिण में 'अरनी के युद्ध' में वीरगति प्राप्त की थी।[142]

राजा सगतसिंह के पश्चात उनके पुत्र दुर्जनसाल ने आंतरदा के सोलंकियों को हराकर अपना राज्य स्थापित किया था। इन्होंने भी शाही अभियानों में भाग लिया।

महाराजा दुर्जनसाल के बाद देवीसिंह संग्रामसिंह प्रथम, रामसिंह, श्योदानसिंह, संग्रामसिंह द्वितीय गद्दी पर बैठे। महाराजा संग्रामसिंह द्वितीय ने आंतरदा के दुर्ग एवं गाँव में स्थित गढ़ का जीर्णोद्वार करवाया। महाराजा संग्रामसिंह के बाद उनके पुत्र वीरेन्द्र बहादुर तत्पश्चात नरेन्द्र बहादुर गद्दी पर बैठे। जागीर पुनर्ग्रहण इन्हीं के समय हुआ था।

राज्यों के विलीनीकरण के समय आंतरदा कोटा जिले में सम्मिलित किया गया था लेकिन चारों ओर बूंदी राज्य से घिरा होने से प्रशासनिक दृष्टि से अनुपयुक्त था। इसी बीच हैदराबाद जैसी घटना हो गई। कुछ शरारती लोगों ने डाकू गिरोह का नाम लेकर गश्त पर आने वाले सिपाहियों की बन्दूकें छीन लीं। उस समय थाना इन्द्रगढ़ लगता था। तत्कालीन थानेदार कल्याणसिंह झाला सिपाहियों को लेकर पहुँचा तो किसी ने भेद नहीं खोला। कोटा और जयपुर से अर्द्धसैनिक बल आ गया तो शरारती लोगों ने चारों ओर की पहाड़ियो पर मोर्चा बाँध लिया। दो दिन के मोर्चे के बाद आत्मसमर्पण हुआ। उस समय इस घटना को "राजस्थान का हैदराबाद" की संज्ञा दी। तब से यह इलाका बूँदी जिले में मिला लिया गया।[143] आंतरदा ठिकाने के भाई पाटून्दा, अरण्या, ईदलगढ़, बावड़ीखेड़ा, कापरेण माँगरोल, किशनगंज, मरझाना, बूंदी व कोटा में बसे हुए थे।

आंतरदा ठिकाने में छः गाँव थे जिनकी वार्षिक आय 13000 रूपये थी। इस ठिकाने से कोटा राज्य को 3828 रूपये 6 आने कर के प्राप्त होते था जिसमें से 1128 रूपये 6 आने जयपुर का हिस्सा था। आंतरदा का शासन प्रबंध अच्छा था।[144]

सन्दर्भ

1. (अ) शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास भाग –1, पृ. 108
(ब) गहलोत, जगदीश सिंह, राजपूताने का इतिहास कोटा राज्य – पृ. 42
2. (अ) कागजात सम्वत् 1704, सीगा मुतफर्रिकात
(ब) शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास भाग –1, पृ. 134
3. (अ) ठाकुर लक्षमण दान, कोटा राज्य का इतिहास
(ब) शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास भाग–1, पृ. 134
4. ठाकुर लक्षमण दान, कोटा राज्य का इतिहास
5. हाड़ा, शिवदान सिंह, हाड़ा चौहानों की शाखाएँ उनके ठिकाने एवं साहित्यकार, पृ. 14
6. हाड़ा, शिवदान सिंह, हाड़ा चौहानों की शाखाएँ उनके ठिकाने एवं साहित्यकार, पृ. 14–15
7. शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास भाग –1, पृ. 197
8. हाड़ा, शिवदान सिंह, हाड़ा चौहानों की शाखाएँ उनके ठिकाने एवं साहित्यकार, पृ. 5
9. मीसण, सूर्यमल्ल, वंश भास्कर तृतीय भाग, पृ. 2779
10. हाड़ा, शिवदान सिंह, हाड़ा चौहानों की शाखाएँ उनके ठिकाने एवं साहित्यकार, पृ. 15
11. शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास भाग –1, पृ. 135
12. शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास भाग –1, पृ. 304
13. शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास भाग –2, पृ. 569
14. शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास भाग –2, पृ. 609
15. हाडा, शिवदान सिंह, कोटरियात का संक्षिप्त इतिहास, पृ. 10–11
16. शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास भाग –1, पृ. 143
17. व्यास, डॉ. आर.पी., आधु. राज. का वृहत इतिहास, पृ. 326
18. शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास भाग –2, पृ. 412–13
19. हाडा, शिवदान सिंह, कोटरियात का संक्षिप्त इतिहास, पृ. 10–11
20. (अ) शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास भाग –1, पृ. 134
(ब) ठाकुर लक्ष्मण दान, कोटा राज्य का इतिहास
21. गहलोत, जगदीश सिंह, राजपूतानें का इतिहास में कोटा राज्य भाग 2, पृ. 152
22. (अ) आलमगीर नामा पृ. 70
(ब) शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास भाग –2, पृ. 166
23. शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास भाग –2, पृ. 786

24. एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट ऑफ कोटा, सम्वत 1953

25. गहलोत, जगदीश सिंह, राजपूताने का इतिहास (कोटा राज्य) भाग 2, पृ. 152

26. (अ) दफ्तर ठिकाना कोटड़ी।
(ब) शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास भाग –2, पृ. 510
(स) कागजात सम्वत् 1838, खाता जागीरदारों का

27. (अ) दफ्तर ठिकाना कोटड़ी।
(ब) शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास भाग –2, पृ. 510

28. शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास भाग –2, पृ. 738

29. गहलोत, जगदीश सिंह, राजपूताने का इतिहास (कोटा राज्य) भाग 2, पृ. 152

30. शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास भाग 1, पृ. 166

31. (अ) वंश भास्कर चतुर्थ भाग, पृ. 3455–65
(ब) टॉड, कर्नल जेम्स, एनल्स एण्ड एन्टीक्वीटीज ऑफ राजस्थान भाग–1, पृ. 494
(स) शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास भाग –2, पृ. 390–91
(द) ठाकुर लक्ष्मण दान, कोटा राज्य का इतिहास

32. शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास भाग –1, पृ. 271

33. (अ) टॉड, कर्नल जेम्स, एनल्स एण्ड एन्टीक्वीटीज ऑफ राजस्थान भाग–2, पृ. 784–85
(ब) शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास भाग –2, पृ. 491
(स) दफ्तर ठिकाना कोटड़ी।

34. शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास भाग –2, पृ. 550

35. शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास भाग –2, पृ. 609–611

36. श्रीवास्तव, डॉ. जगतनारायण, कोटा के महाराव उम्मेद सिंह द्वितीय एवं उनका समय, पृ. 291

37. (अ) श्रीवास्तव, डॉ. जगत नारायण, कोटा के महाराव उम्मेद सिंह द्वितीय एवं उनका समय, पृ. 292
(ब) एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट ऑफ कोटा, सम्वत 1974, पृ. 6,सम्वत 1986, पृ. 4

38. (अ) श्रीवास्तव, डॉ. जगत नारायण, कोटा के महाराव उम्मेद सिंह द्वितीय एवं उनका समय, पृ. 292
(ब) एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट ऑफ कोटा, सम्वत 1985, पृ. 25

'He was an intelligent sirdar possessed of a jovial temper and good humour and evinced much interest in the reorganization of the state forces ------ by his premature death the darbar have lost a good and popular young sirdar and a promising officer'.

39. मेयो कॉलेज मेगजीन, नवम्बर 1905, वोल्यूम नवम्बर 3, पृ. 9–10

40. (अ) एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट, , सम्वत 1968, पृ. 03
(ब) शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास भाग –2, पृ. 738

41. गहलोत, जगदीश सिंह, राजपूताने का इतिहास (कोटा राज्य) भाग 2, पृ 152

42. गहलोत, जगदीश सिंह, राजपूतानें का इतिहास (कोटा राज्य) भाग 2, पृ 153

43. डॉ. जगत नारायण, कोटा के महाराव उम्मेद सिंह द्वितीय एवं उनका समय, पृ. 242–43

44. (अ) एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट, सम्वत 1974, पृ0 06, सम्वत 1986, पृ. 04
(ब) शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास भाग –2, पृ. 787

45. (अ) जगदीश सिंह गहलोत, राजपूताने का इतिहास (कोटा राज्य) भाग 2, पृ. 153
(ब) जयपुर के देशी नरेश, पृ. 200–01

46. जयपुर के देशी नरेश, पृ. 201

47. (अ) जगदीश सिंह गहलोत, राजपूताने का इतिहास (कोटा राज्य) भाग 2, पृ. 153
(ब) जयपुर के देशी नरेश, पृ. 203

48. शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास भाग –2, पृ. 375

49. (अ) जगदीश सिंह गहलोत, राजपूताने का इतिहास (कोटा राज्य) भाग 2, पृ. 154
(ब) जयपुर के देशी नरेश, पृ. 203

50. श्रीवास्तव, डॉ. जगत नारायण, कोटा के महाराव उम्मेद सिंह द्वितीय एवं उनका समय, पृ. 243

51. (अ) जमाबन्दी सम्वत् 1839
(ब) शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास भाग –2, पृ. 457

52. जयपुर के देशी नरेश, पृ. 203–04

53. गहलोत, जगदीश सिंह, राजपूतानें का इतिहास (कोटा राज्य) भाग 2, पृ. 154

54. (अ) ठाकुर लक्ष्मणदान, कोटा राज्य का इतिहास
(ब) वंश भास्कर, तृतीय भाग, पृ. 2887

मोहनोत माधाणी व्हा कोटा की चमू तै कदी,
काम आयो गोवर्द्धन मारि धनै अति क्रोध।
धरन में धसिकै अकेले धीर गोवर्धन,
राख्यों जस मागी वीर कोटा को अधिप राम।

वंश भास्कर तृतीय पृ. 2888

हाड़े ओर भागे पै न भागे। सुत मोहन को,
खेत परयों गोवर्धन जट्टन धनेन खाइ।

वंश भास्कर तृतीय पृ. 2890

(स) शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास भाग–1, पृ. 208

55. (अ) कागजात सम्वत् 1818 और 1819
(ब) शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास भाग–2, पृ. 446

56. ठाकुर लक्ष्मण दान के अनुसार पृथ्वीसिंह के साथ राजगढ़ के आपजी देवीसिंह थे

57. गहलोत, जगदीश सिंह, राजपूताने का इतिहास (कोटा राज्य) भाग 2, पृ. 155

58. जयपुर के देशी नरेश, पृ. 206

59. (अ) इम्पीरियल ए.जे. राजपूताना, पृ. 390
(ब) शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास भाग 2, पृ. 708

60. जयपुर के देशी नरेश, पृ. 209–10

61. गहलोत, जगदीश सिंह, राजपूताने का इतिहास (कोटा राज्य) भाग 2, पृ. 154

62. शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास भाग–2, पृ. 597

63. गहलोत, जगदीश सिंह, राजपूताने का इतिहास (कोटा राज्य) भाग 2, पृ. 154

64. जयपुर के देशी नरेश, पृ. 205

65. श्रीवास्तव, डॉ. जगतनारायण, कोटा के महाराव उम्मेद सिंह द्वितीय एवं उनका समय, पृ. 242

66. जयपुर के देशी नरेश, पृ. 207

67. (अ) दफ्तर ठिकाना कोटड़ी।
(ब) शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास भाग –2, पृ. 510

68. जयपुर के देशी नरेश, पृ. 207

69. जयपुर के देशी नरेश, पृ. 211

70. शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास, भाग –2, पृ. 624–625

71. श्रीवास्तव, डॉ. जगतनारायण, कोटा के महाराव उम्मेद सिंह द्वितीय एवं उनका समय, पृ. 242

72. एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट ऑफ कोटा, सन् 1893–94, पृ. 07

73. यादव, गजेन्द्रसिंह, कोटा के किशोरसिंहोत हाड़ाओं के ठिकानों का इतिहास, पृ. 55

74. (अ) बम्बूलिया के भण्डार से दस्तावेज, पृ. 53
(ब) शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास भाग –2, पृ. 444

75. शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास भाग –2, पृ. 475

76. (अ) शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास भाग –2, पृ. 475
(ब) दफ्तर ठिकाना कोटड़ी।

77. (अ) शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास भाग –2, पृ. 476
(ब) दफ्तर ठिकाना कोटड़ी।

78. (अ) शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास भाग –2, पृ. 477
(ब) कागजात सम्वत्, 1838

79. (अ) टॉड, कर्नल जेम्स, एनल्स एण्ड एन्टी क्वीटीज ऑफ राजस्थान, भाग–3, पृ. 1608
(ब) शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास भाग –2, पृ. 575

80. टॉड, कर्नल जेम्स, एनल्स एण्ड एन्टीक्वीटीज ऑफ राजस्थान, भाग–2, पृ. 632

81. हाड़ा, शिवदान सिंह, कोटरियात का संक्षिप्त इतिहास, पृ. 1

82. शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास भाग 2, पृ. 441

83. हाड़ा, शिवदान सिंह, कोटरियात का संक्षिप्त इतिहास, पृ. 2–3

84. (अ) शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास भाग 2, पृ. 441
(ब) जयपुर के देंशी नरेश, पृ. 188

85. (अ) हाड़ा, शिवदान सिंह, कोटरियात का संक्षिप्त इतिहास, पृ. 6
(ब) गहलोत, जगदीश सिंह, राजपूताने का इतिहास, पृ. 149

86. (अ) शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास भाग 2, पृ. 441–42
(ब) ठाकुर लक्ष्मणदान कोटा राज्य का इतिहास
(स) गहलोत, जगदीश सिंह, राजपूताने का इतिहास, पृ. 149

87. (अ) शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास भाग 2, पृ. 445–46
(ब) हाड़ा, शिवदान सिंह, कोटरियात का संक्षिप्त इतिहास, पृ. 07

88. श्रीवास्तव, डॉ. जगतनारायण, महाराव उम्मेदसिंह द्वितीय एवं उनका समय, पृ. 243

89. हाड़ा, शिवदान सिंह, कोटरियात का संक्षिप्त इतिहास , पृ. 8

90. शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास भाग 2, पृ. 527–28

91. हाड़ा, शिवदान सिंह, कोटरियात का संक्षिप्त इतिहास, पृ. 9

92. श्रीवास्तव, डॉ. जगतनारायण, महाराव उम्मेदसिंह द्वितीय एवं उनका समय, पृ. 243

93. हाड़ा, शिवदान सिंह, कोटरियात का संक्षिप्त इतिहास, पृ. 12

94. हाड़ा, शिवदान सिंह, कोटरियात का संक्षिप्त इतिहास, पृ. 13

95. हाड़ा, शिवदान सिंह, हाड़ा चौहानों की शाखाएँ उनके ठिकाने एवं साहित्यकार , पृ. 17

96. गहलोत, जगदीश सिंह, राजपूताने का इतिहास, पृ. 149

97. शर्मा, डॉ.मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास भाग 2, पृ. 480

98. (अ) श्रीवास्तव, डॉ. जगतनारायण, महाराव उम्मेदसिंह द्वितीय एवं उनका समय, पृ 96
(ब) एडमिनिस्ट्रेगशन रिपोर्ट ऑफ कोटा राज्य, संवत् 1963, पृ. 1

99. हाड़ा, शिवदान सिंह, कोटरियात का संक्षिप्त इतिहास ,पृ. 37–38

100. गहलोत, जगदीश सिंह, राजपूताने का इतिहास, पृ. 149

101. हाड़ा, शिवदान सिंह, कोटरियात का संक्षिप्त इतिहास ,पृ. 42

102. श्रीवास्तव, डॉ. जगतनारायण, महाराव उम्मेदसिंह द्वितीय एवं उनका समय, पृ. 243

103. (अ) गहलोत, जगदीश सिंह, राजपूताने का इतिहास , पृ. 150
(ब) हाड़ा, शिवदान सिंह, कोटरियात का संक्षिप्त इतिहास, पृ. 42

104. (अ) गहलोत, जगदीश सिंह, राजपूताने का इतिहास , पृ. 150
(ब) हाड़ा, शिवदान सिंह, कोटरियात का संक्षिप्त इतिहास, पृ. 43

105. (अ) ठाकुर लक्ष्मण दान, कोटा राज्य का इतिहास
(ब) शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास भाग 2, पृ. 441–42
(स) हाड़ा, शिवदान सिंह, कोटरियात का संक्षिप्त इतिहास, पृ. 44–45

106. (अ) शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास भाग 2, पृ. 568
(ब) हाड़ा, शिवदान सिंह, कोटरियात का संक्षिप्त इतिहास , पृ. 44

107. हाड़ा, शिवदान सिंह, कोटरियात का संक्षिप्त इतिहास, पृ. 44

108. एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट ऑफ कोटा राज्य, सन् 1940–41, पृ. 65

109. (अ) एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट ऑफ कोटा राज्य, संवत् 1951 ,पृ. 7
(ब) श्रीवास्तव, डॉ. जगतनारायण, महाराव उम्मेदसिंह द्वितीय एवं उनका समय, पृ. 243

110. (अ) एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट ऑफ कोटा राज्य , सन् 1896, पृ. 10
(ब) गहलोत, जगदीश सिंह, राजपूताने का इतिहास, पृ. 146

111. हाड़ा, शिवदान सिंह, कोटरियात का संक्षिप्त इतिहास, पृ. 50

112. एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट ऑफ कोटा राज्य, सन् 1940–41 ,पृ. 65

113. हाड़ा, शिवदान सिंह, कोटरियात का संक्षिप्त इतिहास, पृ. 50

114. (अ) गहलोत, जगदीशसिंह,राजपूताने का इतिहास, पृ. 150
(ब) हाड़ा, शिवदान सिंह, कोटरियात का संक्षिप्त इतिहास, पृ. 26

115. शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास भाग 2, पृ. 480

116. शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास भाग 2, पृ. 521–522

117. (अ) शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास भाग 2, पृ. 590
(ब) हाड़ा, शिवदान सिंह, कोटरियात का संक्षिप्त इतिहास, पृ. 26

118. (अ) ठाकुर लक्ष्मणदान, कोटा राज्य का इतिहास
(ब) शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास भाग 2, पृ. 572–73

119. शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास भाग 2, पृ. 613

120. (अ) एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट ऑफ कोटा राज्य, संवत् 1974, पृ. 6
(ब) एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट ऑफ कोटा राज्य, संवत् 1986 , पृ. 4
(स) शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास भाग 2, पृ. 787

121. (अ) एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट ऑफ कोटा राज्य, सन् 1896 , पृ. 10
(ब) गहलोत, जगदीश सिंह, राजपूताने का इतिहास ,पृ. 140

122. गहलोत, जगदीश सिंह, राजपूताने का इतिहास, पृ. 140

123. (अ) श्रीवास्तव, डॉ. जगतनारायण, महाराव उम्मेदसिंह द्वितीय एवं उनका समय, पृ. 243

(ब) एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट ऑफ कोटा राज्य, सन् 1951, पृ. 07

124. हाड़ा, शिवदान सिंह, कोटरियात का संक्षिप्त इतिहास, पृ. 30

125. शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास भाग 2, पृ. 480

126. शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास भाग 2, पृ. 609

127. शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास भाग 2, पृ. 597

128. एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट ऑफ कोटा राज्य, सन् 1896, पृ. 10

129. एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट ऑफ कोटा राज्य, सन् 1940–41, पृ. 65

130. (अ) एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट ऑफ कोटा राज्य, सन् 1951, पृ. 07
(ब) श्रीवास्तव, डॉ. जगतनारायण, महाराव उम्मेदसिंह द्वितीय एवं उनका समय, पृ 243

131. हाड़ा, शिवदान सिंह, कोटरियात का संक्षिप्त इतिहास, पृ. 28

132. हाड़ा, शिवदान सिंह, कोटरियात का संक्षिप्त इतिहास, पृ. 28

133. (अ) गहलोत, जगदीश सिंह, राजपूताने का इतिहास, पृ0 151
(ब) हाड़ा, शिवदान सिंह, कोटरियात का संक्षिप्त इतिहास ,पृ0 29

134. (अ) एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट ऑफ कोटा राज्य, सम्वत् 1951, पृ0 21
(ब) श्रीवास्तव, डॉ. जगतनारायण, महाराव उम्मेदसिंह द्वितीय एवं उनका समय , पृ 243

135. एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट ऑफ कोटा राज्य, सन् 1893–94, पृ. 10

136. हाड़ा, शिवदान सिंह, कोटरियात का संक्षिप्त इतिहास पृ. 20

137. शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास भाग 2, पृ. 480

138. (अ) एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट ऑफ कोटा राज्य, सन् 1951, पृ. 07
(ब) श्रीवास्तव, डॉ. जगतनारायण, महाराव उम्मेदसिंह द्वितीय एवं उनका समय, पृ. 243

139. एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट ऑफ कोटा राज्य, सन् 1893–94, पृ. 10

140. (अ) श्रीवास्तव, डॉ. जगतनारायण, महाराव उम्मेदसिंह द्वितीय एवं उनका समय, पृ. 95
(ब) एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट ऑफ कोटा राज्य, सन् 1893–94, पृ. 10

141. हाड़ा, शिवदान सिंह, कोटरियात का संक्षिप्त इतिहास, पृ. 56

142. हाड़ा, शिवदान सिंह, कोटरियात का संक्षिप्त इतिहास, पृ. 57

143. हाड़ा, शिवदान सिंह, कोटरियात का संक्षिप्त इतिहास, पृ. 58

144. एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट ऑफ कोटा राज्य, सन् 1893–94

अध्याय तृतीय

कोटा राज्य की कम्पनी से सन्धि तथा उसके पश्चात जागीर प्रथा का स्वरूप

अध्याय तृतीय

कोटा राज्य की कम्पनी से सन्धि तथा उसके पश्चात जागीर प्रथा का स्वरूप

राजस्थान की सामन्ती व्यवस्था प्रमुख रूप से अत्यन्त लचीली थी। राजा और उसके सामन्तों तथा उनके अधीन छोटे सामन्तों के मध्य ढीली ढाली व्यवस्था थी। 16वीं–17वीं सदी में यह व्यवस्था ठीक प्रकार से चलती रही क्योंकि मुगल अधीनता में प्रत्येक महत्वाकांक्षी राजा, सामन्तों तथा छोटे जागीरदारों के लिए पर्याप्त अवसर उपलब्ध थे। मुगल साम्राज्य के लिए कुलीय प्रतिस्पर्धा लाभदायक सिद्ध हुई इसलिए मुगल सम्राटों ने कुलीय परम्परा को क्षीण नहीं होने दिया। उन्होंने इतना नियन्त्रण अवश्य रखा कि यह प्रतिस्पर्धा साम्राज्य की प्रगति में बाधक न बने। इसलिए मुगलों ने उत्तराधिकार के प्रश्न को अपने नियन्त्रण में रखा और आन्तरिक अव्यवस्था को पनपने नहीं दिया। राजपूत कुलीय सामन्तवाद की एक विशेषता यह भी थी कि सामन्तों को व्यवहारिक रूप से पदच्युत नहीं किया जा सकता था चाहे सैद्धान्तिक अधिकार राजा को उपलब्ध हों। कुलीय सरदारों का अपने छोटे जागीरदारों पर काफी नियन्त्रण रहता था।

अठारहवीं सदी के पूर्वाद्ध में मुगलों की केन्द्रीय शक्ति के पतन के पश्चात राजपूत शासकों को पुनः अपने सामन्तों की सहायता और सहयोग पर निर्भर हो जाना पड़ा। 18वीं सदी के मध्य में प्रायः प्रत्येक राज्य में सामन्तों का प्रभाव अपनी चरम सीमा पर पहुँच चुका था। जयपुर में ईश्वरी सिंह एवं बीकानेर में जोरावर सिंह की मृत्यु के पश्चात गजसिंह को गद्दी पर बिठाने में सामन्तों की भूमिका महत्वपूर्ण रही।[1] इसी प्रकार कोटा में झाला सामन्त जालिमसिंह सर्वेसर्वा बन गया था।

18वीं सदी का उतरार्द्ध राजा–सामन्त संघर्ष में व्यतीत हुआ। मुख्य तथ्य यह था कि सामन्त अपने प्रभुत्व को बनाये रखना तथा राजा अपनी खोई हुई सत्ता को

प्राप्त करना चाहते थें। दोनो में संधर्ष प्रायः राजस्थान के प्रत्येक राज्य में होता रहा। इन दोनों तत्वों में संघर्ष बहुत लम्बे समय तक इसलिए चलता रहा कि प्रत्येक अपने लिए मराठो से बाह्य समर्थन जुटाने में समर्थ हो सका। मराठे एक केन्द्रीय शक्ति के अधीन न होकर सरदारों के नायकत्व मे उत्तरी भारत से चौथ एवं सरदेशमुखी की लूट मे 18वीं शताब्दी के भारतीय इतिहास के प्रमुख कर्णधार बन गये थे। प्रायः सभी राज्यों पर या तो उत्तराधिकार से संबन्धित संघर्ष था या अवयस्क शासकों के कारण सामन्ती गुटबन्दी जोरों पर थी। सन् 1761–91 की अवधि में विभिन्न राज्यों में शासकों द्वारा अपने सामन्तों पर नियन्त्रण करने के प्रयास पूर्णतया विफल रहे। मराठों को आमन्त्रित करने से भी किसी समस्या का समाधान नहीं हुआ और 1791 ई. में प्रायः राजस्थान पर मराठा वर्चस्व स्थापित हो गया।

राजपूत शासकों ओर सामन्तों को अपनी सीमित परिधि से बाहर देखने का अवसर ही नहीं था। वे अपने घरेलू झगडों और षड़यन्त्रों में इतने लिप्त थे कि अखिल भारत में हो रहे घटनाक्रम की उन्हें कोई जानकारी नहीं थी।[2] कोटा में 1771 ई. के पश्चात झाला जालिमसिंह का बोलबाला था। वह अत्यधिक महत्वाकांक्षी था। मेवाड पर प्रभुत्व स्थापित करने का उसका स्वप्न अम्बाजी इंगले और चूंडावतों ने 1791 में तोड़ दिया। कोटा में महाराव उम्मेदसिंह प्रथम केवल दिखावे को शासक था वास्तव में सत्ता जालिमसिंह के हाथों में थी। फिर भी डॉ. रघुवीर सिंह पूर्व आधुनिक राजस्थान के मतानुसार कोटा में उस प्रकार की अराजकता नहीं थी जैसी अन्य राज्य में देखने को मिलती थी। इस सफलता का श्रेय जालिमसिंह की मराठों के साथ अच्छे संबन्ध रखने की नीति को था। मराठों को कर की धनराशि नियमित रूप से मिलती रहती थी और उनके साथ मधुर सम्बन्ध स्थापित थे। वह बहुत चतुर और व्यवहार कुशल था।

जालिमसिंह का अनुमान था कि अंग्रेज मराठों से संघर्ष में अधिक सफल होंगे इसलिए द्वितीय आंग्ल मराठा युद्ध में उसने ठाकुर अमर सिंह को कर्नल मानसून की होल्कर के विरूद्ध सहायता करने को कहा। उसके पिण्ड़ारियों के साथ भी अच्छे सम्बन्ध थे। लेकिन 1817 में उसने अंग्रेजों की पिण्डारियों के विरूद्ध बहुत सहायता की। यह सहायता इसलिए ओर अधिक उपयोगी थी क्योंकि उसे पिण्डारियों के छिपने

और शरण लेने के स्थानों का पता था। उसे सहायता करने के बदले संभावित इनाम से भी अवगत करा दिया गया था। डग, पचपहाड़, अहोर, गंगधार ये चार जिले जो उसने होल्कर से इजारे पर ले रखे थे और चौमहला का परगना उसे इनाम में दे दिया गया।[3]

जालिमसिंह ने हाड़ा सामन्तों की शक्ति को नियन्त्रण में रखा। आप अमरसिंह की मृत्यु के पश्चात उसकी पलायथा की जागीर को अपने अधिकार में कर लिया। साम, दाम, दण्ड, भेद से उसने सामन्तों को अपने नियन्त्रण में रखा। उसने भूराजस्व के प्रबन्ध में मौलिक फेर बदल किए और गाँव के पटेलों के माध्यम से समस्त पैदावार पर नियन्त्रण रखा। 1818 के पश्चात वह अत्यन्त अत्याचारी और निरकुंश हो गया क्योंकि उसे अब किसी का भय नहीं रह गया। किसानों की समस्त पैदावार का वह स्वयं व्यापार करवाता और लाभ कमाता। कृषकों की दशा दयनीय थी। कोटा में सामान्य कृषक गरीब किन्तु सामन्त तथा राज्य बहुत सम्पन्न थे।[4]

कोटा के पिण्डारियों से अच्छे सम्बन्ध थे। दरबार में मराठा वकील बालाजी यशवन्त गुलगुले और उसके पश्चात लालाजी वल्लाल गुलगुले भी कुशल कूटनीतिज्ञ थे जिन्होंने कोटा से मधुर सम्बन्ध बनाए रखे। एक अनुमान के अनुसार कोटा में सन् 1769 से 1801 तक 46.5 लाख रूपये मराठों को दिये अर्थात 1.4 लाख प्रतिवर्ष। इन बातों से स्पष्ट हो जाता है कि राजस्थान के राज्यों की आन्तरिक अव्यवस्था विद्रोही सामन्तों और उत्तराधिकारी सम्बन्धी झगड़ों के कारण हुई, मराठा हस्तक्षेप के कारण नहीं।

राजपूत राजव्यवस्था का मूल दोष कुलीय प्रणाली पर आधारित होना था। यह कुलीय गौरव बहु विवाह और उत्तराधिकार के निरन्तर संघर्ष का जनक हुआ। सामन्ती अराजकता एक स्थायी तत्व थी। इस संघर्ष में बाह्य सैनिक सहायता से प्रधानता प्राप्त करने की अभिलाषा अराजकता को प्रोत्साहन देने वाला तत्व बन गया। सन् 1817–18 में राजपूत राज्यों ने ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी के साथ अधीनस्थ सहयोग की संधियाँ किसी बाह्य आक्रमण के विरूद्ध स्वीकार नहीं की। वास्तव में उन्हें एक साम्राज्यवादी शक्ति के संरक्षण की आवश्यकता थी। उन्हें यह संरक्षण अपने अधिकारों और अपनी सत्ता को अपने ही अधीन सामन्तों के अतिक्रमण से बचाव के

लिए चाहिए था। 1818 की सन्धियों से एक सदी से चला आ रहा सामन्ती संघर्ष एक साम्राज्यवादी शक्ति के नियन्त्रण में आ गया।

कोटा राज्य की ईस्ट इण्डिया कम्पनी से सन्धि

अंग्रेजों से सन्धि करने में सबसे पहला राज्य कोटा था। आश्चर्य की बात है कि सबसे अच्छी प्रशासनिक व्यवस्था यहाँ होते हुए भी कोटा राज्य ने सबसे पहले 26 दिसम्बर 1817 को सन्धि की और इस सन्धि की शर्तें ही अन्य राज्यों के लिए आधार बनी। सन्धि की शीघ्रता का कारण झाला जालिमसिंह था जो इस समय यहाँ का मुख्य प्रशासक एवं सर्वेसर्वा था। 18 वीं शताब्दी के भारतीय कूटनीतिज्ञों में उसका सर्वोच्च स्थान है। उसने कठिन परिस्थितियों में भी अपनी बुद्धिमता और कूटनीतिज्ञता के आधार पर कोटा को सुरक्षा प्रदान की। समस्त राजस्थान में उसका प्रभाव फैला हुआ था। उसका जन्म 1739 ई. में हुआ था। उसकी प्रसिद्धि 17 दिसम्बर 1761 में भटवाड़ा के युद्ध के बाद तेजी से फैली। अंग्रेजी शक्ति का उसने पूर्व में ही अनुमान लगा लिया था। अतः उसने उनके साथ शीघ्र समझौता करना ही श्रेयस्कर समझा। अंग्रेजों से उसका सम्पर्क द्वितीय आंग्ल मराठा युद्ध के समय से ही शुरू होता है। इस युद्ध में जालिमसिंह ने होल्कर के विरूद्ध अंग्रेजों की सहायता की थी। परिणाम स्वरूप होल्कर जालिमसिंह से बहुत नाराज हुआ।

जालिमसिंह की पिण्डारियों के प्रति भी मित्रता की नीति थी। अनेक पिण्ड़ारियों को उसने अपने यहाँ बसाया। चालीस के करीब छोटे–बड़े पिण्डारियों के प्रमुख को उसने अपने यहाँ जागीर दे रखी थी। अमीर खाँ व करीम खाँ पिण्डारी से उसकी मित्रता थी। किन्तु यह मित्रता परिस्थिति वश होकर रह गई थी। इसलिए जब ईस्ट इण्डिया कम्पनी के गर्वनर जनरल की तरफ से कर्नल टॉड पिण्डारियों के दमन के लिए सन्धि का प्रस्ताव लेकर जालिमसिंह के पास आया[5] तो उसने इस प्रस्ताव का अभिनन्दन किया और लुटेरे पिण्ड़ारियों के दमन में कम्पनी के साथ हृदय से सहयोग किया।

जालिमसिंह की प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष सहायता से कम्पनी ने पिण्डारियों के मुखियाओं को गिरफ्तार किया और उसकी सहायता से मराठा युद्ध में कम्पनी को बड़ा धैर्य रहा।[6] टॉड ने 10 दिसम्बर 1817 को अपनी सरकार को एक पत्र लिखा

जिसमें पिण्डारी अभियान में जालिमसिंह के सहयोग की प्रशंसा की। जॉन माल्कम ने भी उसे एक महत्वपूर्ण व्यक्ति की संज्ञा दी। कम्पनी ने उसकी सेवाओं से प्रसन्न होकर उसे चार परगने देना चाहा किन्तु जालिमसिंह ने अपने बजाय अपने स्वामी कोटा के महाराव उम्मेदसिंह को देने का आग्रह किया। कम्पनी की उदीयमान शक्ति को इस प्रकार सहायता देकर जालिम सिंह ने बड़ी बुद्धिमानी से काम लिया।

पिण्डारियों के दमन एवं मराठा शक्ति के ह्रास होने के बाद जालिमसिंह और ईस्ट इण्डिया कम्पनी में परस्पर सन्धि की शर्तें तय होने लगी और सब बातें निश्चित हो जाने के पश्चात कोटा दरबार की ओर से गैंता के महाराज शिवदानसिंह जी, सेठ जीवनराम और लाला हूलचन्द प्रतिनिधि बनाकर दिल्ली भेजे गये। वहाँ उन्होंने गर्वनर जनरल के प्रतिनिधि मि. चार्ल्स थियोफिलस मेटकॉफ से बातचीत की और संधि पत्र लिखा गया। जिस पर मि. मेटकॉक ने गर्वनर के प्रतिनिधि की हैसियत से और महाराजा शिवदानसिंह जी इत्यादि ने कोटा दरबार के प्रतिनिधि की हैसियत से हस्ताक्षर किये और तय हुआ कि एक महीने के अन्दर सन्धि पत्र की गर्वनर जनरल और महाराव उम्मेदसिंह एवं प्रबन्धक राज राणा जालिमसिंह परस्पर पुष्टि करेंगे। यह दिल्ली का सन्धि पत्र 26 दिसम्बर सन् 1817 को लिखा गया था।

सन्धि पत्र

पहली धारा :–एक ओर ब्रिटिश गवर्नमेन्ट और दूसरी ओर महाराव उम्मेदसिंह बहादुर और उनके उत्तराधिकारी के मध्य निरन्तर मैत्री सम्बन्ध और हित समता रहेगी।

दूसरी धारा :– इस सन्धि पत्र में हस्ताक्षर करने वालो के शत्रु–मित्र एक दूसरे के शत्रु–मित्र माने जाएगें।

तीसरी धारा :–अंग्रेज सरकार कोटा राज्य को अपनी संरक्षकता में लेना स्वीकार करती है।

चौथी धारा :– महाराव और उनके उत्तराधिकारी अंग्रेज सरकार के अधीन रहते हुए सदा सहयोग करेंगे, उसके आधिपत्य को मानेंगे और भविष्य में उन राजाओं और

रियासतों से कोई निजी सम्बन्ध नहीं रखेंगे जिनके साथ कोटा राज्य का अब तक सम्बन्ध रहा है।

पाँचवीं धारा :–अंग्रेज सरकार की अनुमति के बिना महाराव और उनके उत्तराधिकारी किसी राजा या रियासत के साथ किसी प्रकार की शर्तें तय नहीं करेंगे किन्तु वे अपने मित्रों तथा सम्बन्धियों के साथ व्यवहारिक पत्र व्यवहार करते रहेंगे।

छठी धारा :– महाराव और उनके उत्तराधिकारी किसी (राज्य) पर अतिक्रमण नहीं करेंगे। यदि संयोग से महाराव के कार्य से या अन्य पक्ष से विवाद खड़ा हो जाए तो वह निर्णयार्थ अंग्रेज सरकार के सामने पेश किया जावेगा।

सातवीं धारा :– कोटा राज्य जो मामलात (खिराज या खण्डाणी) अब तक मराठों (अर्थात पेशवा, सिंधिया, होल्कर और पँवार) को देता था, वह जुदे ब्यौरे के अनुसार, जो साथ में नथ्थी है, सदैव दिल्ली में अंग्रेज सरकार को दी जावेगी।

आठवीं धारा :– कोटा राज्य से अन्य किसी राज्य को मामलात लेने का अधिकार न होगा। यदि कोई ऐसा अधिकार प्रस्तुत करेगा तो अंग्रेज सरकार इसका उत्तर देगी।

नवीं धारा :– जब अंग्रेज सरकार को आवश्यकता होगी तो कोटा राज्य अपनी गुंजाइश के अनुसार सेना भेजेगा।

दसवीं धारा :– महाराव और उनके उत्तराधिकारी पूर्ण रूप से अपने राज्य के शासक रहेंगे। उनके राज्य में अंग्रेज सरकार का दीवानी या फौजदारी अमल जारी नहीं किया जावेगा।

ग्यारहवीं धारा :– इन ग्यारह शर्तों की सन्धि दिल्ली में हुई। एक पक्ष की ओर से मि. चार्ल्स मेटकॉफ ने इस पर मोहर लगाई और दूसरी ओर से महाराजा शिवदान सिंह, शाह जीवनराम और लाला हूलचन्द ने। तय हुआ कि आज से एक महीने के अन्दर परम प्रतिष्ठित गर्वनर जनरल और महाराव उम्मेदसिंह तथा उनके प्रबन्धक राजराणा जालिमसिंह उसकी पुष्टि करेंगे।[7]

इस समय तक जालिमसिंह काफी वृद्ध हो चुका था। कोटा के हाड़ा जागीरदार तथा राजकुमारों के मन में उनके प्रति काफी ईष्या थी। जालिमसिंह ने यद्यपि अंग्रेजों से दी जाने वाली सनद स्वीकार नही की तथापि वह अपने उत्तराधिकारियों के लिए चिन्तित अवश्य था। अंग्रेजों की उसने कठिन समय में मदद की थी।

डॉ. रामप्यारी शास्त्री ने तो इतना लिखा है कि राजपूताना, मध्य भारत और वास्तव में दक्षिण व पूर्व से किसी व्यक्ति ने निरन्तर अंग्रेजों के प्रति इतना सद्भाव नहीं रखा जितना जालिम सिंह ने 1799 ई. से लेकर अपनी मृत्यु तक अपने सम्बन्ध अंग्रेजों से अच्छे बनाए रखे। पिण्डारी अभियान में उसने जो महत्वपूर्ण सेवाएँ दीं और जिस शीघ्रता से सन्धि की शर्तों को स्वीकार किया उसका कारण उसका अंग्रेजों के प्रति विशेष सद्भाव था। अतः ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने भी उसके प्रति काफी उदारता प्रदर्शित की।

कोटा महाराव से हुई सन् 1817 की सन्धि में एक पूरक धारा फरवरी 1818 में जोड़ दी गयी जिससे राज्य की अखण्डता को भारी क्षति पहुँची। मेटकॉफ हर प्रकार से जालिमसिंह को आश्वस्त करना चाहता था और गवर्नर जनरल की ओर से उसे पूरे अधिकार व्यवहारिक रूप में उपलब्ध थे। इस पूरक धारा से कोटा के प्रशासन के समस्त अधिकार जालिमसिंह और उसके वंशजो तथा उत्तराधिकारियों में निहित कर दिये गये।[8]

पूरक धारा पर 6 व्यक्तियों के हस्ताक्षर थे – मेटकॉफ महाराव उम्मेदसिंह, राजराणा जालिमसिंह, महाराजा शिवदानसिंह जी, हूलचन्द और शाह जीवनराम। इस हस्ताक्षर की तारीख 20 फरवरी 1818 है और 7 मार्च को सन्धि मान्य हो गई। डॉ. शास्त्री का मानना है कि इस समझौते में कुछ विसंगतियाँ हैं। छहों व्यक्तियों के हस्ताक्षर दिल्ली में हुए परन्तु ऐसा कोई प्रमाण नहीं है जिससे यह सिद्ध होता हो कि महाराव उम्मेदसिंह दिल्ली में उपस्थित हुए हों। शिवदानसिंह, हूलचन्द और जीवनराम के हस्ताक्षर होना भी एक असमंजस का कारण है।

इसमें कोई संदेह नहीं है कि गुप्त शर्तों का ख्याल मुख्य सन्धि के बाद ही आया होगा। अंग्रेज जालिमसिंह को उसकी विशिष्ट सेवाओं के लिए पारितोषिक

प्रदान करना चाहते थे परन्तु कोटा और यहाँ के शासकों के लिए भी सन्धि उपयुक्त नहीं थी। जालिमसिंह के लिए भी यह सन्धि प्रतिष्ठा बढ़ाने वाली नहीं थी।

(क) पूर्वकालीन जागीर प्रथा पर कम्पनी प्रभाव के परिवर्तन

राजस्थान के राज्यों एवं ईस्ट इण्डिया कम्पनी के मध्य हुई सन्धि से जागीरदारों की स्थिति में काफी परिवर्तन आया। पूर्वकालीन जागीर प्रथा का अवलोकन करने पर यह दृष्टिगोचर होता है कि समय के परिवर्तन के साथ–साथ सामन्तों के अधिकारों में भी उतार चढ़ाव आते रहे। राजस्थान के राज्यों एवं ईस्ट इण्डिया कम्पनी के मध्य हुई सन्धि से जागीरदारों की स्थिति में काफी परिवर्तन आया।

1818 की सन्धियों के फलस्वरूप एक सदी से चला आ रहा सामन्ती संघर्ष एक साम्राज्यवादी शक्ति के नियन्त्रण में आ गया। सामन्ती गुटों की अराजकता से तंग आकर राज्यों ने संघर्ष किये बिना अंग्रेजों के आगे घुटने टेक दिये और अधीनता स्वीकार कर ली। सन् 1818 में अंग्रेजी संरक्षण में आने के पश्चात राजा अंग्रेजों के समर्थन पर अधिकाधिक निर्भर होते गये। गोद लेने और उत्तराधिकार के समस्त प्रश्न अंग्रेजी स्वीकृति मिल जाने के पश्चात हल हो जाते थे। राज्य के प्रत्येक तत्व को–रानी माँ, राजा, प्रधान, दीवान तथा सामन्त को यह भली भाँति अनुभव करा दिया गया कि वे सत्ता का प्रयोग केवल अंग्रेजी अनुमति से ही कर सकते थे। कोटा के मामले में अंग्रेजों ने जालिमसिंह का साथ दिया। महाराव किशोरसिंह को स्वतन्त्रता हेतु कड़ा संघर्ष करना पड़ा। अन्त में उन्हें पूरक सन्धि की शर्तों को स्वीकार करना पड़ा। कोटा में राजराणा माधोसिंह तथा मदन सिंह अंग्रेजी समर्थन से दीवान के पद पर बने रहे।[9]

समस्त 18वीं एवं 19वीं सदी के प्रथम दो दशक राजा और सामन्तों में अपेक्षाकृत प्रधानता के लिए संघर्ष का युग था। यद्यपि सभी राज्यों में सामन्तों के पास अधिक भूमि थी और बड़े सामन्त काफी शक्तिशाली थे। फिर भी 19 वीं सदी के आरम्भ में उन्हें किसी भी राज्य में प्रशासनिक उत्तरदायित्व नहीं मिला था। अंग्रेजों ने यह भली भाँति देख लिया कि राजपूत राज्यों में प्रबन्ध कार्यों में राजा के सम्बन्धियों को प्रमुख स्थान नहीं दिया जाता था।[10] जोधपुर में भण्डारी, उदयपुर, किशनगढ़ में

ओसवाल ,जैसलमेर में मेहता अथवा जयपुर में सिन्धी परिवारों को प्रशासन संचालन का मुख्य उत्तरदायित्व सौंपा हुआ था। इन मन्त्रियों को कोई वंशानुगत प्रभाव तथा जागीरें नहीं थी। कोटा राज्य में एक झाला राजपूत को प्रशासनिक उत्तरदायित्व सौंपने का परिणाम राज्य के विघटन में प्रदर्शित हुआ।

सामन्त देखने में प्रभावशाली लगते थे लेकिन वास्तव में उनकी स्थिति अत्यन्त दुर्बल थी। उनकी शक्ति का एक मात्र स्त्रोत राजा का उनके महत्व और स्थान को स्वीकार करना था। जब तक राजा अपने आप को परम्परा से बँधा हुआ मानता था, सामन्त शक्तिशाली थे। जो शासक इस बन्धन को स्वीकार न करे और सामन्तों पर सैनिक सहायता के लिए निर्भर न हो, वह बड़े से बड़े सामन्त के लिए कठिनाई पैदा कर सकता था। सामन्तों को कुछ क्षेत्र से बेदखल करना अथवा उनके कुछ गाँव छीन लेना, उत्तराधिकार के समय शुल्क की बड़ी राशि माँगना आदि ऐसे परम्परागत अधिकार थे जिनसे परम्परा को निभाते हुए भी सामन्तों को उनकी वास्तविक स्थिति से अवगत कराया जा सकता था।[11]

अंग्रेजी प्रभुसत्ता स्थापित हो जाने से इतना अवश्य हुआ कि सामन्त अब अपनी शिकायतें षडयन्त्र और युद्ध के स्थान पर पोलिटिकल एजेण्ट के दरबार में याचिका पेश करके दूर करवा सकते थे। 1818 की सन्धियों में अंग्रेजो ने प्रत्येक राज्य के राजवंश को उसके उत्तराधिकारियों के लिए सुरक्षित रखने की बात कही थी और कुछ राज्यों में विद्रोही सामन्तों को दबाने में सहायता करने का आश्वासन भी दिया था। इस महत्वपूर्ण परिवर्तन के अतिरिक्त सामन्तों की उपयोगिता भी बहुत कम हो गई थी क्योंकि अब राजा को उनकी सैनिक सहायता की आवश्यकता ही नहीं थी।

इस प्रकार सन् 1818 की सन्धि के पश्चात सामन्तों की स्थिति और भी दुर्बल हो गयी। वे राज्य के लिए कोई उपयोगी कार्य करने की स्थिति में ही नहीं थे। उनका महत्व उतना था ही जितना सर्वोपरि सत्ता चाहती। सामन्तों के विशिष्ट अधिकार, उनका मान व गौरव केवल दरबारों में देखने दिखाने की वस्तु बनकर रह गई और सारी कुलीय संरचना तर्कहीन और कालदोष युक्त संस्था के रूप में परिवर्तित हो गई।

विभिन्न राज्यों में सामन्तों के प्रति अंग्रेजी दृष्टिकोण उनकी अपनी नीति के संदर्भ में विकसित हुआ। यदि किसी राज्य में अंग्रेजी प्रभाव के विस्तार और व्यापक बनने में राजा अथवा रानी माँ (जैसे जयपुर) बाधा जनक हुए तो सामन्तों को अंग्रेजों के पक्ष में समर्थन देने के लिए कहा गया। यदि किसी राज्य में राजा ने न तो अंग्रेजो के लिए बाधा खड़ी की और न ही सहायता की, तो सामन्तों के गुटों को अंग्रेजी प्रभाव के स्वागत करने के पक्ष में वातावरण बनाये रखने के लिए प्रश्रय दिया गया अथवा राजदरबार में ऐसी स्थिति होने दी गई जिससे अंग्रेजी कूटनीति को प्रभावशाली ढंग से हस्तक्षेप का अवसर उपलब्ध हो (जैसे जोधपुर) और यदि किसी राज्य में राजा स्वयं अंग्रेजी प्रभुत्व और प्रभाव का स्वागत करे तो अंग्रेज सामन्तों को दबाकर उन्हें राज्य के प्रति आज्ञाकारी बनाने का प्रयत्न किया (जैसे उदयपुर)।

कोटा के प्रशासक झाला जालिमसिंह ने अंग्रेजों को अपना पूर्ण समर्थन दिया तो अंग्रेजों ने महाराव को दुर्बल बना जालिमसिंह के उत्तराधिकारियों हेतु अधिकार सुरक्षित रखने का प्रयत्न किया। अन्य स्थानों पर अंग्रेजों ने अलगाव की नीति अपनाए रखी और आन्तरिक झगड़ों को विकसित होने दिया ताकि एक निश्चित समय पर प्रभावशाली ढंग से हस्तक्षेप कर सके। इस प्रकार की प्रतीक्षा करने की नीति अंग्रेजों के आर्थिक हितों के प्रोत्साहन के लिए भी लाभदायक थी। सामन्तों ने उन नीतियों को समर्थन देना अपने हितों के लिए लाभप्रद समझा।[12]

सर्वप्रथम दिसम्बर 1817 में अंग्रेजों ने कोटा राज्य से सन्धि की थी। सन्धि के समय कोटा के महाराव उम्मेद सिंह प्रथम थे किन्तु राज्य का सर्वोपरि प्रशासक झाला जालिमसिंह था। उसने अंग्रेजों की शक्ति का पूर्वानुमान लगा लिया था। अतः उसने अंग्रेजों के साथ शीघ्र समझौता करना श्रेष्ठकर समझा। यही कारण था कि सर्वप्रथम सन्धि कोटा राज्य से की गई। इस सन्धि के बाद में दो पूरक शर्तें जोड़कर कोटा के प्रशासन के समस्त अधिकार जालिमसिंह और उनके वंशजों, उत्तराधिकारियों में निहित कर दिये गये थे। महाराव उम्मेदसिंह की मृत्यु के पश्चात जालिमसिंह ने मार्गशीर्ष शुक्ल चतुर्दशी सम्वत् 1876 (सन् 1819) के दिन किशोर सिंह को गद्दी पर बिठा दिया और राज्य का शासनसूत्र पूर्ववत हाथ में रखा।[13]

कोटा में सर्वत्र जालिमसिंह के विरूद्ध असन्तोष व्याप्त किया। जागीरदार, बोहरे, कृषक सभी जालिमसिंह के विरोधी थे। जनता करों के भार से तो जागीरदार जागीर छिन जाने एवं माधोसिंह (जालिमसिंह का पुत्र) की उद्दण्ड नीति से असन्तुष्ट थे। इस समय कर्नल टॉड कोटा में ही था। महाराव किशोरसिंह ने नाममात्र का शासक बनना स्वीकार नहीं किया। महाराव सन् 1817 के दिसम्बर की सन्धि का पालन करवाने पर तुले हुए थे और जालिमसिंह और उसका पुत्र मार्च 1818 की गुप्त सन्धि का पालन करवाने पर।

महाराव किशोरसिंह ने पॉलिटिकल एजेण्ट के जरिये गर्वनर जनरल को खरीता भेजा[14] कि दिसम्बर सन् 1817 की सन्धि पर स्वर्गीय महाराव तथा गर्वनर जनरल दोनों के हस्ताक्षर हैं। इस सन्धि की शर्तों के अनुसार स्वर्गीय महाराव के उत्तराधिकारी कोटा राज्य के अनियन्त्रित शासक रहने चाहिये। इसलिये इस शर्त का पालन होना चाहिये और कम्पनी को चाहिये कि जालिमसिंह की सहायता नहीं करे। मार्च सन् 1818 में जालिमसिंह एवं कम्पनी में जो सन्धि हुई, उसका स्वर्गीय नरेश को अपने अन्त समय तक पता भी नहीं था। अतः यह गुप्त सन्धि उनके उत्तराधिकारियों पर लागू नही हो सकती।[15]

अंग्रेजों की जालिमसिंह के प्रति मित्रता के कारण किशोरसिंह को बून्दी एवं मेवाड में निर्वासित जीवन व्यतीत करना पडा। महाराव किशोरसिंह पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त करने पर तुले हुए थे। कोटा के पॉलिटिकल एजेण्ट ने इस समस्या को सुलझाने हेतु किशोरसिंह जी से रंगबाडी में मुलाकात की। पॉलिटिकल एजेण्ट ने कोटा नरेश को विश्वास दिलाया कि यदि वे वापस चलकर गद्दी पर बैठेंगे तो उनके मान और प्रतिष्ठा में किसी प्रकार का अन्तर नहीं आएगा। साथ ही यह भी कह दिया कि कम्पनी ने जो शासन शक्ति जालिमसिंह को दी है उसमें भी किसी प्रकार की कमी नही की जाएगी।[16]

महाराव किशोरसिंह को वापस कोटा लाकर पॉलिटिकल एजेण्ट द्वारा बड़ी धूमधाम से पुनः राजतिलक करवाया गया। पॉलिटिकल एजेण्ट ने कम्पनी की ओर से महाराव किशोरसिंह एवं जालिमसिंह को खिलअत दे कर सत्कृत किया।[17] कुछ समय पश्चात ही महाराव किशोरसिंह फिर सक्रिय हो उठे वे इस बात के लिए तैयार नहीं

थे कि जालिमसिंह के पुत्र माधोसिंह के हाथ में वास्तविक सत्ता रहे ओर वे नाममात्र के शासक बने रहे। अतः महाराव ने झाला जालिमसिंह के विरूद्ध युद्ध करने का निश्चय किया। अतः महाराव एवं जालिम सिंह के मध्य मांगरोल का युद्ध हुआ जिसमें महाराव पराजित हुए।

इस युद्ध में हाड़ा जागीरदारों ने किशोरसिंह का साथ दिया था। कोटा के पॉलिटिकल एजेण्ट ने इन सरदारों के साथ जालिमसिंह को दुर्व्यवहार नहीं करने दिया और मांगरोल के युद्ध का किसी से बदला नहीं लिया गया। सभी जागीरदारों को शान्तिपूर्वक अपनी–अपनी जागीरों में जाने दिया। कई जागीरदारों ने कर्नल टॉड को पत्र लिख क्षमा याचना की।

किशोरसिंह जी के आचरण पर नाराजगी प्रकट करते हुए भारत सरकार ने टॉड को लिखा कि पूरक सन्धि पर जालिमसिंह और उम्मेदसिंह दोनों के हस्ताक्षर एवं मोहर है। गूढ अर्थ समझते हुए और घटना क्रम को बारीकी से देखते हुए यह प्रतीत होता है कि अंग्रेज सरकार को यह संदेह हो गया था कि जालिमसिंह ने उम्मेदसिंह जी के हस्ताक्षर जाली करवाये थे लेकिन उन्हें इस बात का कुछ समय पश्चात पता लगा। उन्हें इस पूरक सन्धि की राजाओं द्वारा आलोचना का भी पता चला। इसलिए किशोरसिंह के असफल विद्रोह के पश्चात भी उन्होंने यह कूटनीतिक बुद्धिमता समझी कि किशोरसिंह को गद्दी से वन्चित नहीं किया जाये। अंग्रेजों ने राजस्थान के सब राजाओं को सूचित करना आवश्यक समझा।[17](•) ऐसा पहले या बाद में कभी नहीं हुआ कि अंग्रेज एक राजा के मामले को इतना महत्व दे।

ब्रिटिश सरकार भी दोनों के बीच समझौता करवाने को उत्सुक थी। अतः सन् 1822 में उदयपुर महाराणा की मध्यस्थता से एक नया समझौता हुआ जिसके अनुसार सन्धि की गुप्त शर्तें रख ली गईं और महाराव को कुछ अधिक विशेषाधिकार प्रदान किये गए।सन् 1824 में 84 वर्ष की अवस्था में झाला जालिमसिंह की मृत्यु के पश्चात उसका अयोग्य उत्तराधिकारी झाला माधोसिंह स्वेच्छाचारी व्यवहार करने लगा। झाला माधोसिंह को अंग्रेजों का समर्थन प्राप्त था। कोटा में प्रशासन की कार्य क्षमता धीरे–धीरे कम हो रही थी। सन् 1824 में सेना ने महीनों से वेतन न मिलने के कारण विद्रोह कर दिया। उस समय पॉलिटिकल एजेण्ट ने राजराणा माधोसिंह को

सुझाव दिया कि यूरोपियन अधिकारी के नेतृत्व में एक सेना का गठन किया जाये जिसे कोटा की सेना के अतिरिक्त अंग्रेज सरकार भी काम ले सकेगी। राजराणा इस हेतु तैयार था किन्तु भारत सरकार को आपत्ति थी कि इस सेना से राजराणा की स्थिति और अधिक दृढ हो जाएगी।

सन् 1835 में पुनः पॉलिटिकल एजेण्ट ने इस सुझाव को दोहराया। किन्तु उस समय मदनसिंह (माधोसिंह का पुत्र) ने इसे स्वीकार नहीं किया। झाला मदनसिंह का व्यवहार शासक की तरह था। महाराव किशोरसिंह के उत्तराधिकारी महाराव रामसिंह द्वितीय के समय झालाओं की उद्दण्डता बढ़ती जा रही थी। मदन सिंह ने महाराव रामसिंह की पूर्ण उपेक्षा करना प्रारम्भ कर दिया था। तब जागीरदार सशस्त्र विद्रोह की तैयारी करने लगे थे। इधर अंग्रेज सरकार कोटा में एक सैन्य बल के गठन का निश्चय कर चुकी थी। झाला मदनसिंह भी इस सेना के गठन हेतु तैयार था। अतः कोटा में कम्पनी की एक सेना रहने लगी जिसका नाम 'कोटा कन्टिन्जेण्ट' रखा गया। इसका खर्च कोटा राज्य कोष से मिलने लगा। महाराव रामसिंह ने इसका घोर विरोध किया। महाराव रामसिंह एवं मदनसिंह में निरन्तर कलह बढ़ता ही जा रहा था अंततः कोटा राज्य के 19 परगने अलग कर ब्रिटिश सरकार ने 28 अप्रेल सन् 1838 को एक नये झालावाड़ राज्य की नींव रखी एवं मदनसिंह झाला को वहाँ का शासक बनाया गया।

अंग्रेजों ने कोटा महाराव को न केवल विभाजन योजना स्वीकार करने के लिए बल्कि कोटा सैन्य बल के लिए तीन लाख रूपये वार्षिक देने के लिए भी बाध्य किया। यह सैन्य बल 1000 सैनिक और 100 घुड़सवारों का था। इससे सम्बन्धित प्रस्ताव भी सन् 1838 की सन्धि में समाविष्ट कर दिये गए थे।[18]

इस प्रकार सन् 1817 की कम्पनी सन्धि के फलस्वरूप कोटा का विभाजन कर झालावाड़ राज्य की स्थापना हुई। वहीं दूसरी ओर झाला सामन्तों की निरंकुशता से कोटा महाराव को स्वतन्त्रता प्राप्त हुई और वे शासन के वास्तविक अधिकारी बन सके। कोटा महाराव रामसिंह द्वितीय को घोर वित्तीय संकट का भी सामना करना पड़ा। कई जागीरदारों ने झालावाड़ में अपनी जागीरें छोड़ दी और कोटा नरेश की

सेवा करना स्वीकार किया। ऐसे जागीरदारों को महाराव ने अपने राज्य की जागीरें प्रदान की। साथ ही अपने सरदारों को महाराव द्वारा सत्कृत किया गया।

महाराव रामसिंह के समय की एक प्रमुख घटना 1857 का क्रान्ति थी। कोटा में अंग्रेज विरोधी लहर व्याप्त हो गई थी। कोटा में राजकीय सेना व कोटा कन्टिजेण्ट बागी हो गई थी। कोटा महाराव ने इस अवसर पर अंग्रेजों का साथ दिया। परिणामस्वरूप कोटा महाराव को गढ़ में बन्द कर दिया। इस घोर विपत्ति के समय राजपूत सरदारों ने कोटा की सहायता हेतु अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। विद्रोहियों को फाँसी दी गई। किन्तु कोटा महाराव के योगदान के पश्चात भी मेजर बर्टन की हत्या के लिए महाराव की सुरक्षा व्यवस्था को दोषी ठहराकर उनके सम्मान में कमी कर दी गई।[19]

महाराव रामसिंह के उत्तराधिकारी महाराव शत्रुशाल थे जिनके समय में राज्य की व्यवस्था काफी बिगड़ी हुई थी। राज्य को आर्थिक संकट का सामना करना पड़ रहा था। अतः महाराव शत्रुशाल ने उत्तम राज प्रबन्ध हेतु एक सुयोग्य, अनुभवी राजमंत्री की माँग कम्पनी सरकार से की। सन् 1874 में भारतीय सरकार ने सम्पूर्ण अधिकारियों के साथ नवाब फैज अली को इस कार्य हेतु नियुक्त किया। महाराव ने जब नवाब फैज अली की एक रईस जैसी प्रतिष्ठा देखी तो उन्हें महसूस हुआ कि भारत सरकार ने कोटा से एक झाला को निकाला तो दूसरा लाकर रख दिया। इस असंतोष के कारण नवाब फैज अली केवल दो वर्ष ही कार्य कर सका। इस समय में उसने एक कॉन्सिल स्थापित की थी। जिसके तीन मेम्बर थे पलायथा के आप अमरसिंह जी, राजगढ़ के आप कृष्णसिंह जी और पण्डित रामदयाल। फैज अली के पश्चात पॉलिटिकल एजेण्ट की निगरानी में इस कॉन्सिल द्वारा शासन प्रबन्ध किया जाता रहा।

महाराव शत्रुशाल के कोई संतान न थी अतः उनकी मृत्यु के पश्चात कोटड़ा के जागीरदार छगनसिंह के कनिष्ठ पुत्र उदय सिंह को उम्मेदसिंह के नाम से अंग्रेज सरकार द्वारा महाराव की गद्दी पर आसीन किया गया। पॉलिटिकल एजेण्ट ने जब तक गोदनशीनी का निर्णय नहीं हुआ, जागीरदारों या ठिकानेदारों को गढ़ में प्रवेश की मनाही कर दी। इस प्रकार सन् 1818 के पश्चात महाराव की नियुक्ति के सम्बन्ध

में समस्त निर्णय अंग्रेज सरकार के पास थे। जागीरदारों का दखल बिल्कुल समाप्त हो चुका था। महाराव रामसिंह के समय में कोटा राज्य के सत्रह परगनें लेकर झालावाड़ राज्य बना था। सन् 1953 में झालावाड़ के तत्कालीन राजराणा जालिमसिंह द्वितीय को उनके कुप्रबन्ध से असन्तुष्ट होकर अंग्रेज सरकार ने गद्दी से उतार दिया एवं उनका उत्तराधिकारी न होने से भारत सरकार ने कोटा के सत्रह परगनों में से पन्द्रह परगने वापस कोटा दरबार के सुपुर्द कर दिये।[20]

1818 की सन्धि के पश्चात निःसन्देह अंग्रेज सरकार का राज्यों के शासन पर वर्चस्व कायम हो गया था। कोटा में हाड़ा जागीरदारो ने सदैव महाराव के पक्ष में अपना समर्थन दिया। कोटा में संघर्ष झाला जालिमसिंह एवं उसके उत्तराधिकारियों एवं कोटा महाराव के बीच चला। अन्य राज्य में सामन्तों व शासकों के बीच वैमनस्य एवं संघर्ष जारी रहा। कभी अंग्रेजों के सहयोग से सामन्तों का पलड़ा भारी रहता तो कभी शासक का।

राजस्थान का सामाजिक ढाँचा जो काफी समय से कुलीय परम्परा पर आधारित था, अंग्रेजों के हस्तक्षेप से क्षतिग्रस्त होने लगा। कर्नल टॉड एवं अन्य यूरोपीय लेखकों ने यहाँ की सामन्त प्रणाली को अनुबन्ध पर आधरित मान लिया जैसा कि यूरोप मे था।[21]

वास्तव में राजपूती सामन्त प्रणाली में अनुबन्ध का स्थान गौण था। राजपूत संरचना की दोषपूर्ण अंग्रेजी समझ से इस क्षेत्र की सामाजिक व्यवस्था को अपार क्षति पहुँची। एल्फ्रेड़ ल्याल ने टॉड़ की दोषपूर्ण व्याख्या को दूर करने का प्रयत्न अपनी पुस्तक 'एशियाटिक स्टडीज' में करने का प्रयत्न किया। राजपूत कुलीय संरचना में जागीरदारों का समाज में स्थान उनकी प्रमुख से रक्त की निकटता पर निर्भर था। इसी तर्क को ल्याल ने संक्षेप में स्पष्ट किया है। ''भूमि स्वामित्व' 'इस जागीरदारी का आधार नहीं है। ठिकानेदारों की रक्त की निकटता उसके भूस्वामित्व का आधार है।[22]

जागीरदारों के स्थान और समस्या के समझने में केवल अंग्रेजी दृष्टिकोण में ही परिवर्तन नहीं हुआ बल्कि अंग्रेजी नीति ने कुलीय ठिकानेदारों के इस वर्ग की स्थिति में और फलतः सामाजिक प्रतिष्ठा में मौलिक परिवर्तन कर दिया। राज्य में उत्तराधिकार के निर्णय को सामन्तों के नियन्त्रण से निकालकर और 'चाकरी' को

छटून्द में बदलकर अंग्रेजी नीति ने जागीरदारों की सामाजिक प्रतिष्ठा को क्षतिग्रस्त कर दिया। वकील कोर्टस की स्थापना, प्रत्यपर्ण सन्धियों और अंग्रेजी भारत की भाँति न्यायलयों की स्थापना के पश्चात् उद्धण्ड सामन्तों का अनुत्तरदायी व्यवहार बहुत कम क्षेत्र में रह गया। अपनी जागीरों के भीतरी प्रशासन को छोड़कर अन्य क्षेत्रों में उनके लिए काफी सीमित सुविधाएँ और अधिकार रह गये थे। इन सब का प्रभाव उस सामाजिक संरचना को दुर्बल बना देना हुआ जो कुलीय रक्त की शुद्धता पर आधारित थी। पुरानी सामाजिक व्यवस्था अनुचित दिखाई पड़ने लगी और टूटना आरम्भ हो गई। परिणामतः सामाजिक संरचना में संतुलन बनाए रखने वाले सब तत्व बेकार हो गये और उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा भी कम होती गई। जैसे पहले कुछ विषयों में रानी माँ, अन्य में ठिकानेदारों, जाति पंचायतों अथवा विशिष्ट जागीरदारों और सम्बन्धियों की अनुमति की आवश्यकता होती थी। उन विषयों में से अधिकांश में अब अकेले पॉलिटिकल एजेण्ट/रेजिडेण्ट की स्वीकृति पर्याप्त थी।

इन पॉलिटिकल अधिकारियों में से अधिकांश को स्थानीय परम्पराओं का उतना ही ज्ञान होता था जितना वे करना चाहते थे। वे अपने आर्थिक और राजनीतिक लक्ष्यों को प्राप्त करने में अधिक रूचि रखते थे और उसके दूरगामी सामाजिक परिणामों के सम्बन्ध में उनका दृष्टिकोण अनासक्त और उदासीन होता था। जयपुर में सन् 1826–27, कोटा में सन् 1838–39, 1872, 1888, जोधपुर में सन् 1838–43 की घटनाएँ अंग्रेजी अनासक्ति की द्योतक थी। उनका कुलीय सामाजिक प्रतिष्ठा पर गहरा प्रभाव पड़ा।[23]

राजस्थान के राज्यों और जागीरों से व्यापारियों के अंग्रेजी भारत में निष्क्रमण को राजाओं और जागीरदारों की अपेक्षा अंग्रेजी सरकार ने अधिक प्रोत्साहन दिया। किसी कठिनाई की स्थिति में अंग्रेज पॉलिटिकल अधिकारी ही उन व्यापारियों की मदद करते थे। इन निष्क्रमित हुए व्यापारियों के लिए अंग्रेजी भारत में व्यवसाय के अधिक अवसर उपलब्ध थे इसलिए इन व्यापारियों का शीघ्र धनी बन जाना सामान्य घटना थी। इसके कुछ प्रमुख कारण थे। सर्वप्रथम उनकी कार्यपद्धति थी। वे बहुत कम लाभ पर कार्य करने को तैयार रहते थे। जीवन पद्धति सादा होने से थोडा–थोडा धन भी एकत्र करके शीघ्र सम्पन्न हो जाते थे।[24]

राजस्थान से गये इन मारवाडी व्यापारियों में एकता की भावना ने नये आए हुए साथियों को आश्रय देना आरम्भ किया। उनके लिए जमानत देना अथवा उनको उधार सामान दिलवाने में सहायता करना नये व्यापारियों को राजस्थान से बाहर आने के लिए प्रोत्साहित करता रहा।[25] निष्क्रमणता को रोकने में असमर्थता अब पुराने ढाँचे की विवशता की द्योतक थी।

ये व्यापारी न केवल ठिकानेदारों के नियन्त्रण से मुक्त हो गये अपितु इस वर्ग ने जागीरदारों के परेशान करने के असीमित अधिकारों को सीमित करने के लिए आवाज उठाई। अंग्रेज अधीन भारत में कुछ वर्ष रहने के पश्चात् जागीर क्षेत्र में वापस आने पर इस व्यापारी वर्ग को जागीरी अधिकार कुछ अधिक ही अनुचित प्रतीत होते थे। अंग्रेज अधिकारी तो पहले से ही जागीरदारों के व्यवहार से असन्तुष्ट थे। व्यापारियों से मिली शिकायतों से उन्हें एक और नियन्त्रण का साधन मिल गया। निष्क्रमण किये हुए व्यापारी ही पुराने सामन्ती ढाँचे को चुनौती दे सकते थे क्योंकि राजनीतिक सत्ता के पास उनकी पहुँच थी और विरोध करने की क्षमता थी। अंग्रेज अधिकारी भी इन व्यापारियों को समर्थन देते थे क्योंकि ये व्यापारी अंग्रेजी आर्थिक साम्राज्यवाद के हितों को ही बढ़ावा दे रहे थे। इन व्यापारियों के धनी होने से राज्यों में नरेशों द्वारा भी इन्हें सम्मानित किया जाता था। वे भी इन व्यापारियों को असंतुष्ट नहीं रख सकते थे अतः व्यापारी वर्ग नई परिस्थितियों में अत्यधिक शक्तिसम्पन्न व प्रभावशाली बन गया।[26]

सामन्ती प्रणाली के प्रभावित होने से कृषकों की स्थिति दयनीय होने लगी। यह परिवर्तन जागीरदारों और ठिकानेदारों की धातु मुद्रा की बढ़ती हुई आवश्यकता के फलस्वरूप हुआ। सामन्ती चाकरी को नगद राशि में बदल देना और वकील कोर्ट्स द्वारा जागीरदारों पर जुर्माना निर्धारित करने से इन ठिकानेदारों की धातु मुद्रा की आवश्यकता बढ़ गई। चाकरी को नगद धन में परिवर्तन करने का एक परिणाम यह हुआ कि जागीरदार और उसकी प्रजा में अलगाव पैदा होना आरम्भ हो गया।

पहले जागीरदार को बाह्य आक्रमण के विरूद्ध अथवा दरबार की चाकरी के लिए अपनी प्रजा की आवश्यकता होती थी। इसलिए उसका दृष्टिकोण उदार और

पैतृक था लेकिन जैसे ही उसको कृषकों की आवश्यकता कम हुई उनके प्रति उनका दृष्टिकोण बदलने लगा।[27]

साथ ही एक परिवर्तन जागीरदारों के रहन सहन में दृष्टिगोचर होने लगा। पश्चिमी शैली का प्रभाव उनके एवं उनके उत्तराधिकारियों के जीवन पर पड़ने से अकर्मण्यता एवं विलासिता बढ़ने लगी। अतः 19 वीं सदी के अन्त में एवं 20 वीं सदी के आरम्भ में जागीरदारों द्वारा कृषकों/प्रजा पर नई लागतें लगाई गईं। जीवन पद्धति में यह मौलिक बदलाव उस पैतृक जागीरदारी प्रथा को शोषणात्मक जागीरदारी प्रथा में परिवर्तित करने में सहायक रहा। यह परिवर्तन राजस्थान के सभी राज्यों और उनके ठिकानों में दिखाई देता है। इस प्रचलित व्यवस्था में असंतोष व्याप्त था। धीरे–धीरे यह असंतोष जागीरदार व कृषक संघर्ष रूप में फूट पड़ा एवं अनेक कृषक आन्दोलनों का प्रणेता बना। 20वीं सदी के प्रारम्भिक दशकों में अनेक कृषक आन्दोलन हुए। ये आन्दोलन जागीरदारों के अत्याचारों के विरूद्ध थे। अंग्रेजी नीतियों के फलस्वरूप सामाजिक ढाँचा अत्यधिक रूप से प्रभावित हुआ। वह जागीरदारी व्यवस्था जो कभी पैतृकवादी हुआ करती थी अब शोषणात्मक स्वरूप में परिवर्तित हो चुकी थी।[28]

कृषक आंदोलनों के साथ साथ अंग्रेजों के अत्याचारों के विरूद्ध राष्ट्रीय आन्दोलन भी व्यापक हो चला था। शासक वर्ग अपनी सत्ता बचाने हेतु संघर्षरत था। वहीं राष्ट्रवादियों द्वारा पुरानी शासन व्यवस्था समाप्त कर अंग्रेजों से मुक्त स्वशासन की भावना के कारण आमूलचूल परिवर्तन आ गया था।

(ख) जागीरदारों की विभिन्न श्रेणियाँ एवं उनमें परिवर्तन के कारण

राजपूताना में मुगल सत्ता स्थापित हो जाने के पश्चात वहाँ राजपूत शासकों और उनके सामन्तों के आपसी सम्बन्धों में महत्वपूर्ण परिवर्तन आये। अब राजस्थानी शासक अपने सामन्तों की शक्ति की अपेक्षा मुगल सम्राट के प्रश्रय पर अधिक निर्भर हो गया था। अतः सामन्तों का अपने राज्य में महत्व कम हो गया था।

राजपूत राजाओं ने मुगल सम्राट का अनुकरण करते हुए सामन्तों को नियन्त्रित करने के प्रयास किये। मुगलों की मनसबदारी प्रथा से प्रेरणा लेकर राजपूत

राजाओं ने भी अपने सामन्तों का पद एवं प्रतिष्ठा के आधार पर विभिन्न श्रेणियों में विभाजन कर दिया। इसका अभिप्राय यह नहीं है कि दोनों प्रथाएँ साम्य रखती है। साम्य इसी अर्थ में है कि जागीरदारों के दर्जे निश्चित करने से उनकी जागीर की आय और उनके पद और प्रतिष्ठा का निर्धारण हो गया था। इस प्रकार सामन्त कई श्रेणियों में विभक्त हो गये थे। सामन्तों की श्रेणियाँ भी विभिन्न राज्यों में अलग–अलग थी। इन श्रेणियों के अलग–अलग होने के कारण राज्यों में अलग–अलग थे। राज्यों में सामन्तों की श्रेणियाँ उनके मान सम्मान तथा पद प्रतिष्ठा अनुसार भिन्न–भिन्न रही।

पद प्रतिष्ठा – सामन्तों के पद उनकी सामाजिक–राजनीतिक कार्यवाहियों द्वारा परम्परागत रूप से अर्जित किये हुए थे और उसी अनुसार उनकी राजनीतिक प्रतिष्ठा एवं मान सम्मान पैतृक परम्परा में बना रहता था। राजस्थान में सामन्तों का स्तरीकरण ऊँच–नीच के अनुसार न होकर मान–सम्मान पर आधारित था। इस रूप में स्तरीकरण का पैमाना आर्थिक दृष्टि से अधिक सामाजिक व्यवहार पर प्रचलित रहता था। कोटा में मोहनसिंहोत एवं किशोरसिंहोत जागीरदारों की राज परिवार के भाई होने के नाते अन्य ठिकानेदारों की अपेक्षा विशेष प्रतिष्ठा थी।[29] अतः सामन्त पद प्रतिष्ठा परम्परागत होने के साथ–साथ शासक द्वारा भी प्रदान की जा सकती थी।

मान–सम्मान – सामन्तों को उनके पद व प्रतिष्ठा के अनुसार उपाधियाँ तथा मान–सम्मान दिया जाता था। मान सम्मान की अभिव्यक्ति का माध्यम सामन्तों की दरबार में बैठने का क्रम अर्थात शासक के पास उसके दायीं ओर उसकी बांयी ओर अथवा उसके सामने बैठने एवं खड़े रहने आदि से व्यक्त होता था। इसके अतिरिक्त राजदरबार या बाहर सामन्त के प्रति शासक का सामाजिक और आर्थिक व्यवहार भी जागीरदार की श्रेणी को निश्चित करता था। ताजिम, बाँह पसाव, हाथ कुरब, जीकारा, भेंट आदि ग्रहण करते समय शासक का उठकर भेंट ग्रहण करना अथवा सामन्त की भेंट को बैठे–बैठे ही स्वीकार करना, सामन्त को पैर में सोना धारण करने का अधिकार आदि कई ऐसे मान–सम्मान थे जो शासक और सामन्त के सम्बन्धों को प्रकट तो करते ही थे साथ ही इन सम्मानों से सामन्त की प्रतिष्ठा/श्रेणी भी निश्चित होती थी।[30]

कोटा के जागीरदार व श्रेणी निर्धारण

कोटा के जागीरदारों को दो श्रेणियों में विभाजित किया गया था देशथी एवं हजूरथी। कोटा महाराव के निकट के कुटुम्बी 'राजवी' कहलाते थे और अन्य सरदार 'अमीर उमराव' के नाम से सम्बोधित किये जाते थे।

देशथी (देश के) – ऐसे जागीरदार को देश का जागीरदार भी कहते थे। ये जागीरदार गाँव में शान्ति एवं व्यवस्था स्थापित करते थे। इनमें तन के जागीरदार भी होते थे जो राजा के निकटतम रिश्तेदार भाई, चाचा आदि होते थे। पलायथा, कोटड़ा, सांगोद एवं कोयला इसी प्रकार की जागीरें थी। ये राज्य में रहकर निश्चित घोड़े, पैदल एवं सैनिक रखते थे एवं जागीर की आय से सब खर्च चलाते थे। ये राजा के प्रति अपने कर्तव्यों को समझ कर युद्ध में सम्मिलित होते थे। ऐसे जागीरदारों में अधिकांश हाड़ा वंश के राजपूत होते थे।[31]

झालाओं के आगमन एवं जालिमसिंह के प्रभाव में आने के पश्चात झाला राजपूत जागीरदारों की संख्या भी राज्य में काफी मात्रा में हो गई। इन जागीरदारों को किसी प्रकार के कर नहीं देने पड़ते थे। नये उत्तराधिकारी की नियुक्ति पर उन्हें नजराना देना पड़ता था एवं प्रतिवर्ष तनख्वाह नाम से मामूली सी राशि राज्य में जमा करवानी होती थी। ये जागीरदार राजा को समय–समय पर नजर एवं भेंट आदि प्रदान किया करते थे।[32]

हुजूरथी – इन जागीरदारों को दरबार के साथ युद्धों में जाना जरूरी होता था। उन्हें नौकरी की एवज में जागीरें प्रदान की जाती थी।[33] इन जागीरों के भी प्रकार थे।

जागीरों के अन्य प्रकार [34]

सैनिक जागीरें – सैनिक जागीरों के अर्न्तगत निम्नलिखित जागीरें आती थीं –

- **मूण्डकटों** – ये सैनिक जागीरें सेवारत अथवा युद्ध में वीरगति पाने वाले सैनिकों के पुत्र–पौत्र अथवा अन्य उत्तराधिकारियों को मुंडकटों के नाम से दी जाती थी। इस प्रकार की जागीरों की भूमि कर मुक्त होती थी।[35]

❖ **बंदूकों की चाकरी** – सेना में बंदूकधारी सिपाही को तथा जमादार को औसतन 40 से 50 बीघा भूमि प्रदान की जाती थी। कभी–कभी प्रति जमादार को 5 रूपये एवं सिपाही को 4 रूपये प्रति माह वेतन दिया जाता था।[36]

❖ **पालतू पेट रोटी** – सैनिक सेवारत जागीरदारों एवं अन्य सैनिक एवं जमादारों की मृत्यु के उपरान्त उनके परिवार को कुछ जमीन जीवन निर्वाह के लिये दी जाती थी। यह भूमि कर से मुक्त होती थी[37] और मृतक के पति एवं उत्तराधिकारियों के पास जीवन पर्यन्त तक रहती थी। उदाहरण के लिए सन् 1809–1810 ई. में परगना पलायथा में आप अमरसिंह जी के वीरगति प्राप्त करने पर कुशलसिंह हाड़ा अर्थात् अमरसिंह के पुत्र को 137 बीघा 4 बिस्वा भूमि पालतू पेट रोटी में दी गई।[38]

❖ **रमराठौड़ी** – राजपूतों को जो भूमि बख्शाऊ तौर पर माफी में प्रदान की जाती थी वे रमराठौड़ी कहलाती थी। इन माफियों में विभिन्न बन्दोबस्तों के समय किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं किया गया। इन माफियों में सिंचित भूमि पर 1 रूपया प्रति बीघा एवं कोरवान भूमि पर 10 आना प्रति बीघा पर रमराठौड़ी के नाम से कर लिया जाता था। 1927 ई. में रमराठौड़ी से राज्य में कुल 31,213 रूपये की आय हुई।[39]

❖ **घोड़ों की चाकरी की जागीरें** – महाराव माधोसिंह (1624–1648) एवं मुकुन्दसिंह (1649–1657) के समय में मुगल मनसबदारों की तरह ही घोड़ों की चाकरी के बदले में कितने ही राजपूत घुड़सवारों को एवं पैदल सैनिकों को घोड़े रखने के एवज में अनेक जागीरें प्रदान की गई थीं। ये जागीरदार अधिकाशः हाड़ा राजपूत होते थे। इसके अतिरिक्त सिसोदिया, चन्द्रावत, बड़गुर्जर, कछवाहा, राठौड़, सोलंकी, तँवर, पँवार और झाला राजपूत होते थे। गुर्जर, मीणा, अहीर, भील, सहरिया एवं मुसलमानों को भी राज्य में कई गाँव जागीरों के रूप में प्रदान किये हुये थे।[40] मराठा एवं पिंडारियों को भी सैनिक सेवाओं के उपलक्ष में जागीरें प्रदान की गई थीं।

घोड़ों की चाकरी में जागीर में जो गाँव प्रदान किया जाता था उसकी आमदनी में से जागीरदार अपनी निश्चित राशि लेकर शेष राज्य कोष में जमा करवा

देता था। जागीरदार जब निर्धारित घोड़ों की संख्या पूरी बता देता था तभी उसे जागीर की आमदनी प्राप्त करने का अधिकार दिया जाता था। यदि यह निर्धारित घोड़ों की संख्या न रखकर उससे कम रखता तो इतनी आमदनी की भूमि उसकी जागीर में से कम कर दी जाती थी।[41] जो जागीरदार घोड़ों से राज्य की सेवा में जागीर प्राप्त करके राज्य की चाकरी (सेवा में) समय पर उपस्थित नहीं होते थे उनकी जागीर जब्त कर ली जाती थी। उहाहरणाथ र्सन् 1875 ई. में राज्य से इस प्रकार की 11,561 बीघा भूमि जब्त करने के और इन जागीरों के रूपये ऋण भण्डार में पहुँचा कर रसीद लेने के आदेश दिये गए।

- ❖ गोपालपुरा तफा मधुकरगढ़ में हाड़ा हरिसिंह अरजपोता बड़ोद को एक घोड़े की चाकरी में 200 बीघा भूमि प्रदान की गई।
- ❖ हाड़ा प्रेमसिंह को कडोला में एक घोड़े की चाकरी में 150 बीघा भूमि मिली थी।
- ❖ राठौड़ मंगोतसिंह जी को मालूणी गाँव में एक घोड़े की चाकरी में 350 बीघा भूमि पाते थे।
- ❖ सोरसण के हरिसिंह, बाड़सिंह को 4 घोड़ों की चाकरी में 675 बीघा भूमि पाते थे। इन सब जागीरों की भूमि राज्य द्वारा जब्त करने के आदेश भी मिलते थे।

राज्य के हुक्म के बिना इस प्रकार भूमि का हासिल भूस्वामी जागीरदार को देने की मनाही कर दी जाती थी।[42] आप अमरसिंह पलायथा वालों की जागीरों में जो बीस गाँव थे, उन्हें चालीस घोड़ो से राज्य की चाकरी करनी पड़ती थी।[43]

1873 ई. में परगना मांगरोल में मझड़ावत के भाई केशरीसिंह जी को प्रति घोड़े पर 15 बीघा भूमि के हिसाब से एक वर्ष के लिए 160 बीघा की चाकरी के एवज में दी गई थी।[44] राज्य में मराठा, पिंडारी तथा पठान सेनानायकों को भी बड़ी–बड़ी जागीरें सेवा के उपलक्ष में प्रदान की गई थीं। इनमें से कुछ जागीरें वेतन के एवज में तथा कुछ जीवन पर्यन्त के लिये दी जाती थीं।

सन् 1904–1909 ई. में राज्य द्वारा माफीदार जागीरदारों को घोड़े एवं पैदल सैनिक रखने की मनाही कर दी गई। माफीदारों से इसके बदले प्रति घोड़े के 84 रूपये एवं पैदल सैनिक के 30 रूपये वार्षिक राशि ली जानी प्रारम्भ कर दी गई।[45] ये जागीरें वंश परम्परागत होती थीं। राज्य में निर्धारित राशि जमा नहीं करवाने पर जागीरदार से जागीर ले ली जाती थी। 1923 ई. से 1928 ई में राज्य में सैनिक सेवा के उपलक्ष में दी गई 1039 माफियाँ थी जिनमें कुल 64,799 बीघा भूमि थी।[46]

बख्शाऊ जागीरें

राज्य परिवार के सदस्यों, रिश्तेदारों, कुँवारियों आदि को भी बख्शाऊ जागीरें दी जाती थी। इन जागीरों की पूरी आय ये जागीरदार लेते थे। ये राज्य में प्रतिवर्ष बहुत थोड़ी सी राशि जमा करवाते थे। नये शासक की नियुक्ति पर तथा अन्य अवसरों पर वे महाराव को नजर, भेंट, तनका, नजराना आदि देते थे। उदाहरणार्थ सन् 1827–1837 ई. में अन्ता के काकाजी बिशनसिंह जी की जागीर में 10 गाँव थे जिनकी कुल आय 38,274 रूपये डेढ़ आना थी तथा परगना देलनपुर के 176 गाँवो में से 70 गाँव काका जी मदनसिंह जी के अधीन थे जिनकी कुल आय 1,19,814 रूपये थी। ये दोनों जागीरदार राज्य में किसी प्रकार का कर नहीं देते थे तथा जागीर की पूरी आय पाते थे।[47]

राणाजादूण जी को बारां मे बराणा, बड़ौद में वणरों, सांगोद में जौनपुर, कुंजेड़ में बारां, बारां में मंड़ोला एवं खेड़ली के सभी गाँव जागीर में दिये गये थे।[48] इसके अतिरिक्त कुछ जागीरदार राज्य में कर भी जमा करवाते थे। 1837 ई. में अन्ता में भाई जोरावरसिंह जी को जागीर से कुल 4045 रूपये 3.5 आना आय होती थी व सिंचाई से 175 रूपये 6.5 आने आय होती थी। ये सरकार में (राज में) 100 रूपये 4.5 आना जमा करवाते थे।[49]

1847 ई. में राणा तँवर जी को सावन सुदी 1 संवत् 1921 ई. (1864 ई.) में किशनपुर, पोटूखेड़ी, खानपुर तथा नागर्याखेड़ी ये चार गाँव जागीर में बख्शाऊ दिये जाने का उल्लेख मिलता है।[50]

महाराव द्वारा मेहरबानी करके अपने कृपा पात्र सेवकों, कुँवारियों की धायमाँ, धाभाईयों, पासवानों, खवासों आदि को भी जीवन निर्वाह के लिये भी बख्शाऊ जागीरों में पर्याप्त भूमि दी जाती थी जैसे :–

- ❖ सन् 1714 ई. में बाई किशनकुँवरी व बाई चन्द्रकुँवरी की धाय माँ को क्रमशः 8–8 बीघा भूमि दी गई।[51]
- ❖ धाभाई नाथू को भी सन् 1886 ई. में 200 बीघा भूमि प्रदान की गई तथा यह भूमि कर मुक्त रखी गई।
- ❖ पासवान भूरी को कैथून के मौजा गलाना में 400 बीघा भूमि प्रदान की गई तथा यह भूमि कर मुक्त रखी गई।
- ❖ पासवान नेगी बाला बगस को 400 बीघा भूमि बख्शाऊ में दी गई।
- ❖ खवास कानो बाई को 1869–1870 ई में 400 बीघा भूमि दी गई।
- ❖ कैथून में नाई खेता पासवान को 100 बीघा भूमि दी गई जिस पर सिर्फ प्रति बीघा पर 4 आना बिघोड़ी नाम से कर लगता था।[52]

चाकरी की बख्शाऊ जागीरें

(अ) राज्य की स्थापना से ही पटेल, पटवारी, चौधरी, सांसरी–बलाई, कानूनगो आदि को तनख्वाह के बदले भूमि देने की प्रथा थी लेकिन सन् 1904–1909 ई. में मॉण्टेग्यू बटलर ने पंजाब से आकर द्वितीय बन्दोबस्त लागू किया था। इसके समय से माल विभाग के सभी छोटे बड़े कर्मचारियों को नकद तनख्वाह दी जाने लगी। सन् 1864 ई. व इसके बाद भी पटेल को 50 से 100 बीघा भूमि इनाम में दिये जाने के उदाहरण मिलते हैं। यह इनाम में दी गई भूमि उन्हें अपने कार्यकाल तक मिलती थी। इसी में से कुछ भूमि उन्हें पालतू पेट रोटी के नाम से आजीवन के लिये दे दी जाती थी।[53]

(ब) नक्कार खाने में चौपहरा चाकरी करने पर अरण्डखेड़ा के कुशालपुरा में 200 बीघा भूमि नक्कार चाकरी करने वालों को प्रदान की गई एवं उस भूमि पर सभी बराड़ (कर) माफ करके कटता माल चाकरी करने वाले को ही लेने का अधिकार प्रदान किया गया।[54]

(स) इसी प्रकार महाराव या उनके राजकुमार आदि बचपन में चाकरी करने वालों को भी पालतू पेट रोटी की जागीर प्रदान की जाती थी जैसे गुर्जर सांवता की बहू को 200 बीघा भूमि महाराव शत्रुशाल (1754–64 ई.) जी द्वारा उनकी बचपन में सेवा करने के उपलक्ष में प्रदान की गई एवं उस भूमि पर उसके बेटे पोतों का अधिकार हमेशा बना रहेगा एवं सभी कर भी माफ कर दिये गये।[55]

(द) राजपरिवार के वंशजों, चिकित्सकों, चारण, भाट आदि को भी जागीरों में भूमि प्रदान की जाती थी।[56]

(य) चारण–भाट आदि को उनके वाक चातुर्य एवं बुद्धि कौशल पर भूमि प्रदान की जाती थी। चारण अक्षयदान एवं कविराज देवोदान को इसी प्रकार की बहुत बड़ी–बड़ी जागीरें प्रदान की गई थी।[57]

(र) ड्योढ़ी की चाकरी करने पर एवं राज्य की अन्य सेवाएँ करने पर भी भूमि प्रदान करने के उदाहरण मिलते है।[58] ''अखाड़े के जेठों आदि को भी भूमि बख्शी जाती थी।''[59]

पुण्यार्थ एवं माफी, डोहोली की जागीरें

ऐसी जागीरों में पुण्यार्थ, दान में दी गई तथा मंदिरों आदि में दान की गई भूमि आती थी। इन जागीरों से किसी प्रकार का कर नहीं लिया जाता था तथा इनकी सम्पूर्ण आय माफीदार मंदिर को मिलती थी।[60] यहाँ के शासकों का राज्य धर्म वैष्णव था। अतः कोटा में वैष्णव मंदिर अधिकता से पाये जाते हैं। इन मंदिरों को राज्य की ओर से निश्चित राशि या भूमि प्रदान की जाती थी जिनसे उनका व्यय चलता था। नाथद्वारा के श्रीनाथ जी के प्रति कोटा महारावों को विशेष श्रद्धा रही। अतः कोटा रियासत के प्रत्येक गाँव के राजस्व में से कुछ राशि श्रीजी दमड़ी के नाम से वसूल की जाती थी। यहाँ के गाँवों की पूरी आमदनी श्रीजी मंदिर के लिये भेज दी जाती थी।[61]

गाँव में जितने भी मंदिर जैसे गोवर्धन नाथ जी का मंदिर, कृष्णाई माता का मंदिर, मथुराधीश जी का मंदिर आदि होते थे, उनके लिये कुछ भूमि या कुछ राशि

नियत कर दी जाती थी। यहाँ तक की काश्तकारों एवं तेलियों से एवं अन्य जाति के लोगों के खातों से थोड़ी–थोड़ी राशि इन मंदिरों के लिये ली जाती थी जो तेल, भोग में प्रयुक्त होती थी।[62]

माफी की भूमि प्रत्येक निजामत में पर्याप्त मात्रा में होती थी और इन जमीनों पर नाममात्र तथा बहुत अल्प मात्रा में कर लगता था वह भी तब जबकि माफी में दी जाने वाली निर्धारित भूमि से अधिक भूमि का क्षेत्र माफी में दे दिया हो उदाहरणतः 1890 ई. में खानपुर निजामत में माफी की कुल 23,546 बीमा 15 बिस्वा भूमि थी जिस पर कुल 2759 रूपये 4 आना 8 पाई कर लगता था। यह प्रति बीघा दर आठ आना से भी कम थी। इस वर्ष लाडपुरा में 18,352 बीघा माफी की भूमि पर 309 रूपये 10 आने 8 पाई कर निर्धारित किया गया था।[63]

माफी की भूमि भी नापकर दी जाती थी। राज्य अधिकारियों द्वारा समय–समय पर इस बात की जाँच की जाती थी कि माफी की भूमि से होने वाली आय का सही उपयोग हो रहा है, माफीदार जिन्दा है अथवा नही। माफी की भूमि के प्रथम बन्दोबस्त 1876 से 1886 ई. एवं द्वितीय बन्दोबस्त सन् 1904 से 1909 ई. के समय सरसरी पैमाइश की गई किन्तु तृतीय बन्दोबस्त सन् 1923 से 1928 ई. के समय माफी की समस्त भूमि की पैमाइश करवाकर उस पर लगने वाले लगान की जाँच की गई।[96] इस अवधि में गिरदावर, कानूनगो और नाजिमों को ये आदेश दिये गये की वे हर वर्ष तथा नाजिम हर चौथे वर्ष माफी की भूमि का निरीक्षण करें और इस बात की जाँच करे की माफीदार जिन्दा है अथवा नही। माफी में दी गई भूमि की आय मंदिर के खर्च में पर्याप्त है या नहीं। अव्यवस्था की स्थिति में गिरदावर, कानूनगो एवं नाजिम माफी की भूमि में व्यवस्था एवं सुधार करते थे।[64]

राज्य में प्रचलित विभिन्न प्रकार की माफियाँ इस प्रकार से थी – गाँवगुरू, कथा कहने वाले पंड़ित, ब्राह्मण आदि को, खेलमराई, टिड्डी दल आदि नाम से दी जाती थी। इन माफियों में थोड़ी–थोड़ी भूमि माफीदारों को प्रदान की जाती थी।

(अ) गाँव के गुरू एवं कथा कहने वाले पंडित व ब्राह्मण जो गाँव में लोगों को पूर्णिमा एवं अन्य अवसरों पर कथा सुनाते थे, गाँव में चातुर्मास में भागवत की कथा, रामायण आदि की कथा सुनाते थे। उन्हें उनके निर्वाह के लिये कुछ

भूमि माफी में दे दी जाती थी। पंडित ब्राह्मण आदि जो यज्ञ हवन, पूजा पाठ आदि करते थे उन्हें भी माफी में भूमि प्रदान की जाती थी।

(ब) खेलमराई (खेड़ भराई) के नाम से बहुत प्राचीन समय से माफी की भूमि प्रदान की जाती थी लेकिन इसके अन्तर्गत कितनी भूमि प्रदान की जाये, यह निश्चित नहीं होता था। राज्य के कई गाँवों में खेलमराई के लिये 15 बीघा भूमि दिये जाने के उल्लेख मिलते हैं। द्वितीय बन्दोबस्त सन् 1904 से 1909 ई. के पश्चात से जहाँ गाँवों में तालाब नहीं थे वहाँ पशुओं के पीने के लिये 18, 24 एवं 36 बीघा तक के वार्षिक लगान वाली भूमी खेलमराई के लिये दी गई। इसमें चड़स या अन्य खर्चे की व्यवस्था गाँव वाले करते थे। इस व्यवस्था से गाँव के पशुओं को पीने के पानी की बहुत सुविधा हो गई।[65]

(स) टिड्डी दल – टिड्डियों को भगाने के लिये दी जाने वाली भूमि राज्य में विशेष प्रकार की माफी थी जिसे पाने वाले नाथ अपने मंत्र के बल से राज्य के किसी भी भाग में टिड्डी का प्रकोप होने पर टिड्डी को भगा देते थे। इसी सेवा के उपलक्ष में उन्हें कुछ भूमि राज्य द्वारा प्रदान की जाती थी। ये नाथ साधु कनफड़िया नाथ कहलाते थे और उनकी पीढ़ी दर पीढ़ी इसी काम से अपना जीवन यापन करती थीं। दवाइयों के छिड़काव एवं वैज्ञानिक साधनों से टिड्डी भगाने के उपाय होने के कारण राज्य में इस प्रकार का कार्य सन् 1922–23 ई. तक नहीं के बराबर ही गया था फिर भी इन माफीदारों को एवं उनकी मृत्यु के बाद उनकी संतान या पत्नी आदि के पास भूमि पूर्ववत बनी रहती थी। इनके वंशज न होने पर इस प्रकार की माफियाँ जब्त कर ली जाती थीं।[66]

उदक जागीरें

राज्य में ब्राह्मण बैरागी आदि को जो भूमि दान में दी जाती थी वह उदककृष्ण पण कहलाती थी। महाराव की शुभ चिन्तगी करने पर, एकादशी, द्वादशी, मृत्यु के समय पाँचवादान, द्वादश आदि पर जो भूमि दान में दी जाती थी, वह कर मुक्त एवं वंश पम्परागत कर दी जाती थी। यह कभी वापस नहीं ली जाती थी। उदक जागीरों के भी पट्टे दिये जाते थे।''[67]

उदारणार्थ

(अ) महाराव रामसिंह की एकादश पर 50 बीघा एवं माँ जी श्री गौड़ जी की एकादश पर 10 बीघा भूमि दीगोद के गाँव देवनगर में पाठक छोटू को उदक पुण्यार्थ में दी गई।

(ब) बारां के गाँव बटावदा में भी गुजराती देवासुर मेवाड़ को 250 बीघा भूमि पुण्यार्थ में एवं 250 बीघा भूमि चाकरी एवं खेलमराई में दी गई। यह महाराव रामसिंह के अन्त समय में उनके उत्तराधिकारी महाराव शत्रुशाल ने संकल्प करके दान दी थी।

(स) कस्बा अरण्डखेड़ा का एक गाँव, गाँवगुरू जेठमल के पुत्र को उदक कृष्णपण में दिया गया था और ये आदेश दिये गये थे कि इस गाँव को भूमि से आठवाँ हिस्सा एवं उदक बराड़ आदि सब माफ रहेंगे।

इस प्रकार से राज्य में विभिन्न प्रकार की जागीरें थी और अधिकांश जागीरें अपने प्रबन्ध के लिये स्वतंत्र थी। राज्य की ओर से उनमें कोई हस्तक्षेप नहीं किया जाता था। कुछ जागीरों से राज्य की निर्धारित राशि प्राप्त होती थी और कुछ कर मुक्त होती थी। 1956 ई. में राजस्थान बनने के बाद पहली बार जागीरों की भूमि में भी बन्दोबस्त किया गया और वहाँ की भूमि पर प्रति बीघा पर खालसा की भूमि के समान ही दरें निर्धारित की गईं। इससे पूर्व जागीरदार विशेष प्रतिष्ठा तथा सुविधाओं का उपभोग करते रहे जागीरों का प्रबन्ध जागीरदारों के कामदार, फोतदार, सरिश्तादार, बिलादार आदि करते थे।

कोटा महाराव के निकट सम्बन्धी किशोरसिंहोत परिवार के मुख्य जागीरदार ठिकाने कोटड़ी, बम्बूलिया, सांगोद, आमली, खेरला, अन्ता व मूण्डली थे। इनसे कुछ कम दर्जे में मोहनसिंहोत घराने के सरदार थे। इन सभी को 'आप' कहा जाता था। इन्हीं घरानों से राजगद्दी के लिए गोद लेने की प्रथा थी।[68]

कोटा राज्य के ताजिमी सरदारों की संख्या 36 थी। जिनमें से कोटा में 8 जागीरें उन हाड़ा राजपूतों की थीं जिन्हें कोटड़ी या कोटरियात कहते थे। ये वे जागीरें थी जो रणथम्भौर के किले से संलग्न थीं। इन्हीं के कारण माधोसिंह के काल में जयपुर व कोटा राज्य के बीच भटवाड़ा नामक स्थान पर युद्ध हुआ था जिसमें कोटा राज्य को विजय प्राप्त हुई थी। ये कोटड़िया थी– इन्द्रगढ़, बलवन, खातौली, गैंता, करवाड़, पीपल्दा, पूसोद, आंतरदा। कोटा के दरीखाने में इन कोटड़ियों के शासकों की विशेष बैठक हुआ करती थी। इनकी बैठक प्रथम, द्वितीय और तृतीय दर्जे की हुआ करती थी।

झाला जालिम सिंह ने कोटा राज्य मे अपनी स्थिति सुदृढ बनाये रखने के लिए झाला राजपूतों को जागीरे दी थीं। जिससे कोटा राज्य में झाला जागीरदारों का एक पृथक वर्ग बन गया था। इनके पास कुल 49 गाँव थे इनकी वार्षिक आय 93,740 रूपये आँकी गई थी। इनके अतिरिक्त 18 वीं शताब्दी के अन्त तक अन्य राजपूतों को भी जागीरें प्रदान की गई थीं। हाड़ा बैरावत, हाड़ा अर्जुनपोता, हाड़ा रावत का, हाड़ा हमीर का के अतिरिक्त सोलंकी, राठौड़, राजावत, सिसोदिया, शक्तावत, गौड़, एवं दक्षिण पण्डितों को भी जागीरें दी गई थीं। सिसोदिया राजपूत जो मेवाड़ से आये थे, झाला जालिमसिंह के सहयोगी थे। राजपूतों के अलावा मुसलमान सामन्त भी थे।[69] एक मुसलमान सामन्त अनवर खाँ की जागीर 52 हजार वार्षिक आय की थी।[70]

कोटा राज्य में मराठों को भी जागीरें दी गई थीं। इन लोगो की जागीर में कुल 71 गाँव थे जिनकी आमदनी एक लाख अट्ठाईस हजार थी। राजपूत जागीरदारों को कमजोर बनाने और अपने अधिकार से मराठे जागीरदारों को शक्तिशाली बनाने में जालिमसिंह अपना हित समझता था। इनके अतिरिक्त इन दक्षिण पण्डितों से राजनीतिक कार्यों में उसको बड़ी सहायता मिलती थी।[71] राजपूत जागीरदारों की भाँति ही इनकी दरबार में प्रतिष्ठा थी। मराठा आधिपत्य के अन्त के पश्चात मराठा जागीरदार की शक्ति धीरे–धीरे कम होती गई। इसके बाद मात्र सारोला का ठिकाना ही महत्व का बना रहा।[72]

कोटा के प्रमुख ठिकानों में आठ कोटड़ियों– इन्द्रगढ़, बलबन, खातौली, गैंता, करवाड़, पीपल्दा, पूसोद, आंतरदा के अतिरिक्त निमोला, कोयला, पलायथा, कुनाड़ी, सारथल, बमूल्या, सांगोद, सारोला, कचनौदा, राजगढ़, घाटी, खेड़ली, श्रीनाल, डाबरी, खेरली, मूंडली, कोटड़ा, हरनौदा, अन्ता इत्यादि मुख्य थे।

कोटा राज्य में जागीरदारों का वर्ग विशेष सुविधाओं से युक्त था। उनके सहयोग पर कोटा महाराव व झाला जालिमसिंह की सत्ता आधारित थी। कालान्तर में झाला जालिमसिंह के निरंकुश एवं तानाशाही व्यवहार से खिन्न होकर कतिपय हाड़ा जागीरदारों ने उसका विरोध किया परन्तु उसमें इन विरोधी सामन्तों को कुचल दिया व उनको शक्तिहीन बना दिया।[73]

(ग) ब्रिटिश व जागीरदार सम्बंध

राजस्थान के शासकों द्वारा सन् 1818 में कम्पनी से सन्धि कर ली गई एवं अपनी सुरक्षा का भार कम्पनी को सौंप दिया। अब उन्हें सामन्तों के सहयोग की आवश्यकता नहीं रही जिसके कारण शासकों की दृष्टि में सामन्तों का महत्व समाप्त हो गया। जिस समय कम्पनी ने राजस्थान के नरेशों के साथ सन्धि की उस समय सामन्तों ने कम्पनी सरकार के समक्ष कोई कठिनाई पैदा नहीं की। उस समय तक कम्पनी सरकार का सामन्तों से कोई सीधा सम्बंध भी नहीं था। परन्तु जैसे–जैसे अंग्रेजों की नरेशों से निकटता बढ़ती गई वैसे–वैसे उन्हें सामन्तों के साथ भी सम्बंध स्थापित करने के अवसर प्राप्त होने लगे। इस प्रकार के सम्बंध उस समय और भी अधिक घनिष्ठ हो जाते थे जब राजा की या तो निःसंतान मृत्यु हो जाती थी या फिर मृत्यु के समय उसका पुत्र अल्पवयस्क होता था।

प्रारम्भ में नरेशों तथा सामन्तों के आपसी मतभेदों के प्रश्न पर कम्पनी तटस्थ रही परन्तु अंग्रेजों की यह कूटनीति अवश्य रही कि सामन्त व नरेशों के मध्य झगड़े चलते रहे ताकि उन दोनों की शक्ति कमजोर हो जाए। अंग्रेज इस बात को भली भाँति समझते थे कि सामन्त निर्बल होने पर या अस्तित्व पर संकट आने पर उनकी शरण में अवश्य आयेंगे। इस प्रकार अंग्रेज इस तथ्य को भी जानते थे कि जब शक्तिशाली सामन्त दुर्बल नरेश को तंग करेंगे तो नरेश सामन्तों के विरूद्व कम्पनी सरकार से सहायता प्राप्त करने हेतु आयेंगे। अतः कम्पनी सरकार ने आरम्भ में

तटस्थता की नीति का पालन करते हुए यह प्रयास किया कि नरेश व सामन्त में कलह चलता रहे ताकि वे कमजोर होकर कम्पनी पर आश्रित हो जाए।

स्पष्ट है कि सन्धि सम्पन्न हो जाने के उपरान्त अंग्रेज न तो किसी राजा को निरकुंश देखना चाहते थे न ही सामन्तों को शक्तिशाली देखना चाहते थे । उनकी मंशा दोनों ही पक्षों की शक्ति को क्षीण करके दोनों को अपना आश्रित बनाकर, राज्यों के आन्तरिक शासन पर अपना नियन्त्रण स्थापित करने की थी।[74]

कोटा के सन्दर्भ में भी अंग्रेजों ने महाराव किशोरसिंह को पूरक सन्धि की शर्तों को स्वीकारने हेतु बाध्य किया क्योंकि उनकी सहानुभूति जालिम सिंह के प्रति थी। जब किशोरसिंह ने हाड़ा जागीरदारों को एकत्र कर झाला जालिम सिंह के विरूद्व मांगरोल का युद्व लड़ा एवं पराजित हुए। तब कम्पनी ने जालिम सिंह के प्रति समर्थन की नीति अपनाते हुए भी कोटा महाराव एंव पराजित हाड़ा सरदारों के प्रति सहानुभूति की भावना रखी। मांगरोल के युद्व से वापिस लौटे हुये सरदारों के साथ पॉलिटिकल एजेण्ट ने जालिम सिंह को दुर्व्यवहार नहीं करने दिया और मांगरोल के युद्व का किसी से बदला नहीं लिया गया। सब सरदारों को शांन्तिपूर्वक अपनी–अपनी जागीरों में जाने दिया।

मांगरोल की पराजय से त्रस्त व क्षुब्ध सरदारों ने क्षमा प्रार्थना हेतु कर्नल टॉड को पत्र लिखे। इन पत्रों मे एक पत्र ठिकाने बम्बूलिया की माँ साहिबा का था। जिसमें लिखा था, ''मेरे पुत्र ने अपने स्वामी का पक्ष ग्रहण करके धर्म का पालन किया है। अब उसका वीरोचित सम्मान किया जाए और पिछली बात के लिए क्षमा किया जाकर उसका ठिकाना उसको वापिस दिया जाए।'' कर्नल टॉड ने इसका उत्तर दिया, '' पत्र का उत्तर और आपके पुत्र साथ–साथ ही आपके पास पहुँच रहे हैं।'' कर्नल टॉड बारां जाते समय एक बार बम्बूलिया में आतिथ्य स्वीकार कर चुका था।[75] इस प्रकार अंग्रेजों ने किसी एक पक्ष का समर्थन करते हुए दूसरे पक्ष के प्रति भी सहानुभूति की नीति अपनाई ताकि किसी का पलड़ा भारी नहीं हो सके।

विभिन्न राज्यों में सामन्तों के प्रति अंग्रेजी दृष्टिकोण उनकी अपनी नीति के सन्दर्भ में विकसित हुआ। यदि किसी राज्य में अंग्रेजी प्रभाव के विस्तार के व्यापक बनने में नरेश बाधाजनक हुए तो सामन्तों को अंग्रेजों के पक्ष में समर्थन देने को कहा

गया। यदि किसी राज्य में नरेश ने न तो अंग्रेजों के लिए बाधा खड़ी की और न ही सहायता दी तो सामन्तों के गुटों को अंग्रेजी प्रभाव का स्वागत करने के पक्ष वातावरण बनाए रखने के लिए प्रश्रय दिया। निष्कर्षतः हम यह कह सकते हैं कि अंग्रेजों की नीति किसी पक्ष विशेष के समर्थन की ना रहकर अपने स्वार्थों पर आधारित रही। इस नीति में समयानुसार उतार–चढ़ाव भी आते रहे।

19 वीं सदी के उत्तरार्ध में ब्रिटिश सरकार की नीति में फिर बदलाव देखने को मिला। जब अंग्रेज धीरे–धीरे सामन्तों के सम्पर्क में आए तो उन्हें सामन्तों के विशेषाधिकारों तथा उनके महत्व के बारे में जानकारी प्राप्त हुई। रियासतों में नियुक्त ब्रिटिश रेजिडेन्ट ने यह प्रयास किया कि सामन्तों को निर्बल बनाने हेतु उनके आर्थिक अधिकारों को सीमित किया जाए।

इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु उन्होंने सामन्तों को खालसा भूमि लौटाने को विवश कर दिया। राजस्व वसूलने एवं भूमि अनुदान के अधिकारों को सीमित कर दिया। इंग्लैण्ड के हेनरी सप्तम की भाँति ब्रिटिश सरकार ने भी राजस्थान के सामन्तों से व्यक्तिगत सैनिक रखने का अधिकार छीन लिया।

सामन्त अब आवश्यकता पड़ने पर अपने स्वामी नरेश को सैनिक सहायता के स्थान पर आर्थिक सहायता देते थे। सामन्तों के विशेषाधिकार को समाप्त कर दिया गया। ब्रिटिश सरकार के इन कार्यों के दूरगामी परिणाम हुए। सामन्तों को अपने सैनिक समाप्त करने के लिए विवश होना पड़ा जिसके कारण उनकी शक्ति एवं प्रभाव में कमी आई।[76]

धीरे–धीरे सामन्तों के न्यायिक अधिकार भी समाप्त कर दिये गये। इससे पूर्व वे ना तो अदालतों मे उपस्थित होते थे और ना ही स्टाम्प टैक्स देते थे। अब उनके विरूद्ध अभियोग सुनने के लिए 'सरदार कोर्टस' की स्थापना की गई। अब सामन्तों से भी उनके सामान पर अन्य व्यापारियों की भाँति चुंगी ली जाने लगी। अब सामन्त किसी अपराधी को अपने गढ़ में शरण नहीं दे सकते थे। राज्य प्रशासन में भी सामन्तों के प्रभाव को समाप्त कर दिया गया। राज्य के उच्च पदों पर पूर्व की भाँति अब उनकी नियुक्ति करना आवश्यक नहीं था। ब्रिटिश सरकार ने राज्यों में निष्ठावान तथा अपने प्रति स्वामीभक्त सेवकों का एक नया वर्ग तैयार कर लिया ताकि सामन्तों

का महत्व समाप्त हो सके। ये सेवक या नया वर्ग न तो राजा की परवाह करते थे ना ही सामन्तों की।

कोटा में भी महाराव शत्रुशाल के समय सन् 1874 में नवाब फैज अली को शासन प्रबन्ध हेतु नियुक्त किया था। नवाब फैज अली पहले जयपुर का राज्यमन्त्री रह चुका था। नवाब फैज अली की प्रतिष्ठा रईसों की सी थी। उसकी ऐसी प्रतिष्ठा देखकर महाराव शत्रुशाल भी अचम्भित रह गये। उन्हें ऐसा महसूस हुआ कि अंग्रेज सरकार ने कोटा राज्य से एक झाला को निकाला परन्तु दूसरा लाकर स्थापित कर दिया। अंग्रेजों ने अपने विश्वासपात्र पं. रामदयाल को कॉन्सिल का सदस्य नियुक्त किया।

कोटा के प्रति अंग्रेजों का व्यवहार सर्वोच्चता के एक अन्य पक्ष को उजागर करने वाला रहा। विकट आर्थिक परिस्थितियों में जबकि राज्य पर 89 लाख ऋण बढ़ चुका था महाराव का उत्तरदायित्व सम्भाला (फैज अली की नियुक्ति की) और व्यवाहारिक रूप से महाराव को ही प्रशासन से असम्बद्ध कर दिया।[77]

शिक्षा के क्षेत्र में अंग्रेजों ने सामन्तों के विशेषाधिकार को कायम रखा। उनके पुत्रों की शिक्षा के लिए अलग से शिक्षण संस्थाओं की स्थापना की गई अंग्रेज के सभ्य बनाओ अभियान के तहत ही अजमेर दरबार में 22 अक्टूबर सन् 1870 को मेयो कॉलेज की स्थापना की घोषणा की। लार्ड मेयो ने इस प्रस्तावित कॉलेज को अभिजात और सामन्ती वर्ग के बच्चों के लिए स्थापित किया। कुलीन वर्गों को उनके महत्वपूर्ण कार्यों के संचालन और उनके व्यक्तित्व को सँवारने के लिए यहाँ की शिक्षा प्रणाली को उपयोगी बताया गया। शासकों और सामन्तों से इस कार्य में आगे आकर सहयोग करने के लिए कहा गया क्योंकि इस कार्य में उनका अपना हित था। कर्नल लोच मनोनीत प्राचार्य मेयो कॉलेज इस कार्य को एक राजनीतिक प्रयोग मानते थे।[78]

कॉलेज का लक्ष्य कुलीन एवं शासक वर्गों को अंग्रेजी तौर तरीकों, सभ्यता व चिन्तन का प्रशंसक बनाना था। वायसराय, ए.जी.जी. और अन्य अंग्रेज अधिकारियों को मेयो कॉलेज के माध्यम से एक ऐसा मंच मिल गया जहाँ से वे प्रचारक की भाँति अपने आप को सामन्ती और कुलीन व्यवस्था के संरक्षक के रूप में प्रस्तुत कर सके। राज्यों की प्रभावशाली भावी पीढियों को विभिन्न अवसरों पर यह बताया जा सके कि

उनके अपने हित अंग्रेजी साम्राज्य के हितों के साथ जुड़े हुए थे।[79] इस सभ्य व्यवस्था की योजना की कार्यन्विति का एक अन्य पहलू राज्यों में विभिन्न अंग्रेज अधिकारियों की नियुक्ति के अवसर ढूँढना भी था।

इसी सभ्य बनाने के मिशन की अवधि में अंग्रेजी साम्राज्य ने एक नई परिपाटी आरम्भ की। अवयस्क शासकों को वयस्क होने पर तुरन्त ही समस्त अधिकार नहीं दिये जाते थे बल्कि कुछ वर्षों तक परिवीक्षाधीन रहकर कार्य करने के लिए कहा जाता था। कोटा के उम्मेदसिंह द्वितीय को इसी प्रकार परिवीक्षाधीन रखा गया था। वे मेयो कॉलेज से पढ़कर निकले थे। कोटा के कई ठिकानों के जागीरदार मेयो कॉलेज के विद्यार्थी रहे थे। आप रणवीर सिंह (कोयला), भैरोसिंह (खेड़ली), भँवर गजेन्द्र सिंह (कुनाड़ी), आपजी गोरधन सिंह (सोजपुर), आपजी अमरसिंह (कोयला), भँवरसिंह (कुनाड़ी), ठाकुर कल्याणसिंह, भँवर जसवन्त सिंह, तेजराजसिंह (गैंता), भँवर दशरथ सिंह, भँवर गोपालसिंह, लक्ष्मणसिंह, गुलाबसिंह, हमीरसिंह (कुनाड़ी), ठाकुर गिरवर सिंह (करवाड़), कँवर दुर्जनशाल (डाबरी), कँवर केशवसिंह (बम्बूलियां), आपजी कल्याण सिंह (कोयला) इत्यादि मेयो कॉलेज के विद्यार्थी रहे हैं।[80]

अंग्रेजों का 'सभ्य बनाओ अभियान' असफल रहा। इसके दूरगामी परिणाम निकले। सामन्त व कुलीन वर्ग के नवयुवकों पर पाश्चात्यकरण का रंग चढ़ गया और वे फिजूलखर्च की ओर अग्रसर हो गये। वे विलासिता में डूबने लगे एवं ऐसे शासक अपने राज्य में अलोकप्रिय होने लगे। अंग्रेजी साम्राज्य के हितों को बढ़ावा देने के लिए शासक का लोकप्रिय होना आवश्यक था। इसलिए अंग्रेजों ने पुनः अपनी नीति में परिवर्तन किया।

अंग्रेजों ने अगले चरण (1890–1917) में अंग्रेजीकरण और आधुनिकीकरण का महत्व कम कर दिया। इसके स्थान पर भारतीय राज्यों में प्रचलित सामाजिक और राजनीतिक ढाँचे को सुरक्षित रखने की योजनाएँ बनने लगीं। कर्जन पहला वायसराय था जो बून्दी गया क्योंकि बून्दी का शासक रूढ़िवादी राज्य का संचालन कर रहा था। यह उसके द्वारा पुरानी परम्पराओं का सम्मान था।[81] अब अंग्रेज नीति नरेशों के अधिकारों, सम्मान और प्रतिष्ठा की पोषक बनने लगी।

जब अंग्रेजों का 'सभ्य बनाओ' अभियान कमजोर पड़ गया और अंग्रेज साम्राज्यवादियों को शासकों की अधिक व सामन्तों की कम आवश्यकता हुई तो जागीरदारों और ठिकानेदारों के प्रति उदार दृष्टिकोण पुनः बदलने लगा और 20 वीं सदी के आरम्भ होने तक उन्हें पुनः बदनाम किया जाने लगा। जागीरदार के स्थान और सम्मान के समझने में केवल अंग्रेजी दृष्टिकोण में ही परिवर्तन नहीं हुआ बल्कि अंग्रेजी नीति ने कुलीय ठिकानेदारों के इस वर्ग की स्थिति में और फलतः सामाजिक प्रतिष्ठा में मौलिक परिवर्तन कर दिया।

राज्य में उत्तराधिकार के निर्णय को सामन्तों के नियन्त्रण से निकालकर और 'चाकरी' को छटून्द में बदलकर अंग्रेजी नीति ने जागीरदारों की सामाजिक प्रतिष्ठा को क्षतिग्रस्त कर दिया। अपनी जागीरी के भीतरी प्रशासन को छोड़कर अन्य क्षेत्रों में उनके लिए काफी सीमित सुविधाएँ और अधिकार रह गये। इस सबका प्रभाव उस सामाजिक संरचना को दुर्बल बना देना हुआ जो कुलीय रक्त की शुद्धता पर आधारित थी। पुरानी सामाजिक व्यवस्था अनुचित लगने लगी और टूटनी आरम्भ हो गई। अंग्रेजों ने जागीरदारों को पाश्चात्य सभ्यता के रंग में रंगकर सामाजिक ढाँचें के भौतिक रूप को ही बदल दिया। जहाँ 19 वीं सदी के मध्य तक जागीरदारों का कृषकों के प्रति दृष्टिकोण उदार रहता था। वहीं जागीरदारों की जीवन पद्धति में यह भौतिक बदलाव उस पैतृक जागीरदारी प्रथा को शोषणयुक्त जागीरदारी प्रथा में परिवर्तन करने में सहायक रहा।

20वीं सदी के आरम्भ में अधिकांश जागीरदार विलासी हो रहे थे साथ ही वे कृषक पर लागतों और विभिन्न प्रकार के करों का बोझ बढ़ा रहे थे। जागीरदारों की पैतृकवादी छवि अब अत्याचारी के रूप में परिवर्तित होने लगी। इसका परिणाम कृषक विद्रोह के रूप में सामने आया। इस काल में अनेक कृषक आन्दोलन का वास्तविक कारण जागीरदारों का शोषण था जो सामाजिक कारणों से कम और आर्थिक कारणों से अधिक प्रभावित था। ये अंग्रेजों की ही नीतियाँ थीं जिन्होंने जागीरदारों को, जो कभी अपनी प्रजा के रक्षक हुआ करते थे, भक्षक बना दिया।

अनेक परिवर्तनों से गुजरती हुई सामन्ती व्यवस्था को ब्रिटिश शासन ने सर्वाधिक आघात अवश्य पहुचाया किन्तु राज्य व समाज के गौरव स्तम्भ के रूप में

इसका अस्तित्व स्वतन्त्रता तक विद्यमान रहा। सामन्तों की जागीरें, हवेलियाँ व राजदरबार में उनके मानसम्मान को अक्षुण्ण रखा गया। इस प्रथा ने राजपूत जाति में शताब्दियों तक एक जुट शक्ति की संरचना की। राजाओं की स्वेच्छाचारिता पर अंकुश[82] लगाने वाले सामन्तगण ही सिद्ध हुए। इस प्रथा ने अनेक विषमताएँ भी सृजित की। जब नरेश वर्ग को ब्रिटिश सरकार का संरक्षण प्राप्त हो गया था तो वह अपनी व्यक्तिगत सुरक्षा व अस्तित्व के लिए सामन्तों के सहयोग पर आश्रित नहीं रहा था। फिर भी नरेशों ने सामन्त व्यवस्था को जड़मूल नष्ट करने का कोई प्रयास नहीं किया। सामन्तों को वे अपने गौरव का प्रतीक ही समझते रहे।

देश की आजादी से पूर्व तक नरेश बदस्तूर अपने पूर्व के ठाठ से ही उपस्थित होते थे। कोटा में वर्तमान में भी दशहरे के दिन गढ़ में कोटा दरबार दरीखाने की बैठक बुलाते है। जिसमें ठिकानेदारों को आमन्त्रित किया जाता है। बैठक के पश्चात महाराजकुमार बग्गी पर सवार हो अपने जागीरदारों के साथ बड़ी धूमधाम से रावण दहन हेतु जाते हैं।

सामन्तों की विभिन्न श्रेणियों ने राजस्थान में सामाजिक असमानता को पोषित करके जीवित रखा। इसके उपरान्त भी सामन्तों की विलासिता ने जहाँ सामाजिक भ्रष्टाचार पनपाया, वहीं सांस्कृतिक उत्कृष्टता को भी गतिशील बनाए रखा। अनेक सामन्त राज्य के ऋण भार में समय पर मुक्त न हो पाते थे। उदाहरणार्थ कोटा राज्य[83] के अनेक सामन्त 19 वीं शताब्दी में राज्य से लिया गया ऋण चुकता न कर पाने के दोषी पाए गये थे। अतः सामन्तों से बकाया वसूली हेतु पर्याप्त श्रम करना पड़ता था। राजनीतिक दृष्टि से इस व्यवस्था को दोषपूर्ण माना जा सकता है परन्तु इससे इनकार नहीं किया जा सकता कि एक युग में राजस्थान के अस्तित्व व स्वरूप के लिए इसका महत्वपूर्ण योगदान रहा।[84] इस संस्था में विकृति ब्रिटिश सत्तावादी नीति के कारण आई जिसके फलस्वरूप नरेशों व सामन्तों में एक प्रकार की दरार पड़ गई। इस स्थिति का लाभ अंग्रेजों द्वारा समय–समय पर उठाया गया।

सन्दर्भ

1. सिंह, कर्णी, दी रिलेशन ऑफ दी हाउस ऑफ बीकानेर विद द सेन्ट्रल पार्वस, पृ. 106
2. ब्राउटन, लेटर्स फ्राम ए मराठा कैम्प , पृ. 91
3. टॉड, कर्नल जेम्स, एनल्स एण्ड एन्टीक्वीटीज ऑफ राजस्थान भाग–3, पृ. 1580–1581
4. शर्मा, डॉ. मथुरा लाल, कोटा राज्य का इतिहास भाग–2, पृ. 544–549
5. शर्मा, डॉ. मथुरा लाल, कोटा राज्य का इतिहास भाग–2, पृ. 516

   यह मुलाकात तारीख 23 नवम्बर सन् 1817 को राँवठे के मुकाम पर हुई थी।
6. डॉ. मोहन सिंह मेहता, हेस्टिंगज एण्ड इण्डियन स्टेटस
7. (अ) एचीसन, द ट्रिटीज इंगेजमेण्ट्स, सनद्स एण्ड सेटलमेण्ट्स, भाग–2 पृ.522

   (ब) शर्मा, डॉ. मथुरा लाल, कोटा राज्य का इतिहास भाग द्वितीय, पृ. 51
8. एचीसन, द ट्रिटीज इंगेजमेण्ट्स, सनद्स एण्ड सेटलमेण्ट्स, भाग–3, पृ. 36
9. जैन, डॉ. एम. एस., आधुनिक राजस्थान का इतिहास, पृ. 69
10. फो. पो., 21 जनवरी 1831, न0–2
11. जैन, डॉ. एम. एस., आधुनिक राजस्थान का इतिहास, पृ. 94
12. जैन, डॉ. एम. एस., आधुनिक राजस्थान का इतिहास, पृ. 96
13. (अ) दफ्तर ठिकाना कोटड़ी,

    (ब) शर्मा, डॉ. मथुरा लाल, कोटा राज्य का इतिहास, भाग प्रथम, पृ. .554
14. ठाकुर लक्ष्मणदान, कोटा राज्य का इतिहास
15. दफ्तर ठिकाना कोटड़ी,
16. (अ) टॉड, कर्नल जेम्स, एनल्स एण्ड एन्टीक्वीटीज ऑफ राजस्थान, जिल्द–2, पृ. 616–617

    (ब) शर्मा, डॉ. मथुरा लाल, कोटा राज्य का इतिहास, भाग 2, पृ. 562
17. (अ) दफ्तर ठिकाना कोटड़ी,
    (ब) टॉड, कर्नल जेम्स, एनल्स एण्ड एन्टी क्वीटीज ऑफ राजस्थान, पर्सनल नेरेटिव
    (स) शर्मा, डॉ. मथुरा लाल, कोटा राज्य का इतिहास, भाग 2, पृ. 563

17 (•) फो.पो. 31 अक्टूबर 1821, न0 –27

18. एचिसन, जिल्द न0–3, पृ. 365 368
19. शर्मा, डॉ. मथुरा लाल, कोटा राज्य का इतिहास, भाग 2, पृ. 629

20. इम्पिरियल ए0जे0, राजपूताना, पृ.–390

21. (अ) टॉड, कर्नल जेम्स, एनल्स एण्ड एन्टीक्वीटीज ऑफ राजस्थान, जिल्द–1, पृ. 170–219
(ब) जैन, डॉ. एम. एस., आधुनिक राजस्थान का इतिहास, पृ. 245

22. (अ) ल्याल, एशियाटिक स्टड़ी, पृ. 246
(ब) जैन, डॉ. एम. एस., आधुनिक राजस्थान का इतिहास, पृ. 249

23. जैन, डॉ. एम. एस., आधुनिक राजस्थान का इतिहास, पृ. 251

24. गिरजा शंकर शर्मा, दी रॉयल ऑफ बिजनेस कम्यूनिटी इन बीकानेर, पृ. 128–163 तथा 304 (अप्रकाशित पी.एच.डी. ,शोध ग्रन्थ, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर)

25. (अ) उपरोक्त, पृ. 90–98
(ब) जैन, डॉ. एम. एस., आधुनिक राजस्थान का इतिहास, पृ. 214

26. जैन, डॉ. एम. एस., आधुनिक राजस्थान का इतिहास, पृ. 252

27. जैन, डॉ. एम. एस., आधुनिक राजस्थान का इतिहास, पृ. 281

28. जैन, डॉ. एम. एस., आधुनिक राजस्थान का इतिहास, पृ. 282

29. शर्मा, डॉ. मथुरा लाल, कोटा राज्य का इतिहास, भाग–1, पृ. 304

30. जी. एन. शर्मा, सोशल लाइफ इन मिडाइवल राजस्थान, पृ. 146

31. (क) शर्मा, डॉ. मथुरा लाल, कोटा राज्य का इतिहास, भाग–1 पृ. 145
(ख) शास्त्री, डॉ. रामप्यारी, झाला जालिमसिंह, पृ. 305,

32. उपरोक्त, पृ. 306

33. शर्मा, डॉ. मथुरा लाल, कोटा राज्य का इतिहास, भाग–1, पृ. 146

34. (क) राजस्थान राज्य अभिलेखागार कोटा, बस्ता नं. 115,1858,1864,1866 ई.
(ख) उपरोक्त,बस्ता नं. 409, 1772, 1894, 1905 ई., 1937, 1615, 1737, 1848 और 1880ई.

35. उपरोक्त, बस्ता नं. 115, 1865–66 ई.

36. उपरोक्त, बस्ता नं. 115, 1865–66 ई.

37. उपरोक्त, बस्ता नं. 276, 1714 ई.

38. उपरोक्त, बस्ता नं. 138, 1905–10 ई.

39. मुंशी खजानसिंह, तृतीय बंदोबस्त रिपोट, पृ. 89

40. शर्मा, डॉ. मथुरा लाल, कोटा राज्य का इतिहास, भाग–1, पृ. 143

41. (क) उपरोक्त, पृ. 146
(ख) राजस्थान राज्य अभिलेखागार कोटा, बस्ता नं. 409, 1714 ई.

42. उपरोक्त, बस्ता नं. 356, 1873 ई.

43. शर्मा, डॉ. मथुरा लाल, कोटा राज्य का इतिहास, भाग–1 पृ. 146

44. राजस्थान राज्य अभिलेखागार कोटा, बस्ता नं. 409, 1837–77 ई.

45. एम. एस. डी. बटलर, द्वितीय बंदोबस्त रिपोर्ट, पृ. 21.

46. उपरोक्त पृ. 88

47. राजस्थान राज्य अभिलेखागार कोटा, बस्ता नं. 356, 1873 ई.

48. उपरोक्त, बस्ता नं. 115, 1864–66 ई.

49. उपरोक्त, बस्ता नं. 409, 1820–37 ई.

50. उपरोक्त, बस्ता नं. 115, 1864–66 ई.

51. उपरोक्त, बस्ता नं. 276, 1714 ई.

52. उपरोक्त, बस्ता नं. 115, 1859–64–66–68 ई.

53. उपरोक्त, बस्ता नं. 115, 1859, 1964, 65, 66, और 1868 ई.

54. उपरोक्त, बस्ता नं. 115, 1858, 1964, 65, 66, और 1868 ई

55. उपरोक्त

56. उपरोक्त, बस्ता नं. 191, 1874 ई.

57. उपरोक्त

58. उपरोक्त, बस्ता नं. 276, 1771 ई.

59. उपरोक्त, बस्ता नं. 191, 1771ई.

60. उपरोक्त, बस्ता नं. 115, 1859–70 ई.

61. उपरोक्त.

62. अग्रवाल, डॉ. सुशीला, कोटा राज्य में भूराजस्व व्यवस्था, पृ. 250 (अप्रकाशित)

63. (क) राजस्थान राज्य अभिलेखागार कोटा, बस्ता नं. 470, 1890 ई.
(ख) उपरोक्त बस्ता नं. 114, 1880 ई.

64. सिंह, मुंशी खजान, तृतीय बंदोबस्त रिपोर्ट, पृ. 87, सरक्यूलर नं. 1, 1922–23 ई.

65. सिंह, मुंशी खजान, तृतीय बंदोबस्त रिपोट, पृ. 88

66. उपरोक्त

67. राजस्थान राज्य अभिलेखागार कोटा, बस्ता नं. 115, 1921–23 ई.

68. (अ) तकसीम सम्वत् 171
(ब) शर्मा, डॉ. मथुरा लाल, कोटा राज्य का इतिहास, भाग–1, पृ. 85

69. डॉ. आर.पी. शास्त्री, झाला जालिम सिंह, पृ. 350–51

70. शर्मा, डॉ. मथुरा लाल, कोटा राज्य का इतिहास, भाग–2, पृ. 549–550

71. कर्नल टॉड, एनल्स एण्ड एन्टीक्वीटीज ऑफ राजस्थान, भाग 2, पृ. 593–603

72. शर्मा, डॉ. मथुरा लाल, कोटा राज्य का इतिहास, भाग 2, पृ. 533

73. टॉड, कर्नल जेम्स, एनल्स एण्ड एन्टीक्वीटीज ऑफ राजस्थान, भाग 2, पृ. 424

74. जैन, डॉ. एम. एस., आधुनिक राजस्थान का इतिहास, पृ. 96

75. टॉड, कर्नल जेम्स, एनल्स एण्ड एन्टीक्वीटीज ऑफ राजस्थान, भाग 2, पृ. 632,107.

76. एडमिनिस्ट्रेटिव रिपोर्टस ऑफ राजपूताना स्टूडेन्ट्स, 1867–1868, पृ. 82

77. (अ) आर.एस.आर. 1873–1874, पृ0 131–132
(ब) जैन, डॉ. एम. एस., आधुनिक राजस्थान का इतिहास, पृ. 168

78. (अ) बही, पृ 166
(ब) जैन, डॉ. एम. एस., आधुनिक राजस्थान का इतिहास, पृ. 165

79. (अ) बही, पृ 179
(ब) जैन, डॉ. एम. एस., आधुनिक राजस्थान का इतिहास, पृ. 165

80. एडमिनिस्ट्रेटिव रिपोर्ट ऑफ राजपूताना स्टूडेन्ट्स , 1867–1868 पृ. 82

81. (अ) स्पीच बाए कर्जन, जिल्द 3, पृ. 44
(ब) जैन, डॉ. एम. एस., आधुनिक राजस्थान का इतिहास, पृ. 173

82. कोटा स्टेट, कोटा फेस ऑफ प्रजेन्टेशन बिफोर द इण्डियन स्टेट कमेटी 1931–1932, पृ. 44

83. कोटा अभिलेखागार बस्ता संख्या 11, विक्रम सं 1869, देवली खाते पानड़ी

84. शर्मा, जी.एन., सोशल लाईफ इन मिडाइवल राजस्थान, पृ. 90

चतुर्थ अध्याय

जागीरदारों की शक्तियाँ, अधिकार एवं कर्तव्य

चतुर्थ अध्याय

जागीरदारों की शक्तियाँ, अधिकार एवं कर्तव्य

उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक सामन्त लोग अपनी जागीरों में लगभग स्वतंत्र शासक की भाँति शासन करते थे। बड़े सामन्तों के अपने दरबार थे, अपने अधिकारी कर्मचारी और सैनिक दस्ते थे। अपनी जागीरों में शान्ति व्यवस्था बनाये रखने एवं आंतरिक उपद्रवों को दबाने की जिम्मेदारी भी उन्हीं की थी। उनके न्यायिक अधिकार भी बड़े–चढ़े थे। व्यापारियों तथा दुकानदारों की सुरक्षा के बदले उन्हें उनसे कई प्रकार के शुल्क वसूल करने के अधिकार भी प्राप्त थे। इस प्रकार सामन्तों को अपने–अपने क्षेत्रों में पर्याप्त अधिकार प्राप्त थे जिसके परिणाम स्वरुप अपनी प्रजा पर उनका मजबूत नियंत्रण कायम था।

(क) जागीरदारों की राजनीतिक शक्तियाँ

राजस्थान के अन्य राज्यों के समान ही कोटा राज्य में भी बड़े बड़े जागीरदारों को अपनी जागीरी क्षेत्र में अनेक राजनीतिक शक्तियाँ प्राप्त थी। ये सामन्त अपने क्षेत्र में सर्वोच्च होते थे। ये अपने क्षेत्र का शासन सुसंगठित सैनिक व्यवस्था द्वारा चलाते थे। उन्हें अपने क्षेत्र में उसी प्रकार के अधिकार एवं शक्तियाँ प्राप्त थी जैसा कि नरेशों को अपने क्षेत्रों में थी। सामन्तों द्वारा अपने क्षेत्र में उसी प्रकार का शासन संगठन किया जाता था जैसा कि राज्य की राजधानी में होता था किन्तु इन सभी की सर्वोच्च शक्ति राज्य में निहित थीं। ये सामन्त अपने आवास के लिए 'रावले' बनाते थे जो गाँव या नगर के एक छोर पर होते थे उसके आस–पास दुर्ग की शैली में दीवार बस्ती को घेर कर बनी होती थी। इनमें विभिन्न द्वारों के नाम रखे होते थे। रावलों का आन्तरिक दृश्य शासक के महलों की तरह मर्दाना ड्योढ़ी, जनाना ड्योढ़ी, सभा ग्रह, घुड़शाला, सैनिक ग्रह में अवस्थित होता था किन्तु छत्रियाँ बनाने के लिए राज्य की स्वीकृति आवश्यक थी। सामन्तों के आवास गृह, रावलों का

जन जीवन उसी प्रकार चहल–पहल पूर्ण होता था जैसा कि एक शासक के महल का जीवन होता था।

समय–समय पर राज्य के राजनीतिक, आर्थिक एंव सामाजिक विषयों पर मंत्रणा करने हेतु शासकों द्वारा सामन्तों को आमन्त्रित किया जाता था। राज्य पर संकट आने के समय राजनीतिक व कूटनीतिक मसलों पर सामन्तों से परामर्श किया जाता था।

शासक की निःसंतान मृत्यु होने पर सामन्तों की मन्त्रणा से ही राज्य का संरक्षक नियुक्त किया जाता था। कोटा के शासक मुकुन्द सिंह के पश्चात उनके पुत्र जगतसिंह शासक बने। राव जगतसिंह की निःसंतान मृत्यु होने पर कोयला ठिकाना के आप प्रेमसिंह को जो कन्हीराम के पुत्र थे, गद्दी पर बिठाया गया। ये शासन करने के योग्य नहीं थे। साथ ही शाही सनद भी इन्हें नहीं मिली थी। अतः कोटा के सामन्तों ने प्रेमसिंह को गद्दी से उतार दिया।[1] कार्तिक शुक्ल द्वितीया वि.सम्वत 1741 के दिन किशोरसिंह का राजतिलक कर दिया गया और प्रेमसिंह को वापस कोयला भेज दिया गया।[2]

इसी प्रकार कोटा महाराव अर्जुनसिंह के कोई संतान नहीं थी। श्यामसिंह, दुर्जनशाल और किशनसिंह उनके सगे भाई थे। इनमें श्यामसिंह बड़े भाई थे। राजपूतों की परम्परा के अनुकूल श्यामसिंह को गद्दी मिलनी चाहिए थी परन्तु दुर्जनशाल गद्दी पर बैठे। ऐसा कहा जाता है कि महाराव अर्जुनसिंह दुर्जनशाल से बहुत प्रेम करते थे और श्यामसिंह को राजप्रबंध के अयोग्य समझते थे। उन्होंने अपने जीवनकाल में ही राज्य के प्रमुख सरदारों के समक्ष यह इच्छा प्रकट की थी कि उनके देहावसान के अनन्तर दुर्जनशाल को गद्दी पर बैठाया जाए। श्यामसिंह ने गद्दी प्राप्त करने हेतु जयपुर के सवाई जयसिंह का आश्रय लिया और कोटा का राज्य दिलवाने की उनसे प्रार्थना की।[3] सभी सरदारों ने दुर्जनशाल को अपना शासक स्वीकार कर लिया था। श्यामसिंह व दुर्जनशाल के मध्य उद्पुरिया का युद्ध हुआ जिसमें श्यामसिंह घायल हुये और रणक्षेत्र में ही उनके प्राण छूट गये।[4] इस प्रकार महाराव अर्जुनसिंह की इच्छानुसार दुर्जनशाल को महाराव बनाने में सरदारों ने अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

महाराव गुमानसिंह के समय झाला जालिमसिंह राज्य का सर्वेसर्वा बन गया था। उसने हाड़ा जागीरदारों की शक्ति को नियंत्रित करने हेतु अनेक कुचक्र रचे। यहाँ तक कि महाराव उम्मेदसिंह प्रथम ने भी उसके संरक्षण में शासन किया। महाराव उम्मेदसिंह प्रथम के समय में ही कोटा राज्य की कम्पनी से सन्धि हुई थी। उसके पश्चात उत्तराधिकार सम्बंधी विषय पर कम्पनी की सहमति को महत्व दिया जाने लगा।

राज्य प्रशासन में भी जागीदारों को उच्च पदों पर नियुक्त किया जाता था। प्रशासन संबधी महत्वपूर्ण विषयों पर इन सरदारों का पूर्ण प्रभाव रहता था व इनकी सलाह को महत्व दिया जाता था। सामन्तों की सेना पर ही नरेश पूर्णरूप से निर्भर था।

प्रथम श्रेणी के सामन्त अपने शासक का 'खास रूक्का' मिलने पर ही राजदरबार में उपस्थित होते थे। राजदरबार में उपस्थित होने पर शासक को उन लोगों का उनकी श्रेणी और पद मर्यादानुसार सम्मान करना पड़ता था और जब वे अपनी जागीरों में वापस लौटते तो शासक को उन्हें 'सिरोपाव' देकर विदा करना पड़ता था। शासक के राज्यभिषेक, राजघराने में विवाह, युवराज के जन्म आदि अवसरों पर शासक से सिरोपाव प्राप्त करना उनका विशेषाधिकार था। अपनी श्रेणी व पद मर्यादानुसार शासक से लवाजमा (जिसमें नक्कारा, निशान, चँवर–चँवरी, सोने–चाँदी की छड़ी इत्यादि होती थी) प्राप्त करना भी उनका विशेषाधिकार होता था।[5]

अपने जागीरी क्षेत्रों में जागीरदारों को कई न्यायिक अधिकार मिले हुए थे। ताजिमी सरदारों को पैर में स्वर्णाभूषण पहनने, उनके उत्तराधिकारियों को शासक से सिरोपाव ग्रहण करने, राज्य के सामान्य न्यायालयों में उपस्थित होने से छूट इत्यादि अधिकार प्राप्त थे। शासक की पूर्वानुमति के पश्चात ही उन पर न्यायिक अभियोजन सम्भव था। सामन्तों को शराब के भट्टे चलाने, न्यायिक शक्तियाँ, पेड़ कटवाना, स्टाम्प व न्यायालय शुल्क मुक्ति इत्यादि अधिकार भी थे। सन् 1818 के पश्चात सामन्तों के राजनीतिक अधिकारों में उतार चढ़ाव आते रहे लेकिन फिर भी प्रशासन में उनका हस्तक्षेप बना रहा।

कोटा से संलग्न आठ कोटरियात के राज्यों को जयपुर, उदयपुर, जोधपुर, बीकानेर आदि राज्यों की कोटडियों से अधिक अधिकार प्राप्त थे। इन्हें न्याय, सेना, पुलिस, वन, आबकारी आदि सभी अधिकार प्राप्त थे। 25 दिसम्बर.1817 को जब कोटा एवं कम्पनी राज्य के मध्य संधि हुई तो इन राज्यों को कोटा से सम्बद्ध करके इनका नाम कोटरी कर दिया। सुविधा की दृष्टि से इनका पत्र व्यवहार कोटा राज्य की मध्यस्थता से होने लगा था। इनके विशेषाधिकारों को पूर्ववत सुरक्षित रखा गया। ये अपना कर सीधे कम्पनी सरकार को देते थे।[6]

सन् 1817 की सन्धि में अंग्रेजों ने इन राज्यों का दर्जा घटाकर प्रिन्सिपेलिटी (कोटडी) कर दिया। राजाओं को कोटड़ी सरदार कहा जाने लगा। इन आठों राज्यों की सीमा एक साथ थी। अतः इस भूभाग को कोटरियात कहा जाने लगा। सन् 1817 ई. के बाद के सभी नक्शों में इस क्षेत्र को कोटरियात के नाम से दिखाया गया है। इतना होने पर भी इन राज्यों के अधिकारों में कोई अंतर नहीं आया। इनके द्वारा दिये जाने वाले कर में भी कोई अंतर नहीं आया। जो राशि पहले मराठों को कर के रूप में देते थे वही राशि कर के रूप में कम्पनी सरकार को जमा होने लगी।

इन कोटडियों के अपने इजलास खास नामक न्यायालय होते थे। अपने मुहर, स्टाम्प, पिटीशन पेपर, दस्तावेजी स्टाम्प होते थे जिन पर राज्य चिन्ह तथा राज्य या रियासत अंकित होते थे उनका अपना झण्डा होता था जिस पर अपना राजचिन्ह अंकित होता था। उनका अपना न्यायालय होता था। उन्हें प्रथम श्रेणी के फौजदारी तथा पाँच हजारी तक के दीवानी दावे सुनने का अधिकार था। उनकी अपनी सेना तथा पुलिस थी। उनके अपने राजस्व, वन, आबकारी, जकात, सहकारी आदि विभाग थे। उन्हें अपने राज्य में शासन व्यवस्था बनाये रखने का अधिकार था। उनके अपने थाने और तहसीलें थीं। राजधानियों में कोतवाली होती थी जो छोटे विवाद तत्काल निपटा देती थी। इन्द्रगढ़ राज्य में नाजिम का पद भी होता था जिसे तीसरे दर्जे का फौजदारी अधिकार था। कोटा और इन राज्यों के प्रशासन में इतना अन्तर था कि कोटा का मुख्य प्रशासनिक अधिकारी दीवान या प्रधानमंत्री कहलाता था और यहाँ का कामदार।

कोटरियात के राजा शुरू से ही अपनी सुविधा के अनुसार मुद्रा चलाने के लिए स्वतन्त्र थे। कोटा, बून्दी, जयपुर, ग्वालियर के बीच स्थित होने के कारण यहाँ कोटा का मदनशाही, बून्दी का कटारशाही, जयपुर का झाड़शाही तथा ग्वालियर की सिन्धियाशाही मुद्रा प्रचलित थी। जहाँ से जो राज्य समीप पड़ता था वहाँ उस राज्य का सिक्का अधिक प्रचलित था। मुद्रा की कमी के दिनों में इन सरदारों ने अपने स्टाम्प छपाकर उस कमी को दूर किया था। एक पैसा, दो पैसा, एक आना के टिकट अधिक प्रचलित थे।[7]

इन कोटरी सरदारों के साथ कोटा नरेश का व्यवहार और शिष्टाचार वैसा ही बना रहा जैसा 1817 की संधि के पूर्व था। उन्हें कोटा दरीखाने में पहला स्थान प्राप्त था। कोटा में विलय के उपलक्ष में प्रत्येक कोटड़ी सरदार को अलग से गाँव दिये गये थे। इन कोटरियों से शिष्टाचार व ताजीम का कोटा नरेश पूरा ध्यान रखते थे।

सन् 1817 के बाद से ही कोटा राज्य इनको अलग राज्य मानता था। महकमा खास में इन राज्यों के राजनीतिक मामले तथा पत्र व्यवहार के लिए अलग विभाग होता था जिसे 'इजलाये गैर या कोटरियात विभाग' कहा जाता था। यह कोटा महकमा खास का विदेश विभाग था। बून्दी, जयपुर आदि राज्यों का पत्र व्यवहार भी इसी 'इजलाये गैर' विभाग से होता था। करवाड़ के रिकार्ड में ऐसे पत्र संग्रहित हैं। कोटा राज्य की जनगणना पैमाइश, मालगुजारी, वार्षिक आय आदि में भी इन राज्यों की गणना अलग होती थी।

(ख) वित्तीय अधिकार एवं कर्तव्य

राजस्थान की सामन्ती व्यवस्था के अन्तर्गत सामन्तों के अपने शासकों के प्रति कुछ कर्तव्य निर्धारित थे जिनका पालन करना सामन्तों के लिए अनिवार्य था। इन्हीं कर्तव्यों में सामन्तों के कुछ वित्तीय कर्तव्य भी सम्मिलित थे। जहाँ एक ओर सामन्तों को अपने वित्तीय कर्तव्य शासक के प्रति निभाना अवश्यंभावी था वहीं उन्हें अपनी जागीरी क्षेत्र में शासकों द्वारा वित्तीय अधिकार भी प्रदान किये गये।

सामन्तों को अपने जागीरी क्षेत्र में अनेक अधिकार प्राप्त थे। सामन्त अपने जागीरी क्षेत्र के कृषकों से उपज का हिस्सा 'माल हासिल' के रूप में वसूला करते

थे। इसमें राज्य का हिस्सा भी सम्मिलित रहता था। राज्य को निर्धारित हिस्सा चुकाने के पश्चात शेष हिस्सा जागीरदार के पास रहता था। कृषकों की उपज में जागीरदारों का हिस्सा राज्य कर्मचारियों द्वारा तय किया जाता था।[8]

इसके अतिरिक्त जागीरदारों को व्यापारियों एवं दुकानदारों की सुरक्षा के बदले में उनसे कई प्रकार के शुल्क वसूल करने का अधिकार भी प्राप्त था। जागीरदारों का अपने क्षेत्र के सेठ साहूकारों एवं व्यापारियों पर बहुत प्रभाव रहता था। ब्रिटिश संरक्षण में राज्य के आने के पश्चात ये व्यापारी ठिकानेदारों के नियंत्रण से मुक्त होने लगे थे।[9] कोटा राज्य में भी प्रमुख जागीरदारों एवं कोटरियात के राज्यों को अनेक वित्तीय अधिकार प्राप्त रहे थे। कोटरियात के जागीरदार अपनी मुद्रा चलाने के लिए स्वतंत्र थे। मुद्रा की कमी के दिनों में इन सरदारों ने अपने स्टाम्प छपवाकर इस कमी को दूर भी करवाया था।[10]

बड़े जागीरदार अपने अधीनस्थ जागीरदारों को जागीरें प्रदान किया करते थे। ये अधीनस्थ जागीरदार अपने सरदार के प्रति पूर्ण निष्ठा से अपने उत्तरदायित्व निभाते थे। कोटा में पलायथा, कोयला, सारथल, कोटरियात इत्यादि के ठिकानेदारों ने अपने अधीनस्थ कई जागीरदारों को जागीरें दी हुई थीं।

जागीरों के नाम से आने वाले सामान पर चुंगी नहीं लगती थी किन्तु अंग्रेजों के आगमन के पश्चात जागीरदारों के अधिकारों पर नियंत्रण स्थापित हो गया एवं उनके अधिकारों में कमी की गई।

राजपूताने के लगभग सभी राज्यों के जागीरदारों को स्वयं अपने तथा अपने पाटवी पुत्र एवं अपनी पुत्रियों के विवाह पर अपने शासक से सिरोपाव और न्योत की रकम प्राप्त करने का अधिकार होता था।[11] साथ ही जागीरदारों को शराब के भट्टे चलाने, स्टाम्प व न्यायालय शुल्क आदि लेने का अधिकार भी प्राप्त था।

जागीरदारों की सेवा एवं सहायता के बदले शासक उनकी जागीर में भी वृद्धि किया करते थे। कोटा में 1857 की क्रान्ति के समय महाराव रामसिंह द्वारा हाड़ौती के सरदारों को इस कठिन परिस्थिति में महाराव एवं राज्य की सहायता करने पर यथोचित रूप से सत्कृत किया गया था। कोयला के आप के काका सरदारसिंह जी

को मांगरोल की निजामत में चेनपुरिया गाँव, कविराजा भवानीदान को सांगोद की निजामत में दीगोद गाँव की जागीर दी गई।[12]

मुगलों की मनसबदारी प्रथा के समान ही कोटा के नरेशों ने जागीरदारी प्रथा को विकसित किया। कोटा राज्य में भी सेवाओं के एवज में जागीरें दी जाती थीं। उस समय नकदी के बजाय जागीरें देने में अधिक सुविधा थी। जागीरदार स्वयं लोगों से कर संग्रह कर लेते थे और अपने गाँव का अन्य प्रबन्ध करने का भार भी उन्हीं पर होता था। कृषकों की उपज में जागीरदारों का कितना हिस्सा होता था यह राज कर्मचारी तय करते थे। इसके पीछे यह कारण था कि राज नियंत्रण के बिना जागीरदार कृषकों की उपज का मनचाहा हिस्सा माल हासिल के रूप में ले लिया करते थे।[13]

तालीक सम्वत् 1718 में राज नियंत्रण की जानकारी हमें मिलती है। जिसमें लिखा है कि प्रतापसिंह गौड़ की जागीर के गाँवों में दो आदमी वहाँ के जागीरदारों के एवं दो आदमी खालसा के रखने एवं जाप्ता करवाने एवं उनके सामने ही उपज का निर्धारित हिस्सा जागीरदार को दिलाने की ताकीद की गई है।

जागीरदारों से लिये जाने वाले कर [14]

घरू जागीरदार – महाराव के रिश्तेदार जैसे भाई, चाचा, आदि की भूमि कर मुक्त होती थी। वे नजर, भेंट, तनका आदि के रूप में राज्य को कुछ राशि अवश्य देते थे। 1875 ई. जागीरदारों के खातों में निम्न करों का उल्लेख मिलता है।

❖ **उदकी** – यह पुण्यार्थ दी हुई जागीरों पर लिया जाता था। यह प्रति बीघा पर 8 आना या 4 आना लिया जाता था। इसे भूमि कर नहीं कहते थे वरन उदकी नाम से कुछ राशि उदक जागीर से ली जाती थी।

❖ **जागीरी** – कुछ जागीर से कुछ राशि कर में ली जाती थी। जागीरें देते समय इस कर का पट्टे में ही उल्लेख कर दिया जाता था।

❖ **टक्की बराड़** – ऋण देने वाले बोहरे एक बड़े कागज में ऋण का ब्याज सहित उल्लेख करते थे और कभी–कभी राज्य में अपने दिये हुये ऋण को

जागीरदारों से भी वसूल करने की उन्हें छूट दे दी जाती थी। टक्की वालों से जो कर लिया जाता था वह टक्की बराड़ कहलाता था। यह प्रथा मालवा, मध्य प्रदेश तथा गुजरात के कुछ क्षेत्रों में प्रचलित थी।

❖ **लखणा** – जागीरदारों को जागीर का हिसाब आदि सब खाते राज्य में तैयार करने पर उनसे लखणा (लिखने के लिए) बहुत थोड़ी सी राशि के रूप में ली जाती थी।

❖ **तिसाला बराड़** – कुछ जागीरदारों से हर तीसरे वर्ष कुछ राशि कर के रूप में ली जाती थी जो तिसाला बराड़ कहलाती थी।

❖ **डोहोली** – जागीरी क्षेत्र के अन्तर्गत पुण्य की भूमि होने पर जिस किसी की खर्च के लिए अथवा मंदिर या अन्य लोगों को पुण्य में दी हुई भूमि के लिए डोहोली नाम से कुछ राशि जागीरों से ली जाती थी। इसके अतिरिक्ति 8 हिस्सा तथा पोण नाम से भी कुछ राशि जागीरों से ली जाती थी। इन करों में प्रत्येक जागीर से अलग–अलग राशि ली जाती थी।

कोटा में राव मुकुन्दसिंह के समय कोटा राज्य में जागीर के गाँवों से राहदारी एवं जकात इत्यादि करों के अतिरिक्त माल हासिल का निर्धारित अंश भी राज्य द्वारा लिया जाता था। उस समय राज्य का अधिकांश भाग जागीरदारों के हाथ में था। अतः शासन खर्च चलाने के लिए उनसे कर लिया जाना अत्यंत आवश्यक था। परगना आटोण में मौजा अरलिया जो कि एक मुसलमान सरदार की जागीर में था, उसके लिए हवालगीर एवं चौधरी के नाम यह आदेश जारी किया गया था कि उपज का निर्धारित हिस्सा जो वसूल किया जाये उसका 10/12 भाग जागीरदार को एवं 2/12 भाग राज्य में जमा करवाया जाये। जागीरदारों से 'मसादती' नामक कर वसूल किया जाता था। सरकारी कागजों से अनुमान होता है कि प्रत्येक परगने से कई हजार रूपये वसूल किये जाते थे। परगना आटोण के जागीरदारों पर इस कर के 1273 रूपये उस वर्ष के अन्त में बाकी थे जिनकी वसूली हेतु आटोण के हवालगीर को यह आदेश दिया गया था। इससे जानकारी मिलती है कि कर की पूरी रकम कई हजार रही होगी। इस कर की वसूली में किसी प्रकार की शिथिलता नहीं दी जाती

थी। जो जागीरदार समय पर इस कर को जमा नहीं करते थे उनसे चार प्रतिशत प्रतिमाह ब्याज लिया जाता था।[15] इस कर की वसूली हवालगीर के द्वारा की जाती थी। 'मसादती' खर्च एक प्रकार का शासन खर्च होता था जो परगने की कचहरी पर खर्च किया जाता था। उस समय पुलिस ज्यूडिशियल, माल, जंगलात, जकात सब परगने के अफसरों से सम्बंधित थे।[16] राज्य की आर्थिक स्थिति खराब होने की स्थिति में जागीरदारों से ''चौथान'' नामक कर वसूल किया जाता था और उसकी वसूली के लिए बड़ी ताकीद की जाती थी।[17]

कोटा राज्य में जागीरदारों से कर नकदी में वसूल किया जाता था जो जागीरदार अनुपस्थित रहता था उससे उन दिनों के रूपये वसूल किये जाते थे। ये जागीरदार पर एक प्रकार का ऋण माना जाता था जो जागीरदारों पर कई वर्षों का इकट्ठा हो जाया करता था।[18]

कोटा राज्य में जागीरदारों पर कोटा नरेश द्वारा बड़ी निगरानी रखी जाती थी। जिन जागीरों के जागीरदारों की शिकायत मिलती थी, उनके गाँव राज्य में मुकाते पर ले लिये जाते थे। इस प्रबंध के अनुसार माल हासिल राज्य द्वारा वसूल करके जागीरदार को दिया जाता था और जागीरदार का अपने गाँव के लोगों के साथ कोई विशेष सम्बंध नहीं रहता था। मुकाता एक प्रकार से जमींदारी थी जिसकी अवधि दो या तीन वर्ष थी।[19]

जागीरदारों को जागीर के बदले राज्य की नौकरी करनी पड़ती थी। किन्हीं जागीरदारों की नौकरी स्थानीय होती थी तो किन्हीं को दरबार के साथ रहना पड़ता था। जागीरदारों की प्रजा पर अत्याचार नहीं होने दिया जाता था। यदि कोई जागीरदार अत्याचार करता तो प्रजा उसके विरूद्ध कोटा नरेश से शिकायत कर सकती थी। एक बार परगना भीलवाड़ी के मौजा कूडँला के जागीरदार की उसकी प्रजा ने शिकायत कर दी तब उसकी जागीर जब्त कर उसके गाँव का माल हासिल भी जब्त कर लिया गया। जागीरदार को उसकी जागीर के बदले 1400 रूपये देना स्वीकार किया गया था।[20] राजस्थान में मराठों के आधिपत्य के पश्चात देशी राज्यों की आर्थिक स्थिति बुरी तरह से प्रभावित हुई थी।

कोटा राज्य को मालगुजारी से जो आमदनी होती थी वो मराठों को चौथ देने, किलों की मरम्मत करवाने एवं सेना को सदैव युद्ध हेतु तैयार रखने हेतु पर्याप्त नहीं थी। अतः जागीरदारों पर नये कर लगाये गये। सम्वत् 1815 में मराठों की माँग को पूरा करने के लिए समस्त जागीरदारों से 'चौथान'' नामक कर वसूल किया गया।[21]

इसके अतिरिक्त भी बीघोड़ी व जामदारी नामक कर भी जागीर के गाँवों से वसूल किये जाते थे। बीघोड़ी प्रति बीघा चार आना और जामदारी प्रति घर एक रूपया ली जाती थी। पलायथा, राजगढ़, डाबरी, नागदा और सोरसन के जागीरदारों के गाँवों को कुछ माफी दी गई थी। ये सब जागीरें पलायथा परगने के अन्तर्गत थी। उस समय पलायथा के परगने में 87 गाँव थे जिनमें 74 गाँव उपरोक्त सरदारों एवं 21 गाँव पलायथा के आप रूपसिंह की जागीर में थे।[22]

सम्वत् 1818 में एक ऐसी सूची तैयार करवाई गई जिसमें गत तीन पुश्तों को दी गई माफियों का इन्द्राज था।[23] इस सूची को बनवाने का उद्देश्य भी आर्थिक संकट के समय कुछ आमदनी बढ़ाने का रहा होगा।

मराठों का वकील कोटरियात के राज्यों से भी मामलात वसूल किया करता था। वकील के नीचे प्रत्येक कोटड़ी में एक कामविसदार नियुक्त था। कोटरियात के कामविसदारों को काफी अधिकार प्राप्त थे। ये कामविसदार काफी शक्तिशाली व्यक्ति थे जो वकील की आज्ञा भी नहीं माना करते थे तब मराठा सरदार कामविसदारों को वकील की आज्ञा मानने का आदेश किया करते थे।[24]

सन् 1817 की कोटा राज्य एवं ईस्ट इण्डिया कम्पनी के मध्य संधि के पश्चात कोटडियों द्वारा मराठों को चौथ के रूप में दी जाने वाली राशि खिराज के रूप में कम्पनी सरकार को दी जाने लगी थी। इन्द्रगढ़ आदि बड़ी कोटड़िया अपनी खिराज की राशि सीधे कम्पनी सरकार के पास देवली में जमा करवाती थीं तथा गैंता, करवाड़ आदि हरदावतों की कोटड़िया सहूलियत की दृष्टि से कोटा दरबार के पास जमा करवाती थीं। कोटा राज्य अपनी खिराज के साथ उसे देवली भेज देता था।

1823 में राज राणा जालिमसिंह ने ब्रिटिश सरकार से इनको आधिपत्य प्राप्त कर लिया था अब ये कोटा राज्य के अधीनस्थ थी एवं इनका जयपुर को दिया जाने

वाला हिस्सा कोटा के माध्यम से दिया जाता था। कोटा राज्य में कोटरियात के लिए अलग विभाग था।[25]

कोटरियों के राज्यों से खिराज की राशि प्राप्त की जाती थी। उसका सारा ब्यौरा इसी विभाग के पास रहता था। सन् 1896 में इन कोटरियों द्वारा दिये जाने वाली कर की राशि का विवरण इस प्रकार हेः–

इन्द्रगढ़ द्वारा 1,25637 रूपये का अनुमानित राजस्व वसूला गया जिसमें से 17506 रूपये 12 आना वार्षिक कोटा राज्य को दिया गया इसमें 6969 रूपया जयपुर भेजा गया था। बलबन के 13042 रूपये वार्षिक राजस्व में से कोटा को 1728 रूपये 6 आना दिया गया एवं जिसमें से 1228 रूपये 6 आना जयपुर को भेजा गया था। गैंता का वार्षिक राजस्व 35874 रूपये था जिसमें से 1808 रूपये 4 आना कोटा को दिया जाता था उसमें से 193 रूपये ओर 9 आना जयपुर भेजे जाते थे। करवाड़ की अनुमानित आय 12000 रूपये थी जिसमें से कोटा को 1002 रूपये 14 आना दिये जाते थे एवं उसमें से 331 रूपये 14 आना जयपुर भेजे जाते थे। इसी प्रकार का अनुमानित वार्षिक राजस्व 13000 रूपये था इसमें से कोटा को 3828 रूपये 6 आना प्राप्त होते थे उसमें से 1128 रूपये 6 आना जयपुर भेजे जाते थे। पुसोद की अनुमानित वार्षिक आय 16760 रूपये थी इसमें से कोटा को 1002 रूपये प्राप्त होते थे उसमें से 332 रूपये जयपुर भेजे जाते थे। पीपल्दा की अनुमानित वार्षिक आय 18000 रूपये थी जिसमें से कोटा को 1006 रूपये 16 आना प्राप्त होते थे एवं उसमें से 331 रूपये 12 आना जयपुर भेजे जाते थे।[26]

(ग) जागीरदारों के सैन्य कर्तव्य

सैनिक सेवा, शासकों और जागीरदारों के आपसी सम्बन्धों की मुख्य कड़ी थी। सामन्तों का सबसे महत्वपूर्ण कर्तव्य अपने शासकों को सैनिक सेवा प्रदान करना था। राज्य का प्रत्येक सामन्त अपने वंश, जाति, देश तथा स्वामी गौरव के लिए तन, मन और धन से सेवा करने के लिए तत्पर रहता था। सामन्त अपनी सेना सहित व्यक्तिगत सेवा के लिए राज्य के आमन्त्रण पर सदैव तैयार रहते थे। उनके लिए यह कर्तव्य राज्य की ओर से बाध्यता नहीं था अपितु यह सामंतों द्वारा प्रदत्त सेवा के रूप में आत्मिक अनिवार्यता थी।

किन्तु मुगलों, मराठों तथा अंग्रेजों के लगातार संरक्षण ने इस अनिवार्यता को क्रमशः बाध्यता एवं चाकरी में बदल दिया था। सामन्तों द्वारा राज्यों को दी जाने वाली सैनिक सेना को मोटे तौर पर दो भागों में बाँटा जा सकता है 1. युद्धकालीन सेवा 2. शान्तिकालीन सेवा। युद्ध के समय सामन्तों को अपने दल–बल सहित शासक की सहायता को जाना पड़ता था[27] और शान्तिकाल में राज्य के सामन्तों को अपनी जागीरों की आय के अनुसार पैदल सैनिक तथा सवार देने पड़ते थे।[28]

सैनिक सेवा के सम्बन्ध में सभी राज्यों में एक समान नियम नहीं थे। उदाहरणार्थ जोधपुर राज्य में एक हजार रूपये वार्षिक आय पर जागीरदार को एक घुड़सवार, साढ़े सात सौ की आय पर एक शुतरसवार, पाँच सौ की आय पर एक पैदल सैनिक से राज्य की चाकरी करनी पड़ती थी।[29] उदयपुर में प्रत्येक जागीरदार को प्रति एक हजार की आय पर दो सवार और चार पैदल सैनिकों से तीन महिनों के लिए चाकरी करनी पड़ती थी।[30] जयपुर राज्य में पाँच सौ की वार्षिक आय पर एक सवार और एक हजार की आय पर एक सवार और एक पैदल सैनिक के हिसाब से सेवा ली जाती थी।[31]

कोटा के नरेशों ने मुगलों की मनसबदारी प्रथा का अनुसरण किया। इसके अनुकूल ही राव मुकुंदसिंह ने कितने ही राजपूतों को घुडसवारों की चाकरी के लिए जागीर दे रखी थी। प्रत्येक जागीरदार को समय पड़ने पर घोड़ों की नियत संख्या के साथ कोटा की सेवा में सम्मिलित होना पड़ता था। जागीर देते समय इन लोगों के साथ शर्त रखी जाती थी कि कितने और किस प्रकार के घोड़े रखने होंगे। किसी के साथ यह भी शर्त रखी जाती थी कि आवश्यकता पडने पर सिंधु नदी के पार जाना पड़ेगा। सैनिक सेवा के लिए महाराव मुकुंदसिंह ने कई लाख रूपये के राजस्व वाली जागीरें दे रखी थी।[32]

सैनिक सेवा के लिए जागीरें प्रायः राजपूतों का दी जाती थी जिनमें अधिकांश हाड़ा राजपूत ही नहीं अपितु सोलंकी, कछवाहा, राठौड, चन्द्रावत, सिसोदिया, तँवर, पवाँर, बडगुर्जर, झाला आदि राजपूत थे। इनके अतिरिक्त गुर्जर, मीणा, अहीर, भील, सहरिया और मुसलमानों को भी कईं गाँव जागीर में दिये हुये थे।[33] अधिकांश जागीरें सैनिक सेवा के लिए दी जाती थीं। मुकुंदसिंह को और उनके बाद किसी कोटा नरेश

को मुगल सेना के साथ अटक पार (सिंधु नदी के पार) जाने की आवश्यकता नहीं हुई। राव माधोसिंह को लगभग चार वर्ष तक बल्ख और बदक्शाँ में रहना पड़ा था। अतः मुकुंदसिंह को अनुमान था कि अपने पिता की भाँति उनको भी शायद कभी सिंधु पार चाकरी करनी पड़े। उस समय भारतीय सीमा को उलांघना धर्म विरूद्ध माना जाता था। अतः जागीरदारों से सिंधु पार जाने की शर्त कर ली जाती थी।[34] पलायथा, कोटड़ा, कोयला, सांगोद इन चार माधानी ठिकानों के साथ ऐसी शर्त नहीं की जा सकती थी। इनको जागीरें इसलिए दी गई थी कि ये राजकुमार थे और पैतृक राज्य में उनका हिस्सा था। कुछ जागीरदारों के साथ नियत संख्यक पैदल सैनिक रखने की शर्त की जाती थी।कभी कभी जागीरदार के निवेदन करने पर उसको घोड़ों के बजाय पैदल सैनिक रखने की अनुमति मिल जाती थी।[35]

जागीरदारों की हैसियत घोड़ों की संख्या पर निर्भर थी। जागीरदार के पट्टों में इस बात का उल्लेख किया जाता था कि घोड़े तुर्की हों, ताजी हों या अरबी। जागीरदारों के पास अपने पट्टे के अनुसार घोड़े रहते थे या नहीं, इसकी निगरानी परगने के हाकिम करते थे। कोटा के महारावों को भी राज्य के जागीरदारों द्वारा सैनिक सेवाऐं दी गई।

कोटा के प्रथम स्वतंत्र शासक राव माधोसिंह ने अनेक मुगल अभियानों में भाग लिया। वे मुगल साम्राज्य में पाँच हजारी मनसबदार रहे थे। राज्य की रक्षा एवं मुगल साम्राज्य की सेवा हेतु अपने साथ युद्ध में ले जाने के लिए उस समय जागीरदारों की निरन्तर आवश्यकता थी। राज्य का बहुत सा हिस्सा छोटी छोटी जागीरों में बँटा हुआ था।[36]

राव माधोसिंह के पुत्र कोटा के अगले राजा मुकुंदसिंह की यश कीर्ति धरमत के मैदान में फैली। 1658 में शाहजहाँ के पुत्रों में जब उत्तराधिकार युद्ध हुआ तो मुकुंदसिंह शाहजहाँ की आज्ञा पर बड़े पुत्र दारा का पक्ष लेकर औरंगजेब से लड़ने गए। दारा की सेना औरंगजेब के सशस्त्र तोपखाने के आगे न टिक सकी तथा दारा की सेना का प्रधान सेनापति जोधपुर का जसवंत सिंह युद्ध का मैदान छोड़कर भाग गया लेकिन कोटा के राजा मुकुंदसिंह विपरीत परिस्थितियों में भी नहीं भागे और डटे रहे। उनके तीन छोटे भाई और राज्य के प्रमुख जागीरदार मोहनसिंह, जुझारसिंह और

कन्हींराम के साथ युद्धभूमि में लड़ते हुए वीरगति को प्राप्त हुए। मुकुंदसिंह के साथी अन्य छः राजपूत सरदारों ने भी वीरता पूर्वक मृत्यु का आलिंगन किया। इस प्रकार अपने चार भाइयों के साथ रणक्षेत्र में वीर की भाँति प्राणोत्सर्ग कर मुकुंदसिंह ने अनुपम स्वामिभक्ति का परिचय दिया।[37] इनके सबसे छोटे भाई किशोरसिंह अगणित घावों से आहत होकर अचेत अवस्था में लाशों के ढेर में गिर पड़े किन्तु उन्हें बचा लिया गया और उनके वंशजों ने ही आगे कोटा पर राज्य किया। इस प्रकार राज्य के निकट के भाइयों एंव जागीरदारों ने अपनी सेना के साथ रणभूमि में अपने प्राणोत्सर्ग कर राजा की सेवा की।

मुकुंदसिंह के पुत्र जगतसिंह ने भी मुगल शहजादे शुजा के साथ वीरता का अद्भुत प्रदर्शन कर उसे रणक्षेत्र छोड़ जाने पर मजबूर किया।[38] इनके काका एवं सांगोद के जागीरदार किशोरसिंह ने इनका युद्ध के समय अन्य राजपूत सरदारों के साथ वीरतापूर्वक साथ दिया। महाराव जगतसिंह की निःसंतान मृत्यु के पश्चात कोटा महाराव की गद्दी पर किशोरसिंह बैठे। राव किशोरसिंह ने भी मुगल सेना के लिए दक्षिण में अनेक युद्धों में भाग लिया । दक्षिण में इब्राहिम गार्दी की विजय[39] एवं हैदराबाद के घेरे में उन्होंने अद्भुत वीरता का प्रदर्शन किया।[40] राव किशोरसिंह ने मुगलों के लिए मराठों एवं जाटों के साथ हुए युद्धों में बड़ी वीरता का प्रदर्शन किया।[41] जाटों के साथ हुए युद्ध में बूंदी के राव राजा अनिरूद्ध सिंह भी सम्मलित हुए किन्तु युद्ध से भाग निकले।[42] कोटा के गोरधनसिंह का अद्भुत शौर्य प्रदर्शित हुआ।[43] राव किशोर सिंह के इस युद्ध में 27 घाव लगे। इस युद्ध में घाटी के रावत तेजसिंह, राजगढ़ के आप गोरधनसिंह, गैंता के कुँवर घासीराम, पानाहेडा के ठाकुर सुजानसिंह, तारज के ठाकुर राजसिंह तथा कोटा के कई अन्य जागीरदारों ने भी वीरगति प्राप्त की।[44]

राव किशोरसिंह के पश्चात रामसिंह कोटा के शासक बने। उन्होंने भी दक्षिण की अनेक लड़ाइयों में वीरता पूर्वक युद्ध कर मुगल साम्राज्य की सेवा की। इनका तोपखाना बहुत सशक्त था इसलिए राव रामसिंह ''भंडबूज्या'' कहलाने लगे थे।[45]

1707 में औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात उसके उत्तराधिकार युद्ध में इन्होंने शहजादे आजम का पक्ष लिया। जब ये अपने सरदारों के साथ रणभूमि में अप्रतिम

वीरता के साथ युद्ध कर रहे थे तब तोप का एक गोला लगने से उन्होंने वीरगति प्राप्त की। आंतरदा के जागीरदार दुर्जनशाल ने रामसिंह के साथ शाही अभियान में भाग लिया।

कोटा के महाराव भीमसिंह प्रथम अपनी वीरता के लिए प्रसिद्ध रहे हैं। इन्होंने अपनी वीरता से निरंतर युद्ध करते हुए कोटा की सीमा उज्जैन तक बढ़ा ली थी। महाराव भीमसिंह ने मुगलों एवं सैयद बंधु के लिए अनेक युद्धों में वीरता प्रदर्शित की। कोटा के प्रति बूंदी के राजा बुद्धसिंह की आक्रामक नीति के कारण उन्होंने आक्रमण कर दो बार बूंदी को जीता तथा बूंदी के सभी राजकीय निशान कोटा ले आये। महाराव भीमसिंह के समय जब बूंदी के दीवान सालिम सिंह ने कोटा पर चढ़ाई की थी। उस समय भीमसिंह गोकुल में भगवत कीर्तन में मग्न थे। उस समय कोटा की रक्षा का संचालन कोयला के आप अजबसिंह ने किया। इस प्रकार अजबसिंह ने साहस से नगर की रक्षा का प्रबंध किया। तत्पश्चात भीमसिंह कोटा लौट आए और सालिमसिंह को परास्त किया। महाराव भीमसिंह के विजयी अभियानों में उनके जागीरदारों ने अपनें सवारों के साथ उनकी सेना में सम्मिलित होकर महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।[46]

महाराव भीमसिंह के पश्चात अर्जुनसिंह एवं दुर्जनशाल का समय आते–आते कोटा राज्य की सेना का मुगलों के लिए युद्ध करने का प्रकरण समाप्त हो गया था तथा रियासत की सेना मुगल राजनीति के युद्धों से दूर हो चली थी। इसके पश्चात कोटा के राजपूताने में ही युद्ध होते रहे।

महाराव दुर्जनशाल के समय कोटा के प्रमुख सरदार झाला हिम्मतसिंह, आप रूपसिंह, भट्ट बेणीराम, भट्ट गोविन्द राम, कुँवर पृथ्वीसिंह, आप अजबसिंह कोयला, आप भोपतसिंह थे जिन्होंने महाराव की सेवा करने में अपने प्राणों की भी चिन्ता नहीं की। आप रूपसिंह पलायथा के जागीरदार थे। विक्रम सम्वत् 1801 में वे बूंदी के साथ हुए युद्ध में बड़ी वीरता से लड़े और बूंदी पर विजय के पश्चात महाराव दुर्जनशाल ने इनको तारागढ़ की रक्षा के निमित्त अपना किलेदार नियुक्त किया था।[47]

महाराव शत्रुशाल प्रथम के समय कोटा व जयपुर की सेना के मध्य प्रसिद्ध भटवाड़ा का युद्ध हुआ। कोटा की सेना का संचालन तथा नेतृत्व राय अखयराम और

झाला जालिमसिंह के सुपुर्द था। इस युद्ध में कोटा राज्य के समस्त छोटे–बड़े जागीरदारों ने अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। कोटा के सरदारों ने अद्‌भुत वीरता सें युद्ध में भाग लिया और जयपुर को शिकस्त दी। अनेक मीलों तक जयपुर की सेना का पीछा कर जयपुर का अपमान किया तथा बहुत सारी सैन्य सामग्री एवं धन के साथ जयपुर राज्य का पंचरंगा झण्डा भी छीन लिया।[48]

इस युद्ध में कोटा के कई सरदार आप नाथसिंह राजगढ़, अमानसिंह हाड़ा नोताड़ा, चाँदसिंह सिसोदिया, गुलाबसिंह सोलंकी, इन्द्रसिंह मोतीकुँआ, शेरसिंह राठौड़, फतेहसिंह पूर्विया वीरगति को प्राप्त हुये।

राय अखयराम, झाला जालिमसिंह, धाभाई जसकरण, आप रूपसिंह पलायथा, ठाकुर शिवसिंह उमरी भदौड़ा, राव विजयसिंह उमरी भदौड़ा, ठाकुर बख्तसिंह नरूका सीसवाली, ठाकुर हिम्मतसिंह नरूका मांगरोल, ठाकुर चाँदसिंह रामलौत हाड़ा सारथल, ठाकुर जोधसिंह रामलौत मोखमपुरा, भीमसिंह राजावत नरूका बाड़ोली, मंगलसिंह रैलावण, हरीसिंह सिसोदिया उमरी भदौड़ा, अजीत सिंह राठौड़ अकावद, गुमानसिंह नागदा विजयी होकर कोटा लौटे। इनमें राजगढ़, पलायथा, रैलावण और नागदा के जागीरदार कोटा राजवंश के भाई थे।[49] सन् 1761 के इस युद्ध में विजय के पश्चात ही झाला जालिमसिंह कोटा में सर्वेसर्वा बन गया था।

भटवाड़ा की पराजय के पश्चात भी जयपुर ने कोटरियात के राज्य जो अब कोटा के अधीन थे पर अधिकार जमाने का इरादा नहीं छोडा था। अतः कोटा पर बार–बार आक्रमण किए गए। अतः सन् 1782 में कोटा से एक सेना भेजी गई जिसमें बड़े–बड़े जागीरदार और सरदार रवाना किए गए। इनमें इन्द्रगढ़ के महाराजा सनमान सिंह, खातौली के महाराजा जोरावर सिंह, करवाड़ के सरदार सिंह, गैंता के नाथसिंह, पीपल्दा के भारत सिंह, बलबन के भारतसिंह मुख्य थे। इस सेना ने पूर्ण विजय प्राप्त की।[50]

महाराव उम्मेदसिंह के समय सन् 1804 में गरोठ के युद्ध में होल्कर के विरूद्ध अंग्रेजों के पक्ष में कोयला के आप अमरसिंह एवं पलायथा के आप अमरसिंह ने रणभूमि में वीरता प्रदर्शित करते हुये जो प्राणोत्सर्ग किया उससे होल्कर के आक्रमण

से कर्नल मानसून बच गया।[51] इस कारण अंग्रेज सदैव कोटा के इन दोनों वीरों के परिवारों के प्रति सम्मान प्रदर्शित करते रहे।

सन् 1817 में महाराव उम्मेदसिंह व कम्पनी के मध्य सन्धि हो गई थी। बाद में उस सन्धि में पूरक शर्तें जोड़ते हुए कोटा महाराव को नाममात्र का शासक स्वीकार करते हुए झाला जालिमसिंह एवं उसके वंशजो को विशिष्ट अधिकार एवं शक्तियाँ सौंप दी गईं।

महाराव उम्मेदसिंह प्रथम के पश्चात किशोरसिंह कोटा के महाराव बने। उन्होंने नाममात्र का शासक बनना पसन्द नहीं किया और पूरक सन्धि की शर्तों को मानने से इनकार कर दिया। अंग्रेजों का पूर्ण समर्थन झाला जालिमसिंह के साथ था। अतः किशोरसिंह तथा झाला जालिमसिंह के मध्य युद्ध अवश्यम्भावी था। सन् 1821 में किशोरसिंह व झाला जालिमसिंह के मध्य मांगरोल का युद्ध लड़ा गया। जालिमसिंह के साथ राज्य की सेना तो थी साथ ही नीमच से कम्पनी सरकार की दो पलटनें, नौ रिसालें और एक तोपखाना आया। उसमे लेफ्टिनेण्ट मिलन, लेफ्टिनेण्ट क्लार्क, लेफ्टिनेण्ट कर्नल रिज तथा कर्नल टॉड थे। जालिमसिंह की निजी आठ पलटनें, चौदह रिसालें और तेईस तोपें थी।[52]

उधर किशोरसिंह के पास न तो राज था न ही राजशक्ति। इस समय हाड़ा राजपूतों ने अपूर्व स्वामिभक्ति का परिचय दिया। इस अवसर पर ऐसा कोई हाड़ा जागीरदार, माफीदार या सरदार नहीं था जिसने किशोरसिंह द्वितीय का पक्ष ग्रहण नहीं किया हो। युद्ध आरम्भ हुआ। हाड़ा वीरों ने अपने अप्रतिम साहस का परिचय दिया। कोयला के आप राजसिंह, गैंता के दो कुँवर बलभद्रसिंह तथा सालमसिंह, उनके काका दयानाथ, हरिगढ़ के महाराजा अमरसिंह के साथ बिजली के वेग से आगे बढ़े और अंग्रेजी तोपखाने पर आक्रमण किया। कुँवर बलभद्रसिंह और आप राजसिंह के वारों से लेफ्टिनेण्ट क्लार्क और लेफ्टिनेण्ट रीड दोनों मारे गये। लेफ्टिनेण्ट कर्नज रीज मरता–मरता बचा जिस पर सबको अचम्भा हुआ।[53] मांगरोल के युद्ध में किशोरसिंह को पराजय का सामना करना पड़ा। इस अवसर पर हाड़ा वीरों के अप्रतिम साहस का प्रदर्शन देख कर केप्टन मिलन व कर्नल टॉड भी चकित हो गये। राजगढ़ के आप देवसिंह और बम्बूलिया के महाराज साहिब ने भी वीरता से

शत्रु का सामना किया। इस प्रकार हाड़ा जागीरदारों ने महाराव किशोरसिंह का समर्थन कर अपनी स्वामिभक्ति एवं कर्तव्यनिष्ठा का परिचय दिया।

महाराव रामसिंह द्वितीय के समय जालिमसिंह के पौत्र झाला मदनसिंह कोटा से पृथक कर झालावाड़ राज्य का शासक बनाया गया। महाराव रामसिंह के समय ही 1857 की क्रांति हुई थी। कोटा में भी क्रांति का भयंकर ताण्डव व्याप्त था। विद्रोहियों की सेना ने सारे नगर को घेर लिया था। कोटा महाराव की स्थिति अत्यन्त संकटपूर्ण थी। इस संकट काल में कोटा के हाड़ा एवं अन्य राजपूत सरदारों ने उल्लेखनीय भूमिका निभाई। भैंसरोड़ के रावत अमरसिंह के छोटे भाई मोहब्बत सिंह, गैंता के महाराजा चतुर्भजसिंह, पीपल्दा के ठाकुर अजीतसिंह, कोयला के आप अजीतसिंह तथा उनके काका सरदार सिंह सैनिक टुकड़ी साथ लेकर कोटा राज्य की सेवा एवं सहायतार्थ सम्मिलित हुए।[54] बागियों को हटाने में कविराजा भवानीदान, कोयला के आप के काका सलामत सिंह, उनके लड़के मोतीसिंह, महाराजा शिवदान सिंह, किलेदार कालूसिंह, महाराजा महासिंह, महाराजा माधोसिंह और देवीसिंह कुनाड़ी के राजा इत्यादि ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी।[55]

ये कोटा के सरदार ही थे जिन्होंने इतनी संकटपूर्ण स्थिति में महाराव एवं कोटा राज्य की विद्रोहियों से रक्षा की। कोटा के शासकों एवं उनके सरदारों द्वारा की गई यह अंतिम लड़ाई थी। महाराव रामसिंह के समय में कोटा में ''कोटा कन्टिन्जेण्ट'' का निर्माण किया गया था। कोटा राज्य के ब्रिटिश साम्राज्य के संरक्षण में आने के पश्चात से ही यद्यपि युद्ध की दृष्टि से सेना का इतना महत्व नहीं रह गया था जो पूर्व नरेशों के समय था।

सन् 1818 के पश्चात मांगरोल के युद्ध एवं 1857 के विप्लव के समय जागीरदारों ने पूर्ण स्वामिभक्ति निभाते हुये महाराव के प्रति अपने सैनिक कर्तव्य का पालन किया था। अब परिस्थितियाँ बिल्कुल बदल चुकी थीं। ब्रिटिश सरकार द्वारा कोटा में राज्य के खर्चे पर कम्पनी की सेना रहने लगी थी जिसका नाम ''कोटा कन्टिन्जेण्ट'' रखा गया।[56] इसका खर्च कोटा राज्य से मिलने लगा। सन् 1838 में झाला मदनसिंह 19 परगने लेकर कोटा राज्य से अलग हो गया था तथा झालावाड़ नाम से पृथक राज्य का शासक बना दिया गया। परिस्थितियाँ परिवर्तित हो जाने के

पश्चात भी राज्य में सेना एवं सेना विभाग निरंतर चलता रहा और सेना का स्वरूप भी अधिकांश समय पुराने समय जैसा ही चलता रहा।

महाराव उम्मेदसिंह द्वितीय ने सन् 1889 से 1940 तक कोटा पर राज किया। उन्हें 'आधुनिक कोटा का निर्माता' कहा जाता है। कोटा राज्य की सेना का आधुनिकीकरण उन्हीं के समय हुआ। इन परिवर्तित परिस्थितियों में जागीरदारों की सेना की महती आवश्यकता नहीं रह गई थी किन्तु राज्य के प्रमुख ठिकानों के जागीरदारों ने सैन्य विभाग में अपनी प्रशंसनीय सेवाएँ दीं।

कोटा राज्य को ब्रिटिश सरकार की तरफ से 15000 तक की सेना रखने का अधिकार था[57] लेकिन कभी इतनी बड़ी सेना रखने की आवश्यकता नहीं पड़ी। महाराव उम्मेदसिंह के शासन के अन्तिम वर्षों में राज्य के कुल सैनिकों की संख्या मात्र 5194 थी।

महाराव उम्मेदसिंह के शासन में आने से पहले महाराव शत्रुशाल द्वितीय के समय महाराव से शासन के अधिकार लेकर राज्य प्रशासन के लिए एक कॉन्सिल की स्थापना कर दी थी। इस कॉन्सिल ने हाकिम फौज से राज्य की सेना का काम लेकर पलायथा के आप अमरसिंह को सौंप दिया था। महाराव उम्मेदसिंह जब महाराव बने तो यही आप अमरसिंह कोटा राज्य की सेना के प्रधान थे।[58]

इस समय राज्य की सेना में चार पलटनें थी–

- ❖ गोरधन पलटन
- ❖ जमना पलटन
- ❖ जंगी पलटन
- ❖ किशना पलटन[59]

इस समय राज्य की सेना का वार्षिक बजट 413281 रूपया था।[60]

शासनाधिकार प्राप्ति के पश्चात महाराव उम्मेदसिंह ने राज्य सेना का कार्य स्वयं अपने हाथ में ले लिया। आप अमरसिंह को राज्य की सेना के प्रमुख एवं प्रशासन से सेवानिवृत कर दिया तथा राज्य की सेना का सभी कार्य परम्परागत[61]

हाकिम फौज परिवार को सौंपते हुए मुंशी भैरूलाल को राज्य सेना के समस्त अधिकार सौंप दिये थे।

सन् 1920–21 तक मुंशी भैरूलाल राज्य की सेना के हाकिम फौज एवं कमाण्डर इन चीफ रहे। इनकी सेवानिवृति के साथ ही राज्य में हाकिम फौज का परम्परागत पद समाप्त कर दिया गया। अब पलायथा के कुँवर औंकारसिंह को राज्य की सेना का जनरल ऑफिसर कमाण्डिग बनाया गया तथा आप गोविंदसिंह कोयला को चीफ ऑफ स्टाफ नियुक्त किया गया।[62]

कुँवर औंकारसिंह सेना में अधिक समय नहीं रह सके तथा दीवान बहादुर चौबे रघुनाथ दास के सेवानिवृत होने पर 1923–24 में उन्हें मेम्बर महकमा खास बना दिया गया। उनकी सेवाओं के उपलक्ष में ब्रिटिश सरकार ने उन्हें ऑनरेरी मेजर जनरल का पद देकर सम्मानित किया।

कुँवर औंकारसिंह के पश्चात आप गोविन्दसिंह कोयला को कोटा राज्य की सेना का जनरल ऑफिसर कमाण्डिग नियुक्त किया गया।[63] इनके समय की प्रमुख उपलब्धि सेना के पुनर्गठन का कार्य था। भारत सरकार ने इनकी सेवाओं के बदले इन्हें ''राव बहादुर'' का खिताब दिया।[64] लेकिन आप गोविन्दसिंह भी इस पद पर अधिक समय तक नहीं रह सके तथा 2 अप्रेल 1929 को उनका अल्पायु में निधन हो गया।[65] आप गोविन्दसिंह के निधन के पश्चात अन्ता के ठाकुर पृथ्वीसिंह को कर्नल की रैंक देकर कोटा राज्य की सेना का चीफ जनरल ऑफिसर कमाण्डिग 2 अप्रैल 1929 को बनाया गया।[66] कोटा राज्य की सेना का आधुनिकीकरण करने का श्रेय इन्हें ही जाता है। कर्नल पृथ्वीसिंह ने सन् 1896 से 1903 तक मेयो कॉलेज अजमेर में शिक्षा प्राप्त की। मेयो कॉलेज में इन्हें क्लास वर्क के लिए वायसराय का गोल्ड मेडल प्रदान किया गया।[67] शिक्षा समाप्ति के पश्चात इनका चयन इम्पीरियल केडेट कोर में हो गया जहाँ इन्होंने 1 मई 1903 से 3 वर्ष की ट्रेनिंग ली।[68] तत्पश्चात इन्हें ब्रिटिश आर्मी में किंग कमीशन मिला तथा वे 51वें केमल कोर में गजेटेड सैकण्ड लेफ्टिनेण्ट नियुक्त हुये जो कि इस समय भारतीयों के लिए बड़े गौरव की बात समझी जाती थी।[69] कर्नल पृथ्वीसिंह ने ब्रिटिश आर्मी की ओर से प्रथम विश्वयुद्ध में भाग लिया और इस दौरान वे मेसोपोटामिया तथा जर्मन ईस्ट अफ्रीका गये थे।

ठाकुर पृथ्वीसिंह ने कोटा राज्य की सेना का आधुनिकीकरण करने हेतु इसे पूरी तरह से ब्रिटिश सैन्य पद्धति पर पुनर्गठित किया। आपने कोटा राज्य की इररेग्यूलर फोर्सेस को संगठित करने के साथ ही एक रेजीमेंट का निर्माण किया जिसे ''उम्मेद इन्फेण्ट्री'' का नाम दिया गया। 1937 ई. में मिलिट्री एडवाइजर इन चीफ मेजर जनरल मिल्स ने अपनी निरीक्षण रिपोर्ट में कोटा की सेना की प्रशंसा करते हुये कर्नल साहब द्वारा ली गई विशेष रूचि की सराहना की थी।[70]

महाराव उम्मेदसिंह के शासन के दौरान कर्नल साहब ने जिस ''उम्मेद इन्फेण्ट्री'' का निर्माण किया आगे चलकर द्वितीय महायुद्ध के दौरान उसने अत्यधिक प्रतिष्ठा अर्जित की तथा ब्रिटिश भारत की सेनाओं के कमाण्डर इन चीफ सर ऑचिन लेक तक ने उसकी महती प्रशंसा की थी।[71] स्वतंत्रता के पश्चात कोटा राज्य की सेना ''उम्मेद इन्फेण्ट्री'' को भारतीय सेना की राजपूताना रायफल्स की एक ब्रांच में मिला दिया गया।

इस प्रकार मुगलकाल से लेकर ब्रिटिश काल तक कोटा के जागीरदारों ने राज्य की रक्षा में अपना योगदान देकर कोटा नरेश के प्रति अपनी निष्ठा एंव स्वामिभक्ति प्रदर्शित की। साथ ही राज्य की सेना में भी मुख्य पदों पर रहकर सेना का प्रबंध एवं संचालन कर कोटा राज्य की ख्याति को बढ़ाया।

(घ) राजनीतिक कुचक्रों में जागीरदारों की भूमिका

राजस्थान की सामन्त प्रणाली मर्यादाओं एवं कर्तव्यों के निर्वाह पर आधारित सामाजिक व्यवस्था थी। कर्नल टॉड ने राजस्थान की सामन्त व्यवस्था के सिद्धांतों की व्याख्या करते हुये लिखा है कि ''सामंत व्यवस्था का मूल सिद्धांत यह है कि राजा आश्रय दे तथा सामंत अपने राजा के प्रति निर्धारित कर्तव्यों का पालन करें। इस सिद्धांत के अंतर्गत यह व्यवस्था एक ओर सामंतो को अपने स्वामी को दी जाने वाली सेवाओं के लिए बाध्य करती है तो दूसरी ओर राजा पर अपने सामंतो की सुरक्षा का दायित्व भी आ जाता है। यदि यह सिद्धान्त दोनों पक्षों की ओर से भंग हो जाता है तो एक पक्ष अपनी भूमि खो बैठता है तथा दूसरा पक्ष अपने प्रभुत्व व अधिकार खो बैठता है।''

इतिहास इस बात का साक्षी है कि इन दोनों तत्वों में से जिसने भी स्वार्थ के वशीभूत होकर कार्य किया वहीं आपसी संबंधों में विरोधाभास प्रारम्भ हो गया एवं राज्य की व्यवस्थाओं पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा।

कोटा राज्य की सामन्ती प्रथा का अध्ययन एवं विश्लेषण करने पर स्पष्ट होता है कि किस प्रकार सामंतों के आपसी मतभेदों एवं अपना वर्चस्व को बढ़ाने की होड़ ने राज्य की व्यवस्थाओं को हानि पहुँचाई। विभिन्न कुलों के सामन्तों के मध्य आपसी वैमनस्य एवं वर्चस्व की लड़ाई में अशान्ति एवं दुष्चक्रों को जन्म दिया। वर्चस्व कायम करने की यह प्रतिस्पर्धा कई अवसरों पर सामन्तों व शासकों के मध्य विद्यमान रही। इसका परिणाम यह निकला कि दोनों तत्व एक दूसरे के विरूद्ध राजनीतिक षड़यन्त्र रचने लगे।

कोटा राज्य में हाड़ा वंशी शासकों ने राज किया। कोटा राज्य में केवल हाड़ा जागीरदार ही नहीं थे अपितु सैनिक सेवा के लिए सोलंकी, कछवाहा, राठौड, चून्डावत, सिसोदिया, तँवर, पवाँर, बडगुर्जर, अहीर, भील, मीणा एवं झाला राजपूतों को भी जागीरें दी जाती थीं।[72]

मुगलों के समय कोटा नरेशों ने अपनी महत्वपूर्ण एवं प्रशंसनीय सेवाएँ मुगल नरेशों को दीं। यहाँ तक की कोटा के पाँच नरेशों ने इसी क्रम में सेवा में रणभूमि में वीरगति प्राप्त की। कोटा नरेश की इन अभूतपूर्व उपलब्धियों में उनके जागीरदारों ने हमेशा उनका साथ दिया। समय समय पर कोटा महारावों के प्रति पूर्ण स्वामिभक्ति का परिचय देते रहे।

कोटा राज्य में राजनीतिक षड़यंत्रों का महत्वपूर्ण दौर झाला जालिमसिंह के समय शुरू हुआ। झाला जालिमसिंह कोटा में ना केवल नान्ता ठिकाने का जागीरदार था अपितु कोटा राज्य का फौजदार भी था। धीरे धीरे उसने अपने षडयन्त्रों और कूटनीति के बल पर अपने आप को कोटा का मुख्य प्रशासक एवं सर्वेसर्वा बना लिया।

महाराव भीमसिंह प्रथम के समय झाला जालिमसिंह के पूर्वज माधोसिंह झाला अपने 50 सवार लेकर गुजरात के हलवद ठिकाने से कोटा आया और सेना में नौकरी

कर ली। थोड़े समय में ही अपनी कुलीनता, चतुरता एवं वीरता से उसने महाराव भीमसिंह को मुग्ध कर लिया। अतः कोटा के ज्येष्ठ राजकुमार के साथ उनकी बहिन का विवाह हो गया।[73] इससे माधोसिंह की प्रतिष्ठा बहुत बढ़ गई। थोड़े दिन बाद ही वह फौजदार के पद पर नियुक्त हुआ और उसे नान्ता की जागीर भी मिली। माधोसिंह का पुत्र और फिर उसका पौत्र हिम्मतसिंह झाला फौजदार के पद पर नियुक्त हुआ। हिम्मतसिंह झाला भी अपने समय में काफी समय से शक्तिशाली रहा था एवं एक प्रमुख सरदार कहलाता था। हिम्मतसिंह झाला के छोटे भाई पृथ्वीसिंह के सन् 1739 में एक पुत्र का जन्म हुआ और हिम्मतसिंह ने इसे गोद लिया। इस बालक का नाम झाला जालिमसिंह रखा गया। छोटी सी उम्र में ही जालिमसिंह ने वीरता एवं कुशलता का अद्‌भुत परिचय दिया जिसके कारण वह लगभग 60 वर्षों तक कोटा राज्य का कर्ता–धर्ता बना रहा एवं साथ ही अपने वंशजों के लिए सुरक्षित भविष्य की पृष्ठभूमि तैयार कर गया।

महाराव गुमानसिंह के समय झाला जालिमसिंह कोटा का फौजदार था। वह अपने पराक्रम तथा नीति नेपुण्य का परिचय महाराव शत्रुशाल के समय हुए भटवाड़ा के युद्ध में दे चुका था जिससे समस्त राजस्थान में उसकी ख्याति हो रही थी। कितने ही सरदारों ने अपने बलिदान एवं साहस से भटवाड़ा के युद्ध में विजय हेतु अपना योगदान दिया किन्तु विजय का सम्पूर्ण श्रेय झाला जालिमसिंह को दिया गया।

मुगलों के पतन के पश्चात राजस्थान में मराठों का हस्तक्षेप बढ़ता जा रहा था। राजस्थान के सभी राज्य मराठों की घुसपैठ एवं लूटमार से परेशान एवं व्यथित थे। कोटा में भी मराठा सरदारों का वकील रहा करता था जिसे कोटा नरेश ने जागीर दे रखी थी। मराठे जागीरदार राज्य की कोई चाकरी नहीं करते थे।[74] मराठे अत्यन्त शक्तिशाली बन चुके थे।

महाराव गुमानसिंह जब गद्‌दी पर बैठे तो उनका जालिमसिंह से वैमनस्य हो गया और महाराव ने क्रुद्ध होकर उसे राज्य से निकाल दिया। कोटा से नौकरी छोड़ झाला जालिमसिंह ने महाराणा उदयपुर के यहाँ नौकरी कर ली।[75]

झाला जालिमसिंह को कोटा से निकालने के पीछे अलग–अलग कारण बताये गये हैं। ठाकुर लक्ष्मण दान बताते हैं कि झाला जालिमसिंह की बहिन का विवाह

महाराव गुमानसिंह के साथ हुआ था अतः वह फौजदार ही नहीं अपितु राज परिवार का निकट सम्बंधी भी था। वह राज्य में सर्वेसर्वा बनता जा रहा था। यह देख कर हाड़ा जागीरदार भविष्य के लिए बहुत चिन्तित रहते थे। झाला जालिमसिंह इन जागीरदारों की शक्ति को क्षीण करने का कोई अवसर नहीं चूकता था। झाला ने कई जागीरदारों की जागीरें कम कर दी, कितनों की ही नौकरी बढ़ा दी थी और कितने ही जागीरदारों की ताजिमों में हेर–फेर कर दिया था। यहाँ तक की लालाहेड़ा के सोलंकी जागीरदार तथा तारज के हाड़ा जागीरदारों को निकाल कर उनकी जागीरें खालसा कर ली थी। अतः जागीरदारों ने संगठित होकर महाराव से झाला जालिमसिंह की शिकायत की। साथ ही जालिमसिंह द्वारा महाराव की आज्ञाओं का यथोचित पालन न करना भी इसका एक कारण रहा। अतः महाराव ने जालिमसिंह को फौजदार के पद से हटा कर राज्य से विदा कर दिया।

झाला जालिमसिंह के बाद ठाकुर भोपतसिंह झांकरोत को फौजदार नियुक्त किया गया जो बांसीहेड़ा के जागीरदार और गुमानसिंह के मामा थे। वे थोड़े ही दिन इस पद पर कार्य कर सके। अब भूतपूर्व महाराव अजीतसिंह के छोटे भाई बख्तसिंह के पुत्र स्वरूपसिंह को यह पद दिया। ये इटावा के जागीरदार थे। ये भी उस समय की विषम परिस्थितियों को नहीं सम्भाल सके एवं महाराव गुमानसिंह पुनः झाला जालिमसिंह को बुलाने का विचार करने लगे।[76]

उधर झाला जालिमसिंह उदयपुर में अपना वर्चस्व स्थापित करने में लगा हुआ था किंतु परिस्थितियाँ कमजोर बनी हुई थीं। इसी समय महाराव गुमानसिंह ने मराठों के वकील लालाजी वल्लाल को जालिमसिंह के पास भेजा। जब लालाजी वल्लाल ने महाराव गुमानसिंह की ओर से जालिमसिंह को कोटा वापिस लौटने को कहा तो उसने यह प्रस्ताव तत्काल स्वीकार कर लिया।[77]

जब जालिमसिंह वापिस कोटा आया तो कोटा मराठों के आक्रमण के कारण विषम परिस्थितियों से ग्रसित था। महाराव गुमानसिंह ने उसको अपना प्रतिनिधि बनाकर और सुलह की बातचीत के पूरे अधिकार देकर मराठों के पास भेजा। उसने मराठों से संधि की बातचीत कर ली ओर उनकी सेनाओं को कोटा राज्य से लौटने हेतु सहमत कर लिया।[78]

इस प्रकार उसने महाराव का विश्वास पुनः प्राप्त कर लिया। उसको उसकी पैतृक जागीर नान्ता वापस दी गई एवं फौजदार के पद पर नियुक्त किया गया तब भी महाराजा स्वरूपसिंह को अपने पद से नहीं हटाया गया। वे भी झाला जालिमसिंह के साथ राजप्रबन्ध का कार्य करते रहे।[79]

जालिमसिंह के दुबारा फौजदार बनने के कुछ समय बाद महाराव बीमार हो गये और बचने की कोई उम्मीद नहीं रही। उस समय महाराजकुमार उम्मेदसिंह केवल दस वर्ष के थे। राज्य को घोर संकट का सामना करना पड़ रहा था। ऐसी स्थिति में महाराव गुमानसिंह ने अपने राज्य एवं पुत्र की रक्षा का भार जालिमसिंह पर डालना उचित समझा। महाराव ने सब सरदारों को एकत्र कर अपनी इच्छा सुनाकर राज्य एवं अपने पुत्र को झाला जालिमसिंह के संरक्षण में सौंप दिया। इसके बाद माघ शुक्ल प्रतिपदा सन् 1770 को महाराव का निधन हो गया।[80] झाला जालिमसिंह अब न केवल फौजदार अपितु राज एवं राजा दोनों का पूर्णरूपेण संरक्षक बन गया था।

जालिमसिंह जितना साहसी और पराक्रमी था, उतना ही चतुर, कूटनीतिज्ञ और षड़यंत्रकारी भी था। उसने जब शासन सूत्र अपने हाथ में लिया तो मालगुजारी, खजाना, जकात आदि का प्रबंध महाराज स्वरूप सिंह के अधीन था।[81] जालिमसिंह को यह बात सहन नहीं थी। वह सम्पूर्ण शासन शक्ति अपने हाथ में केन्द्रीभूत करना चाहता था। साथ ही महाराज स्वरूपसिंह राज परिवार के नजदीकी भाई एवं शक्तिशाली जागीरदार थे। अतः जालिमसिंह ने उनका अंत करने हेतु एक षड़यंत्र रचा। उसने राजमाता को गुप्तरूप से यह सूचना दी कि महाराजा स्वरूप सिंह स्वयं गद्दी पर बैठना चाहते थे इसलिये महाराव को विष देकर मारा गया है। जबकि वास्तव में जालिमसिंह ने महाराव को उपदंश रोग होने पर राजवैद्य से मिलकर उनके फोड़ों पर जहर की पट्टी बँधवा दी थी। इसी से उनका प्राणान्त हुआ था।[82] राजमाता ने जालिमसिंह की बात का विश्वास कर स्वरूपसिंह को मारने का आदेश दिया तब स्वरूपसिंह के वध के लिए अनेक लालच देकर धाभाई जसकरण को तैयार किया।[83] धाभाई जसकरण ने छल से महाराज स्वरूपसिंह की हत्या कर दी। जब यह खबर जालिमसिंह को मालूम हुई तो उसने प्रत्यक्ष में अत्यन्त शोक प्रकट किया और धाभाई जसकरण को कारावास में डाल दिया।

अब जालिमसिंह ने महाराव उम्मेदसिंह को भड़काया कि जसकरण धाभाई राजद्रोही है। इसने उनके काका स्वरूपसिंह को मारा है और अब उन्हें मारकर गद्दी हथियाना चाहता है।

इस बात पर महाराव उम्मेदसिंह को बड़ा क्रोध आया और वे धाभाई जसकरण का अन्त करने का विचार करने लगे।[84] यह स्थिति देख जालिमसिंह ने जसकरण से कहलवाया कि वह कोटा छोड़ कर भाग जाये क्योंकि महाराव उसका अंत करने का विचार कर रहे हैं। उचित अवसर पर उसे पुनः कोटा बुला लिया जाएगा। धाभाई जसकरण को विवश होकर कोटा छोड़ना पड़ा और जयपुर राज्य में दुख और दरिद्रता के साथ अपना जीवन काटना पड़ा।[85]

इस प्रकार जालिमसिंह ने अपने शक्तिशाली प्रतिद्वन्दी को बड़ी ही चालाकी से मरवा दिया। उसने ऐसी रचना रची थी कि महाराव उम्मेदसिंह समझे कि जसकरण उसके भय से भाग गया। महाराव गुमानसिंह की विधवा पत्नी समझी कि महाराव स्वरूपसिंह को गुमानसिंह का बदला लेने के लिए मरवाया गया है। किसी को यह कहने का साहस न होता था कि स्वरूपसिंह की हत्या और जसकरण का देश निर्वासन जालिमसिंह का कर्म है परन्तु साथ ही किसी को भी इस बात का संदेह नहीं था कि इन दुष्कृत्यों का सूत्रधार जालिमसिंह है।[86]

झाला जालिमसिंह ने नान्ता में अपने लिए एक विशाल महल बनवाया था किन्तु वह वहाँ पर स्वयं को सुरक्षित नहीं मानता था। अतः वह गढ़ के अन्दर हवेली बनवा कर वहाँ रहने लगा।

जालिमसिंह की बढ़ती हुई शक्ति ओर विशेष कर महाराजा स्वरूपसिंह की हत्या के कारण सब हाड़ा सरदार उससे घोर द्वेष करने लगे। अनेक सरदार त्रस्त होकर कोटा राज्य को छोड़कर बूंदी, जयपुर और जोधपुर आदि राज्यों में चले गये। जालिमसिंह ने सम्पूर्ण राज्यों में कहलवा दिया कि जो जागीरदार कोटा छोड़ कर निकल रहे हैं वे राजद्रोही है और विश्वास के योग्य नहीं हैं। जालिमसिंह के कथन पर नरेशों को विश्वास नहीं था परन्तु जालिमसिंह की कुटिल नीति और विपुल शक्ति का सब पर आतंक था इसलिये कोई इस बात का साहस नहीं कर सकता था कि उसके निकाले गये सरदारों को आश्रय दे।[87]

असंतुष्ट हाड़ा सरदारों के नेता आटोण के महाराजा देवसिंह थे। जिनकी जागीर उस समय एक लाख के लगभग थी। महाराजा स्वरूपसिंह देवसिंह के नजदीकी भाई थे। वे जालिमसिंह से बदला लेना चाहते थे। जालिमसिंह यह बात भाँप गया था। अतः देवसिंह कुछ कर पाते इस से पूर्व ही जालिमसिंह ने आटोण के खिलाफ फौज रवाना करने का हुकुम दे दिया। महाराव उम्मेदसिंह राज के भाई के विरूद्ध सेना संचालन के पक्ष में नहीं थे साथ ही वे जालिमसिंह का खुल कर विरोध करने से भी हिचकिचाते थे तथापि उन्होंने साहस करके सेना को हुक्म दिया आटोण पर चढ़ाई न करे।[88] उस समय जालिमसिंह ने उम्मेदसिंह के हुक्म का विरोध नहीं किया परंतु एक वर्ष बाद मराठों के एक अंग्रेज फौजी अफसर मूसाकाल्पी को बुलाया और आटोण के खिलाफ रवाना कर दिया।[89]

देवसिंह ने साहस और वीरता के साथ मुकाबला किया परंतु वे उसके आगे टिक ना सके। मूसाकाल्पी ने शर्त रखी कि देवसिंह अपने परिवार को लेकर निकल जाये और किला जालिमसिंह के सुपुर्द कर दे। विवश होकर देवसिंह ने यह शर्त स्वीकार कर ली और अपनी वंश परम्परागत भूमि को छोड़कर निकल गये।[90] उन्हें आश्रय की तलाश में इधर उधर मारा मारा फिरना पड़ा। अंत में सिंधिया ने उनको अपने राज्य में छोटी सी जागीर देकर रखा। सिंधिया के कहने पर जालिमसिंह ने सात गाँव सहित उनको बम्बूल्या की जागीर दी जिसकी आय दस हजार थी।[91]

जालिमसिंह ने अन्य विद्रोही जागीरदारों की जागीरें कम कर दी। महाराज स्वरूपसिंह के कोई पुत्र नहीं था। उनके दो भाई थे अमरसिंह और दलेलसिंह। दोनों को बुला कर जालिमसिंह ने अमरसिंह को खेड़ली एवं दलेलसिंह को नियाणी का गाँव दिया। अन्य जो जागीरदार वापस आये उनको उनकी पिछली जागीरों के कुछ अंश देकर पुनः बसा लिया। इनमें महाराजा चैनसिंह सोरखण्ड वालों के पोते फतेहसिंह मुख्य थे। इनकी पैतृक जागीर तीस हजार की थी परन्तु अव केवल दो हजार की जागीर दी गई।[92] जालिमसिंह ने मराठों और पिण्डारियों से भी मित्रता बनाये रखी क्योंकि वह उनकी शक्ति एवं ताकत को समझ चुका था।

जालिमसिंह ने एक ओर जहाँ मराठों व पिण्डारियों के प्रति मित्रता की नीति रखी वहीं दूसरी ओर वह अंग्रेजों की ताकत को भी पहचान चुका था। उसे आने वाले

समय में अंग्रेजों के अधिपत्य का एहसास हो चुका था। वह दूरदर्शी था। अपनी इसी दूरदर्शिता के आधार पर मराठों से मित्रता के बावजूद उसने होल्कर के विरूद्ध अंग्रेजों की सहायता की। उसने पलायथा के आप अमरसिंह एवं कोयला के आप अमरसिंह को कर्नल मानसून की सहायता हेतु सेना देकर भेजा। आप अमरसिंह पलायथा व आप अमरसिंह कोयला ने बड़ी वीरता से होल्कर की सेना का मुकाबला किया एवं रणक्षेत्र में अपने प्राणों का बलिदान दिया। यदि ये अपना बलिदान न देते तो संभवतया मानसून और उसकी सेना का विनाश हो जाता एवं अंग्रेजों की घोर अपकीर्ति होती इसलिये अंग्रेजों ने भी इनकी बलिदान की महत्ता को समझते हुए इन्हें महत्व दिया।

कोयला एवं पलायथा के जागीरदारों की कर्नल मानसून की सहायतार्थ भेजने में जालिमसिंह की गहरी चाल थी। वह जानता था कि मानसून की विजय का श्रेय उसे मिलेगा और इन प्रमुख सरदारों के मारे जाने से उसकी शक्ति बढ़ेगी। जब पलायथा के आप अमरसिंह मारे गये तो जालिमसिंह ने उनके ठिकाने को नष्ट करने की सोची। आप अमरसिंह के पुत्र आप अजीतसिंह उस समय नवयुवक थे वे जालिमसिंह की चालों को नहीं समझ सके।

कम्पनी ने जालिमसिंह की सेवा से प्रसन्न होकर के चार परगने डग, पचपहाड़, अहोर और गंगधार जो जालिमसिंह ने होल्कर से किराये पर ले रखे थे जालिमसिंह को बख्श दिए ।[93] इस पर आप अजीतसिंह बहुत नाराज हुए और जालिमसिंह को मारने पर उतारू हो गए। जब जालिमसिंह को इस बात का पता चला तो उसने अजीतसिंह को कोटा बुलाकर कैद कर दिया। जालिमसिंह ने पलायथा पर आक्रमण कर किला व गढ़ को गोलाबारी कर गिरा दिया तथा सब माल लूट कर कोटा मँगवा लिया। जब अजीतसिंह को यह समाचार मिला तो उनको घोर आघात पहुँचा और कैद में ही उनका देहान्त हो गया।[94]

उनकी विधवा माँ के निर्वाह के लिए आँकेड़ी नामक एक गाँव जागीर में दे दिया। उन्हें वृन्दावन में रहकर भजन करने का हुक्म दिया। इससे पहले पलायथा की जागीर बहुत बड़ी थी और उसके पाँच भाई डाबरी, नागदा, कुन्जेड़, बड़वा ओर राजगढ़ अच्छी जागीरें वाले थे।[95] ये जागीरदार भी अजीतसिंह के पक्ष में थे एवं

झाला के विरोधी थे। झाला ने इनकी भी जागीरें छीन ली और सबको राज्य से निर्वासित कर दिया। ये लोग कई वर्षों तक इधर उधर मारे मारे फिरे बाद में महाराव किशोरसिंह ने नाथद्वारा से वापस आने पर इनको बसाया था।[96]

इस प्रकार के कुचक्र रचकर जालिमसिंह ने स्वरूपसिंह, देवसिंह, आप अमरसिंह को रास्ते से हटा दिया। उसकी इन नीतियों से उसके प्रति स्थानीय राजपूत सरदारों का विरोध बढ़ने लगा। झाला जालिमसिंह बढ़ते हुये विरोध का अधिकाधिक दमन करता गया। अपनी सत्ता के बल से उसने हाड़ा सरदारों की शक्ति तो क्षीण कर दी। लेकिन उनके असन्तोष को मिटा नहीं सका। उसने सदैव कोटा नरेश पर अपना पूर्ण प्रभाव स्थापित करने के प्रयास में हाड़ा जागीरदारों को निर्बल बनाने की योजना बनाई। कई सरदारों को उसने निर्वासित कर दिया। कोटड़ियों के सरदारों पर उसका पूर्ण नियंत्रण था। सैकड़ों हाड़ा राजपूत थे जो उसके प्राणों का अंत करना चाहते थे। बड़े सरदार ऐसे राजपूतो के साहस और प्रयास के साथ सहानुभूति रखते थे और गुप्त रूप से उनके सहायक भी थे।

जालिमसिंह के प्राणान्त हेतु जागीरदारों द्वारा अनेक षड़यंत्र रचे गये किन्तु वे असफल रहे। जालिमसिंह हमेशा सतर्क रहा करता था। जालिमसिंह इस प्रकार के भय संकुल जीवन से त्रस्त हो गया था। कभी कभी वह लोहे के पिंजरे में सोया करता था जिसकी चाबी स्वयं अपने पास रखता था।[97]

जालिमसिंह के मन में इतना कपट भरा हुआ था फिर भी सदैव राजपरिवार के सब लोगों के प्रति अगाध राजभक्ति प्रदर्शित किया करता था। उसने स्वयं को स्वामिभक्त सिद्ध करने में कोई कसर नहीं छोड़ी जबकि वास्तविकता इससे कोसों दूर थी। जालिमसिंह ने अंग्रेजों को पिण्डारियों के विरूद्ध अपनी सहायता देकर अंग्रेजों की नजर में काफी प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली थी। उसने मराठों ओर पिण्डारियों के दमन के पश्चात अंग्रेजों की मित्रता प्राप्त कर ली थी। यही कारण रहा कि अंग्रेजों ने झाला जालिमसिंह और उसके वंशजों के प्रति सहानुभूति की भावना रखी।

कम्पनी की उदीयमान शक्ति को सहायता देकर झाला जालिमसिंह ने बहुत बुद्धिमानी का कार्य किया एवं अपने हितों की सिद्धि हेतु आधारशिला रखी। झाला जालिमसिंह की अंग्रेजों से मित्रता के कारण ही कोटा राज्य वह प्रथम राज्य बना

जिसने अंग्रेजों से सन्धि की। कोटा राज्य ने अंग्रेजों से कम्पनी का अधिपत्य स्वीकार कर लिया एवं कम्पनी की अधीनता स्वीकार कर ली। 1817 की कोटा राज्य एवं कम्पनी की सन्धि में बाद में दो पूरक शर्तों को जोड़कर जालिमसिंह एवं उसके उत्तराधिकारियों को राज्य का वास्तविक एवं कोटा महाराव को नाममात्र का शासक बना दिया था। ये पूरक सन्धि कोटा महारावों के साथ एक धोखा थी जिसका खामियाजा कोटा के शासकों को बाद में चुकाना पड़ा।

महाराव उम्मेदसिंह की मृत्यु के पश्चात महाराव किशोरसिंह कोटा राज्य की गद्दी पर बैठे। उम्मेदसिंह जालिमसिंह की संरक्षता में छोटे से बड़े हुये थे। अतः इन्होंने कभी इसका विरोध नहीं किया। महाराव किशोरसिंह की सुषुप्त प्रवृत्तियों पर कुछ लोगों का प्रभाव पड़ा जिससे उनकी महत्वाकांक्षाएँ जाग उठीं।

महाराव किशोरसिंह ने 1817 की सन्धि की पालना हेतु गवर्नर जनरल को पॉलिटिकल एजेण्ट का खरीता भिजवाया। इस संधि के अनुसार स्वर्गीय महाराव के उत्तराधिकारी कोटा राज्य के अनियन्त्रित शासक रहने चाहिए।[98] कम्पनी की सहानुभूति जालिमसिंह के साथ थी अतः कम्पनी ने जालिमसिंह का पक्ष ग्रहण किया।

महाराव ने नाममात्र के शासन को अस्वीकार कर अपने हाड़ा जागीरदारों के सहयोग से जालिमसिंह के विरूद्ध मांगरोल का युद्ध लड़ा। जालिमसिंह कम्पनी एवं राज्य की शक्ति के बल पर विजयी हुआ। महाराव एवं उनके हाड़ा सरदारो का इस युद्ध में प्रदर्शन अद्भुत रहा जिससे अंग्रेज भी चकित रह गये। पराजित सरदारों के साथ अंग्रेज पॉलिटिकल एजेण्ट ने जालिमसिंह को दुर्व्यवहार नहीं करने दिया।[99]

इस प्रकार जालिमसिंह ने अपनी कूटनीति से अंग्रेजों को दी गई समस्त सहायता का श्रेय स्वयं लेकर शक्तिशाली मित्र की सहानुभूति प्राप्त कर कोटा के महाराव को नाममात्र का शासक बनने पर मजबूर कर दिया वहीं अपने उत्तराधिकारियों का भविष्य सुरक्षित कर दिया। जालिमसिंह इतना करने पर भी स्वामिभक्ति का प्रदर्शन करता रहा। बाद में महाराणा उदयपुर की मध्यस्थता से कोटा महाराव व कम्पनी के मध्य समझौता हुआ। जिसमें महाराव ने पूरक शर्तों को स्वीकार कर लिया वहीं कम्पनी ने महाराव के अधिकारों में कुछ वृद्धि कर दी।

महाराव किशोरसिंह के वापस आने के बाद जालिमसिंह अधिक समय तक जीवित नहीं रहा उसने कोटा के फौजदार पद पर अपने पुत्र माधोसिंह को आसीन कर दिया था। सन् 1824 में जालिमसिंह की मृत्यु हो गई थी। जालिमसिंह 18वीं शताब्दी के भारत का एक प्रमुख व्यक्ति था। उसने अपने छल,, बल और कूटनीति के बल पर कोटा राज्य के जागीरदारों की शक्ति क्षीण कर दी। जो भी उसके रास्ते में आया उसने उसे रास्ते से ही हटा दिया। अपने समय में वह कोटा राज्य का सबसे बड़ा जागीरदार एवं प्रशासक बन बैठा। महाराव उम्मेदसिंह के समय जालिमसिंह की जागीर चौसठ हजार की थी और अनवर खाँ की बावन हजार की।[100]

जालिमसिंह ने सैनिक संगठन बड़ी चतुरता के साथ किया था। वह हाड़ा जागीरदारों को और यथा संभव किसी भी राजपूत सरदार को सेनानायक नहीं बनाता था। सेना का संचालन और प्रबंध आदि कार्य प्रायः मुसलमानों या कायस्थों के सुपुर्द किया जाता था। प्रबंध पदों पर अधिकांश पठान नियुक्त थे। प्रधान सेनानायक दलेल खान नामक पठान था।[101] इस प्रकार उसने राजपूत सरदारों विशेषकर हाड़ा जागीरदारों को उपेक्षित किया।

जब जयपुर नरेश महाराजा प्रतापसिंह ने कोटरियात पर अधिकार जमाने हेतु आक्रमण किया तब जालिमसिंह ने सन् 1839 एक बड़ी सेना जिसमें इन्द्रगढ़ के महाराजा सनमानसिंह, खातोली के महाराजा जोरावर सिंह, करवाड़ के समरथ सिंह, गैंता के नाथसिंह, पीपल्दा के भारतसिंह एवं बलवन के भारतसिंह अपने अपने दस्ते के साथ थे। इस फौज के नायक पण्डित नहनाजी और भाणेज जगतसिंह थे। यहाँ विचार करने लायक बात है कि इन्द्रगढ़ जैसे बड़े सरदार फौज के साथ होने के बाद भी नायकत्व पण्डित नहनाजी एवं भाणेज जगतसिंह को दिया गया।[102] इस प्रकार जालिमसिंह ने अपने षड़यन्त्रों से कोटा राज्य के जागीरदारों को अपने नियंत्रण में रखा। कालान्तर में झाला जालिमसिंह के निरंकुश एवं तानाशाही व्यवहार से खिन्न होकर कतिपय हाड़ा जागीरदारों ने उसका विरोध किया था परन्तु उसने इन विरोधी सामन्तों को कुचल दिया व शक्तिहीन बना दिया।[103]

झाला जालिमसिंह अपने इन कुचक्रों के बल पर ही कोटा में 60 वर्ष तक शासन कर सका एवं सर्वेसर्वा बना रहा।

संदर्भ

1. मीसण, सूर्यमल्ल, वंश भास्कर, तृतीय भाग, पृ. 2779
2. (अ) ठाकुर लक्ष्मणदान, कोटा राज्य का इतिहास
   (ब) शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास भाग 1, पृ. 197
3. ठाकुर लक्ष्मणदान, कोटा राज्य का इतिहास
4. (अ) मीसण, सूर्यमल्ल, वंश भास्कर, चतुर्थ भाग, पृ. 3094
   (ब) जेम्स, टॉड, कर्नल, राजस्थान, जिल्द 2, पृ 559
5. शर्मा, डॉ. कालूराम, उन्नीसवीं सदी के राजस्थान का सामाजिक एवं आर्थिक जीवन, पृ. 92
6. हाडा, शिवदान सिंह, कोटरियात का संक्षिप्त इतिहास, पृ. 1
7. हाडा, शिवदान सिंह, कोटरियात का संक्षिप्त इतिहास, पृ. 9–12
8. शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास, भाग 1 पृ. 146
9. जैन, डॉ. एम. एस., आधुनिक राजस्थान का इतिहास, पृ. 251
10. हाडा, शिवदान सिंह, कोटरियात का संक्षिप्त इतिहास, पृ. 12
11. व्यास, आर.पी., आधुनिक राजस्थान का वृहत इतिहास, पृ. 319
12. शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास, भाग 1 पृ. 146
13. (अ) शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास, भाग 1 पृ. 146
    (ब) तालीक सम्वत् 1718
14. राजस्थान राज्य अभिलेखागार, कोटा ईस्वी 1875 ,बस्ता संख्या 508
15. (अ) कागजात सम्वत् 1707
    (ब) शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास, – भाग 1 ,पृ. 147–48
16. शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास, – भाग 1 पृ. 147
17. (अ) कागजात सम्वत् 1716, 1722, सीगा मुत्तफर्रिकात
    (ब) शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास,– भाग 1 पृ. 189
18. (अ) कागजात सम्वत् 1730
    (ब) शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास, – भाग 1, पृ. 190
19. शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास, भाग 1 ,पृ. 218
20. (अ) कागजात सम्वत् 1770
    (ब) शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास, भाग 1 पृ. 304

21. (अ) कागजात सम्वत् 1815, बस्ता न.–57
(ब) शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास, भाग 1, पृ. 452–53

22. शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास भाग 2, पृ. 454

ये गाँव निम्न थे – पलायथा, अमलसरा, घामखेड़ा, नयागाँव, जागणहेडी, बड़गाँव, बालदड़ा, रूग्गी, मकड़ावद, लदवाड़ा, आमली, फागूण्या, आकेड़ी, ककरावदा, टीमली, तीखोद, धाकड़खेड़ी, रामपुरा, हणूत्या और दो माजर।

23. (अ) कागजात सम्वत् 1818
(ब) शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास, भाग 2 पृ. 454

24. (अ) फालके जिल्द 2, लेखांक 55, 102
(ब) शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास, भाग 2 पृ. 530

25. हाड़ा, शिवदान सिंह, कोटरियात का संक्षिप्त इतिहास, पृ. 9

26. एडमिनिस्ट्रेटिव रिपोर्ट ऑफ कोटा, सन् 1896

27. राजस्थान राज्य अभि ;जो.रि. अर्जी फाइल न. 1/5, वि.स. 1858

28. शर्मा, डॉ. गोपीनाथ, राजपूत स्टडीज, पृ. 180

29. मुंशी हरदयाल, तवारीख जमींरदारान, राज मारवाड़, पृ 71

30. एचीसन्, खण्ड 3, पृ0 20, 28 और 30

31. राजस्थान राज्य अभिलेखागार, जो.रि. ट्रिब्यूट डिपार्टमेंट खण्ड 1, फाइल न. सी 1/6 वि.स. 1858

32. शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास भाग 1, पृ. 143

33. (अ) कागजात सम्वत्–1704, 1705
(ब) तकसीम सम्वत्–1711, परगना उरमाल, करवर, रायपुर, सोयत आदि।
(स) शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास भाग 1 ,पृ. 84

34. (अ) तकसीम सम्वत् 1706–07 जेठ बुदी जागीर इन्द्रभान नाथावत आषाढ़ बुदी II जागीर दुर्जनसिंह सिकरवाल
(ब) शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास भाग 1, पृ. 144

35. तकसीम सम्वत् 1706–07 पोष बुदी जागीर नाहर खाँ माकरोत।

36. शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास भाग 1 पृ. 144

37. (अ) आलमगीर नामा, पृ. 70
(ब) मीसण, सूर्यमल्ल, वंश भास्कर, तृतीय भाग, पृ. 2667
(स) शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास भाग 1 पृ. 166–67

38. (अ) आलमगीर नामा, पृ. 263–265

(ब) शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास भाग 1, पृ. 177

39. (अ) अली, नियामत खॉ
(ब) शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास भाग 1, पृ. 203–04

40. शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास भाग 1, पृ. 204

41. (अ) शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास भाग 1, पृ. 206
(ब) कागजात सम्वत्–1747
(स) सरकार, सर जदुनाथ, हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब, जिल्द 5 ,पृ. 299

42. सरकार, सर जदुनाथ, हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब, जिल्द 5, पृ. 299

43. (अ) ठाकुर लक्ष्मणदान
(ब) मीसण, सूर्यमल्ल, वंश भास्कर, तृतीय भाग, पृ. 2887–2890

44. शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास भाग 1, पृ. 208–209

45. शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास भाग 1, पृ. 241

46. शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास भाग 1 पृ. 270–272

47. (अ) कागजात सम्वत्–1801
(ब) शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास भाग 2, पृ. 402

48. (अ) ठाकुर लक्ष्मणदान
(ब) टॉड, कर्नल जेम्स, राजस्थान जिल्द 2, पृ. 563
(स) शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास, भाग 2, पृ. 445

49. (अ) कागजात सम्वत्–1818
(ब) शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास, भाग 2, पृ. 446

50. (अ) शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास, भाग 2, पृ. 480
(ब) कागजात सम्वत्–1837,1839, बस्ता न. 64

51. शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास, भाग 2, पृ. 491

52. (अ) दफ्तर ठिकाना कोटड़ी
(ब) शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास, भाग 2 ,पृ. 569

53. (अ) दफ्तर ठिकाना कोटड़ी
(ब) शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास, भाग 2, पृ. 573
(स) जेम्स, टॉड, कर्नल, राजस्थान, जिल्द 2, पृ 628

54. शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास, भाग 2, पृ. 609

55. शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास, भाग 2 ,पृ. 611–612

56. शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास, भाग 2 ,पृ. 593

57. (अ) श्रीवास्तव, डॉ. जगतनारायण, कोटा के महाराव उम्मेदसिंह द्वितीय और उनका समय, पृ. 138
(ब) एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट ऑफ कोटा, सम्वत् 1890 , पृ. 60

58. श्रीवास्तव, डॉ. जगतनारायण, कोटा के महाराव उम्मेदसिंह द्वितीय और उनका समय, पृ. 139

59. (अ) श्रीवास्तव, डॉ. जगतनारायण, कोटा के महाराव उम्मेदसिंह द्वितीय और उनका समय, पृ. 138
(ब) Foreign deptt. Internal A, pros. April, 1890, no. 60,

60. एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट ऑफ कोटा , सम्वत् 1951, पृ. 12

61. एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट ऑफ कोटा, सम्वत् 1977, अपेडिक्स 1

62. (अ) डॉ. जगतनारायण, कोटा के महाराव उम्मेदसिंह द्वितीय और उनका समय, पृ. 139
(ब) एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट ऑफ कोटा, सम्वत् 1977, अपेडिक्स 1

63. श्रीवास्तव, डॉ जगतनारायण, कोटा के महाराव उम्मेदसिंह द्वितीय और उनका समय, पृ. 291

64. (अ) श्रीवास्तव, डॉ जगतनारायण, कोटा के महाराव उम्मेदसिंह द्वितीय और उनका समय, पृ. 292
(ब) एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट ऑफ कोटा, सम्वत् 1980, पृ. 5

65. (अ) श्रीवास्तव, डॉ. जगतनारायण, कोटा के महाराव उम्मेदसिंह द्वितीय और उनका समय, पृ. 292
(ब) एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट ऑफ कोटा, सम्वत् 1985, पृ. 25

66. (अ) श्रीवास्तव, डॉ जगतनारायण, कोटा के महाराव उम्मेदसिंह द्वितीय और उनका समय, पृ. 140
(ब) एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट ऑफ कोटा, सम्वत् 1985, पृ. 25

67. (अ) श्रीवास्तव, डॉ जगतनारायण, कोटा के महाराव उम्मेदसिंह द्वितीय और उनका समय, पृ. 140
(ब) Mayo College Ajmer, Jubillee Souvenir, 1930, Pg 20

68. प्राइवेट सेक्रेटरी कार्यालय रिकॉर्ड, ग्रुप 1, फाइल संख्या एम/5, कर्नल साहब का 25/4/1903 को अजमेर सें मुंशी शिव प्रताप जी को लिखे पत्र सें।

69- Mayo College Ajmer, magagine, November 1908,

70. (अ) प्राइवेट सेक्रेटरी कार्यालय रिकॉर्ड, ग्रुप 1, फाइल संख्या– 1/9,

(ब) श्रीवास्तव, डॉ. जगतनारायण, कोटा के महाराव उम्मेदसिंह द्वितीय और उनका समय, पृ. 295

71. कर्नल साहब की व्यक्तिगत फाइल से– जयपुर राज्य की सेना के ब्रिगेडियर, सी डबल्यू पालिन के पत्र संख्या 850/233–फ 19 सितम्बर 1945 सें –

My dear Colonel Prithi Singh,

'Here in Jaipur we are about to build some new family and followers quarters. Lt. Colonel P.J. Hillard, Millitary adviser Rajputana state forces, told me that you have some excellent family quarters for your state forces, and he advised that I should review them at an early that. His Highness The Maharaja Sahib Bahadur of Jaipur has also favoured this suggestion and so I would be most grateful if you could kindly permit me to visit Kotah for this porpose.'

72. (अ) कागजात सम्वत्–1704, 1705
(ब) तकसीम सम्वत्–1711, परगना उरमाल, करवर, रायपुर, सोयत आदि।
(स) शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास, भाग 1, पृ. 84

73. टॉड, कर्नल जेम्स, राजस्थान, भाग 2, पृ. 565–66

74. (अ) जमाबंदी सम्वत् 1839
(ब) शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास, भाग 1, पृ. 457

75. (अ) टॉड, कर्नल जेम्स, राजस्थान, भाग 2, पृ. 566
(ब) गहलोत, जगदीश सिंह, राजपूताने का इतिहास भाग 4, पृ. 160
(स) ठाकुर लक्ष्मणदान, कोटा राज्य का इतिहास

76. ठाकुर लक्ष्मणदान, कोटा राज्य का इतिहास

77. (अ) टॉड, कर्नल जेम्स, राजस्थान, भाग 2, पृ. 568
(ब) ठाकुर लक्ष्मणदान, कोटा राज्य का इतिहास

78. टॉड, कर्नल जेम्स, राजस्थान, भाग 2, पृ. 569

79. (अ) ठाकुर लक्ष्मणदान, कोटा राज्य का इतिहास
(ब) शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास भाग 2 पृ. 463–64

80. (अ) कागजात सम्वत्–1827
(ब) शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास भाग 2 पृ. 470

81. टॉड, कर्नल जेम्स, राजस्थान भाग 2 पृ,. 571

82. (अ) मीसण, सूर्यमल्ल, वंश भास्कर, भाग 4 पृ. 3816–17
(ब) शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास भाग 2 पृ. 472

83. (अ) मीसण, सूर्यमल्ल, वंश भास्कर, भाग 4 पृ. 3817

(ब) टॉड, कर्नल जेम्स, राजस्थान, भाग 2, पृ. 571
(स) शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास, भाग 2, पृ. 472

84. मीसण, सूर्यमल्ल, वंश भास्कर, भाग 4, पृ. 3818

85. (अ) कर्नल टॉड, राजस्थान, भाग 2, पृ. 571
(ब) दफ्तर ठिकाना कोटड़ी
(स) शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास, भाग 2, पृ. 473

86. (अ) टॉड, कर्नल जेम्स, राजस्थान, भाग 2, पृ. 572
(ब) शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास, भाग 2 , पृ. 474

87. टॉड, कर्नल जेम्स, राजस्थान, भाग 2, पृ. 573

88. (अ) दफ्तर ठिकाना कोटड़ी
(ब) शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास, भाग 2 ,पृ. 475

89. (अ) दफ्तर ठिकाना कोटड़ी
(ब) शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास, भाग 2, पृ. 476

90. (अ) दफ्तर ठिकाना कोटड़ी
(ब) शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास, भाग 2, पृ. 477

91. (अ) कागजात सम्वत्–1838
(ब) शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास, भाग 2, पृ. 477

92. (अ) दफ्तर ठिकाना कोटड़ी
(ब) शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास, भाग 2 , पृ. 478

93. टॉड, कर्नल जेम्स, राजस्थान, भाग 2, पृ0 600

94. (अ) दफ्तर ठिकाना कोटड़ी
(ब) शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास, भाग 2, पृ. 509

95. (अ) दफ्तर ठिकाना कोटड़ी
(ब) कागजात सम्वत्, 1838 खाता जागीरदारों का

96. (अ) दफ्तर ठिकाना कोटड़ी
(ब) शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास, भाग 2, पृ. 510

97. टॉड, कर्नल जेम्स, राजस्थान, भाग 2, पृ. 575–76

98. (अ) दफ्तर ठिकाना कोटड़ी
(ब) शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास भाग 2 पृ. 559

99. टॉड, कर्नल जेम्स, राजस्थान भाग 2 पृ. 630–632

100. शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास, भाग 2, पृ. 559

101. (अ) टॉड, कर्नल जेम्स, राजस्थान, भाग 2, पृ. 595
(ब) कागजात सम्वत्, 1838 बस्ता न. 64
(स) शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास, भाग 2, पृ. 537

102. (अ) कागजात सम्वत्–1837 बस्ता न. 64
(ब) कागजात सम्वत्–1839 बस्ता न. 64
(स) शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास, भाग 2, पृ. 480

103. (अ) टॉड, कर्नल जेम्स, राजस्थान, भाग 2, पृ. 424
(ब) बही, पृ. 508–11

पंचम अध्याय

जागीर प्रथा के अंतर्गत सामाजिक व सांस्कृतिक स्थिति

पंचम अध्याय

जागीर प्रथा के अंतर्गत सामाजिक व सांस्कृतिक स्थिति

जागीरदारी संस्कृति के विविध पहलुओं के अध्ययन के साथ ही जागीरदारों व प्रजा के मध्य स्थापित सामाजिक व सांस्कृतिक रिश्तों का भी एक अहम स्थान रहा है। स्थानीय संस्कृति वहाँ की प्राचीन परम्पराओं तथा विचारधाराओं से जुड़ी होती है। ये विचारधाराएँ और परम्पराएँ धार्मिक, ऐतिहासिक और सामाजिक होती हैं। इस स्थानीय संस्कृति की झलक हमें पारिवारिक और सामाजिक उत्सवों में देखने को मिलती है। ये लोक उत्सव एक ऐसा माध्यम होते हैं जिसमें शासक और प्रजा अपने सुखों को अपनी खुशियों को एक दूसरे से साझा करते हुए अपनी सांस्कृतिक विरासत की निरंतरता को बनाये रखते हैं। जब भी इन लोकोत्सवों का आयोजन होता है तो सांस्कृतिक स्वरुप के एक पहलू की अभिव्यक्ति होती है जिसमें प्रत्येक तबके का व्यक्ति सुव्यवस्थित ढंग से बड़े उत्साह से भाग लेता है।

इन अवसरों, ऋतुओं एवं विशेष अवसरों को ऐसा संयोजित किया जाता है कि जन भावना में नैसर्गिकता दिखाई देती है। अलग–अलग मौसम में अलग–अलग वेशभूषा, नाच गाने का प्रदर्शन अपनी विशेषताओं को लेकर इस तरह रचे जाते हैं कि सांस्कृतिक जीवन में नये ढंग का संचार हो जाता है। स्त्रियाँ महावरों, माँडनों व व्रतों से इन उत्सवों में नई उमंग भर देती है। इन अवसरों पर गाये जाने वाले लोकगीतों में ऐतिहासिक तथ्य भरे पड़े हैं जो स्थानीय विशेषताओं को व्यक्त करते हैं।

(क) जागीरदारों के पारिवारिक व धार्मिक उत्सव

कोटा रियासत के समान ही रियासत के जागीरदारों द्वारा भी समस्त उत्सव व त्योहार अपनी जागीर क्षेत्रों में पूर्ण हर्षोल्लास व शानोशौकत के साथ मनाये जाते रहे हैं। इन उत्सवों व त्योहारों में क्रमशः होली, दशहरा, गणगौर, तीज, दीपावली एवं अन्य उत्सवों में जन्माष्टमी, बसंतपंचमी आदि महत्वपूर्ण हैं।

होली – कोटा रियासत की प्रत्येक जागीर में होली का उत्सव बड़े हर्षोल्लास के साथ मनाया जाता था। होली का त्योहार फाल्गुन पूर्णिमा को मनाया जाता है। सभी जागीरों में होली का अलग ही रंग देखने को मिलता था। पूर्णिमा से 30 दिन पहले शुभ मुहुर्त में होली का डंडा रोप दिया जाता था। तत्पश्चात पूर्णिमा के दिन होली की पूजा कर गोबर के कण्डों को इकट्ठा किया जाता और कुछ कण्डों की मालाएँ होली दहन के लिए समर्पित की जाती थीं। होली की परिक्रमा करना और उसकी अग्नि से भोजन पकाना शुभ और धार्मिक माना जाता है। नृत्यगान और गुलाल के महत्व को प्रदर्शित किया जाता है।

इस अवसर पर सभी तबके के व्यक्ति एक दूसरे से मिलते। ऐसा प्रतीत होता है मानों समाज में ऐक्य और समानता व्यापक व वास्तविक है। राजा और जागीरदार आम जनता के साथ होली खेलकर बड़े आनंद का अनुभव करते थे। अग्निपूजन, परिक्रमा, गोबर की माला का समर्पण, नृत्यगायन आदि होली के विविध प्रकरण इसके सांस्कृतिक पक्ष हैं।[1]

कोटा रियासत में होलिका दहन के समय 'नाथोपण्डो' हाडौती भाषा का गीत गाया जाता था।[2] पूर्णिमा को होली दहन के दूसरे दिन मिति चैत्र बुदी एकम को धुलेण्डी मनाई जाती थी जिसे छारण्डी भी कहा जाता था। प्रजा द्वारा सभी प्रकार की हँसी मजाक के साथ रंग, अबीर, गुलाल से फाग खेली जाती थी।

रियासत के जागीरदार भी महाराव द्वारा मनाए जाने वाले रंग उत्सव में शिरकत करते थे। ये उत्सव कई दिनों तक चला करता था। मिति चैत्र बुदी तीज को नावड़ा की होली खेली जाती थी। यह होली कोटा में काफी प्रसिद्ध थी। इस अवसर पर सरदार उमराव जागीरदारों को बुलाया जाता था। सब लोग भीतर के घाट पर पधारते थे। महाराव कसूमल पोशाक, पाग, दुपट्टा धारण कर तामझाम से नदी घाट पर पधारते थे। महाराव नावड़े पर आसीन तख्त पर विराजते तत्पश्चात जागीरदार दाहिने ओर बाँई ओर अपने क्रमानुसार विराजते थे।

अन्य नाव जो नावड़े से लगी रहती थी उनमें नृत्य और गान चलता रहता था एवं नगाड़े बजते रहते थे। नावड़े के पीछे फव्वारा की मशीन लगी रहती थी। नावड़ा लवाज में सहित घाट से रवाना होकर चम्बल नदी के पुल तक फव्वारे से होली

खेलता हुआ चलता था। आम जनता नदी किनारे घाटों पर दृश्य देखने को खड़ी रहती थी। महाराव प्रजा पर फव्वारे से पानी फेंकते थे।[3]

मिति चैत्र बुदी चौथ को हाथियों की होली होती थी। हाथी जिन पर जागीरदार, सरदार आदि को बैठने का हुक्म हो जाता था, बैठ जाते तब महाराव आकर अपने खास हाथी पर बैठते थे। सरदारों आदि के हाथी दरबार के हाथी के सामने आ जाते तब दरबार सभी पर गुलाल की पोटली व गुलाल गोटा फेंककर होली खेलते थे तथा हाथी पर बैठने वाले भी आपस में होली खेलते रहते थे।

दरबार के हाथी के साथ फव्वारा रहता था जिसको चलाने के लिए उस्ताद, कारीगर और मिस्त्री रहते थे साथ ही फव्वारे में पानी भरने के लिए 40–50 भिश्ती मौजूद रहते थे। फव्वारे से दरबार सभी पर रंग डालते जाते थे।[4] इस अवसर पर प्रजा को अपने शासक को निकट सें देखने का अवसर प्राप्त होता था। इस प्रकार जागीरदार भी होली के अवसर पर महाराव के साथ उत्सव में सम्मिलित होकर आनंद लेते थे। शाम को दरीखाने में ये महाराव को नजर करते थे एवं महाराव उन्हें बीड़े बक्शते थे। 2 अप्रेल 1929 को आप गोविन्दसिंह कोयला के निधन हो जाने के कारण 4 अप्रेल 1929 को हाथियों की होली स्थगित कर 6 अप्रेल 1929 को खेली गई।[5]

जागीरी ठिकानों में होली के दिन "राम–राम" होता था जिसमें जागीर की प्रजा जागीरदार को अभिवादन करने आती । इनमें हर वर्ग का व्यक्ति अपनी ओर से जागीरदार को अपने व्यवसाय अनुसार प्रतीक रूप में कुछ भेंट देता था। इस दिन सब भाई बन्धु आपस में होली की राम–राम करने आते थे। इस प्रकार एक ओर जहाँ जागीरदार कोटा दरबार के साथ होली के उत्सव का आनंद उठाने हेतु उपस्थित होते वहीं जागीरी क्षेत्र में भी उसी उल्लास के साथ वे अपनी प्रजा और परिवार के साथ होली मनाते थे।

गणगौर – गणगौर उत्सव कोटा में बड़ा लोकप्रिय था। रजवाड़ों के समान ही जागीरी ठिकानों में भी गणगौर का उत्सव बड़ी धूमधाम से मनाया जाता था। गणगौर का उत्सव महिलाओं में बड़ा लोकप्रिय था। ना केवल देशी अपितु विदेशी भी इसे देखने के लिए लालायित रहते थे। सन् 1909 में जब कर्नल हर्बट से कोटा स्कूल के

उद्घाटन के लिए आने का समय पूछा तो उन्होंने गणगौर उत्सव के दौरान आने की इच्छा जाहिर की।[6]

सधवा स्त्रियों व कुमारियों द्वारा इसे असीम श्रद्धा और निष्ठा से मनाया जाता था। इस कामना के साथ ही कि उनके पति दीर्धायु हों, सधवाहों का सुहाग चिरकालीन रहे और कुमारियों को अच्छे वर की प्राप्ति हो स्त्रियाँ 15 दिन तक (पिण्डियों के रूप में) शिव पार्वती का पूजन करती थीं। गणगौर होलिका दहन से आरम्भ होकर चैत्र शुक्ल एकम पर कहीं–कहीं तृतीया तक समाप्त होता था। इस अवसर पर राजकुमारियों के द्वारा होली की राख के पिण्ड भी बनाये जाते थे और दूब के अंकुरों के साथ इनका पूजन भी होता था। कुमारियाँ बाग बगीचों से फूलों को कलश में सजाकर गीत गाती हुई अपने घर ले जाती थीं। इस अवसर पर चूड़ा एवं चून्दड़ी की अक्षयता की कामना की जाती।[7] उसी के उपलक्ष में विविध नृत्यों का आयोजन एवं गीतों का गायन किया जाता था।

गणगौर का त्योहार शिव पार्वती के रूप में ईसर जी और गौर (ईसर जी) के पूजन के रूप में मनाया जाता था। ऐसी मान्यता है कि इस उत्सव का पार्वती के गौने या अपने पिता के घर पुनः लौटने और उसकी सखियों द्वारा स्वागत गान को लेकर हुआ था। हकीकत बहियों से प्रमाणित है कि इस उत्सव को कोटा राज्य में बड़ी धूमधाम से मनाया जाता था जिसमें स्वयं राजपरिवार तथा कर्मचारी सवारी में सम्मिलित होते थे। कोटा में तो अनेक जातियों की स्त्रियों जिनमें कुंजाडियाँ, लखारन, भड़भूंजा आदि भी सम्मिलित होती थी और राजप्रासाद के आँगन में आकर नृत्य करती थीं।

सभी ठिकानों की अपनी–अपनी गणगौर होती थी। स्त्रियाँ मिट्टी से ईसर और गौर की प्रतिमा बनाती थीं। गणगौर के दिन जल, कुमकुम, काजल, बेसन के आभूषण इत्यादि चढ़ाकर पूजन करतीं। महिलाएँ बड़े उल्लास के साथ यह त्योहार मनाती थीं। दो–चार दिन पश्चात गणगौर का विसर्जन कर दिया जाता था।[8]

इस त्यौहार पर पत्नी अपने प्रियतम की राह देखती थी। गणगौर के दिन तो वे उससे मिलने हेतु अवश्य आएँगे।

"गया न राजन बावडया
कोई खांगो रहियो किवांड ओ राज।
अधमण तेल दिवले बलियो
कांई बासी रहियो वणाव ओ राज।"[9]

अर्थात मेरे राजन प्रवास से लौटे नहीं। प्रतीक्षा में मेरे शयन कक्ष के किवाड सारी रात अधखुला ही रहा। दिए में आधा मन तेल भी जल गया। मेरा श्रृंगार भी बासी हो गया।

शिव पार्वती को दाम्पत्य प्रेम का आदर्श का माना गया है इसलिए गणगौर पर ईसर व गौर की पूजा की जाती है। हमारे प्राचीन शास्त्र निर्णय सिन्धु मे भी उल्लेख है:–

चैत्र शुक्ला तृतीयायां, गौरीभीश्वर संयुताम्।
सम्पूज्य दोलोत्सवं कुर्यात।[10]

राजघरानों में प्रचलित गणगौर पूजा की परम्परा अत्यन्त प्राचीन एवं शास्त्र सम्मत है। पं. लज्जाराम शर्मा ने लिखा है – "यह त्योहार राजपूतानें में, राजपूत जाति में और राजपूत नरेशों में बहुत बडा त्योहार माना जाता है।[11]

सिंजारा – गणगौर यानि चैत्र शुक्ल तृतीया के एक दिन पहले चैत्र शुक्ला द्वितीया को सिंजारा होता है। उस दिन नववधुओं तथा बहिन बेटियों के लिए सुन्दर परिधान (विशेषतः लहरिया) तथा घेवर आदि मिष्ठान उपहार स्वरूप भेजे जाते हैं।

तीज – श्रावणी तीज वर्षा ऋतु के त्योहारों में प्रमुख त्योहार आता है। राजस्थान की लोक गाथाओं, प्रवाह और लोकगीत ऐसे आख्याओं से भरे पड़े हैं जिनमें प्राणों को हथेली पर लेकर तीज पर पहुँचने की घटनाओं का सरस वर्णन है। पति–पत्नी मिलकर बड़े उल्लास से इस त्योहार को मनाने की परम्परा रही है। पत्नियाँ चाकरी करने गये सरदारों को विरहातुर हो सन्देश भेजती थी–

ब्रछां न दूही बेलियाँ, नरां न दूही नार
रूत दूण दूहा रेहतां, देख्या जागीरदार

देख्या जागीरदार, हुक्म रै सांकडै
आता सावण आस तीज रै टांकडै
सीख न देह सुपह, अंचभो आखरां
सीख न लै समै, ज्यॉह लानत ठाकरां

तीज पर प्रवासी प्रियतम के घर लौटे आने की बात मात्र काव्य वर्णित तथ्य ही नहीं अपितु राजस्थान के क्षत्रिय घरानों में यह एक सांस्कृतिक परम्परा रही है। उदाहरण – बूंदी के सामन्तों को "कजली तीज" पर विशेष रूप से अपने घर आने की छुट्टी दी गई थी–on the "kajul teej" the joyous third of the month Sawan when a rajpoot must visit his wife, the vassals of boondi were dismissed to their home to keep the festival sacred to 'the mother of births'.[12]

इस प्रकार तीज पर घर आने की एक व्यापक भावना थी। जिला हाकिम पूरा ख्याल रखते कि कर्मचारी लोग तीज पर अपने घर पहुँच सके।

राजपूत लोग तीज का त्योहार बड़े चाव से मनाते थे। उनके अपने विशेष रीति रिवाज होते थे। कोटा में गोठों का बड़ा जोर रहता था। स्त्रियाँ मिलकर गोठ करती। नदियों वाला प्रदेश होने के कारण प्राकृतिक सुन्दर स्थानों की बहुलता में सावन भर गोठ चलती रहती थी।[13] लोग बड़े उल्लास से तीज का त्योहार मनाते थे। झूले डाले जाते, बागों में या घर में पेड़ों की डाली पर या खजूर के दो पेड़ काटकर उन्हें इच्छित स्थान पर गाड़कर झूला डाल दिया जाता।

तीज मनाने का प्रबन्ध ठिकाने का स्वामी या परिवार के मुख्य व्यक्ति द्वारा किया जाता था। वह स्त्रियों और पुरूषों के पृथक–पृथक झूले डलवा कर गाँव भर के खास–खास व्यक्तियों को झूलने के लिए निमंत्रित करता था। नाइन जाकर स्त्रियों को निमंत्रण दे आती थी। नाइन महिलाओं के हाथों और पाँवों में मेहंदी लगाती थीं। महिलाएँ पुरूष, कर्मचारी, सरदार, पंच, पटेल सभी झूलों का आनन्द लेते थे।

सार्वजनिक झूले की रस्म के बाद परिवार वालों के साथ झूलना आरम्भ होता था। परिवार के सारे पुरूष व स्त्रियाँ झूलने के स्थान पर आ जाते। सारा परिवार जोड़े के साथ झूलता। पति–पत्नी एक दूसरे का नाम लेते थे।[14]

तीज के त्योहार का उल्लास लगातार कई सप्ताहों तक चलता रहता। "आई आई सावणियाँ री तीज" की उल्लासपूर्वक तान, राजस्थान के अन्तःस्थल के उद्‌गार हैं।

कोटा रियासत में श्रावणी तीज की सवारी निकाली जाती थी। सवारी का जाब्ता गढ़ से रवाना होकर अमर निवास तक जाती था। वहाँ दरीखाना लगता था। जहाँ जागीरदार, दरबारी, अहलकार, साहूकार इत्यादि हाजिर आकर एकत्रित होते थे। जागीरदार अहलकार एवं साहूकार महाराव को मुजरा कर अपना स्थान ग्रहण करते थे। महाराव चूंदडी का लपेटा, सफेद अंगरखी, सफेद पायजामा पहनते। महाराव द्वारा माला का हुक्म बक्शा जाता तब बक्शी ने चौसर की तासकी नजर की। तब महाराव चौसर धारण करते। फिर महाराव द्वारा दरबारियों को माला बक्शी जाती थी। एक ओर नृत्य गान होता रहता था।[15] इस प्रकार कोटा रियासत के जागीरदारों द्वारा श्रावणी तीज का उत्सव मनाया जाता था।

दशहरा – यह त्योहार आश्विन शुक्ल दशमी को पड़ता है। वैसे तो भारत के अन्य भागों में भी इस त्योहार को मनाया जाता है परन्तु राजस्थान के शौर्य की प्रमुखता के कारण इसका महत्व और भी बढ़ गया। ऐसी मान्यता है कि इस दिन राम ने रावण पर विजय पाई थी और इसलिये इसका दूसरा नाम विजय दशमी रखा गया। यह क्षत्रियों का त्योहार रहा है जिसे दुर्गा स्थापना व दुर्गाष्टमी और नवरात्रि से भी जोड़ दिया गया। प्रत्येक अवसर पर रात्रि की पूजा होती और शक्ति का प्रदर्शन होता। सूअर का शिकार, भैंसों की दौड, बलिदान, शस्त्रपूजन, हवन, खेजड़ी पूजन, दरबारों का लगाना, भेंट समर्पण, टीका दौड़ आदि कार्यक्रमों का विधिवत आयोजन शक्ति प्रदर्शन के प्रतीक है जो राजस्थानी संस्कृति के विशिष्ट अंग हैं।[16]

कोटा का दशहरा अपनी विशिष्ट पहचान रखता है। दशहरे पर शस्त्रपूजन, अश्वपूजन, शमीपूजन, दरीखाने की बैठक इत्यादि उल्लेखनीय रीतियाँ है। अन्य त्योहारों की भाँति दशहरे पर भी कोटा राज्य के प्रमुख जागीरदारों को राजधानी में

आमंत्रित किया जाता था। जागीरदारों को दरीखाने में पधारने हेतु महाराव की ओर से पत्र भिजवाये जाते थे। जिनकी भाषा इस प्रकार की होती थी –

अहकाम उत्सव विजयदशमी १९९९ राज[१७] तालीक बही मुंशी खाना सम्वत १९२८ पाना २६-२८

१ सिद्ध श्री भाईजी श्री सुमेर सिंह जी योग्य लिखायत महाराधिराज महाराज महीमहेन्द्र महाराव राजाजी श्री भीमसिंह जी बहादुर केन ..... बंच्चा अठा का समाचार ..... श्री जी की कृपा सूं भला छै भाई जी का समाचार सदा भला चाहिजे अपंरच विजयादशमी का उत्सव को दरीखानों मिति आसोज सुदी/रविवार है- होशी-सो बांचता हुक्म छड़ा चाकरी में हाजिर आव जो - परवानगी मुंशी पंचोली रामचन्द्र सम्वत् १९९८ मिति भादवा सुसद/

१. भाई प्रताप सिंह जी बलवन पूरा जाब्ता सूं
२. भाई तेजराज जी गैंता पूरा जाब्ता सूं
३. भाई रघुराज सिंह जी कोयला पूरा जाब्ता सूं
४. भाई ओंकार सिंह जी सी.आई.ई पलायथा जाब्ता सूं
५. भाई गिरवर सिंह जी करवाड़ छड़ा
६. राज चन्द्रसेन जी कुन्हाड़ी छड़ा
७. भाई केशवसिंह जी बमूलिया छड़ा
८. ठाकर दीपसिंह जी सारथल छड़ा
९. पंड़ित चन्द्रकांत सारोला छड़ा
१०. राव राजा शंकर सिंह जी हरनावदा छड़ा

कोटा रियासत के सरदार, जागीरदार दशहरे के अवसर पर राजधानी में पधारते थे। मिति आसोज सुदी पंचमी को महाराव पोशाक धारण कर राजमहल के चौक में पधारते थे। वहाँ शस्त्रपूजन होता था। शस्त्रपूजन के पश्चात अश्वपूजन होता था। अश्वपूजन के पश्चात महाराव सरदारों के साथ डाढ़देवी माता के यहाँ पूजन हेतु पधारते थे। इस अवसर पर तोपों की सलामी दी जाती थी। माता के यहाँ नक्कारे, बाजे बजते रहते थे। महाराव एवं ब्राहमणों द्वारा आशक्या झलाई जाती थी।[18]

इस पूजन के पश्चात पाँच बकरी एवं एक भैंसे का वध किया जाता था। इस वध में तलवार के एक वार से ही गर्दन काट पशु की बलि दी जाती थी। यह कार्य महाराव जिसकी ओर ऊँगली से इशारा करते उसी जागीदार को करना होता था। बाद में खूनखराबे के कारण इस प्रथा को बंद कर दिया गया था। साथ ही सभी लोग एक ही वार में वध करने में समर्थ भी नहीं रह गये थे। पूजन व आरती के पश्चात महाराव द्वारा इस अवसर पर जागीरदारों एवं अधिकारियों को रूमाल भेंट किये जाते थे।

मिति आसोज सुदी सप्तमी को कोटा महराव द्वारा नान्ता के भैरूजी एवं अभेड़ा की करणी माता का पूजन किया जाता। सभी जागीरदार सब अधिकारी इस अवसर पर एकत्रित होते। सभी अन्य कार्यवाही पंचमी के समान ही की जाती थी। भैरूजी के यहाँ दो बकरे व करणी माता के यहाँ एक बकरे का बलिदान दिया जाता था जिसे बाद के वर्षों में बंद कर दिया गया था।

आसोज सुदी अष्टमी 1/4 आश्विन शुक्ल अष्टमी 1/2 को आशापुरा माता के मंदिर में महाराव द्वारा पूजन किया जाता था। इसके पश्चात घोड़ों व शस्त्रों का पूजन किया जाता था। अष्टमी को ही शाम को डोडा का दरीखाना हाथियापोल के बाहर छोटे चबूतरे पर लगता था। महाराव तख्त पर विराजते एवं अन्य निमंत्रित जागीरदार अपने निश्चित क्रम के अनुसार बैठते थे। दरीखाने की बैठक के दौरान फायर होते, तोपें चलती एवं अतिशबाजी की जाती थीं।[19] आश्विन शुक्ल नवमी को आशापुरा माता जी की सवारी होती थी। महाराव केसरिया पगड़ी, सफेद अंगरखी व पायजामा धारण कर उम्मेदभवन से गढ़ पधारते थे। वहाँ ऊब देवी का पूजन कर श्री ब्रजनाथ जी के दर्शन हेतु पधारते थे। आरती के पश्चात महाराव गाड़ी में सवार हो पूरे जाब्ते व तामझाम से आशापुरा माता के मंदिर में पधारते थे। तोपों की सलामी ली जाती थी। आतिशबाजी होती थी। पूरे हर्षोल्लास से राज्य के जागीरदारों के साथ महाराव आशापुरा मंदिर पहुँचते। वहाँ पूजन व आरती के पश्चात दरीखाना लगता था जिसमें महाराव एवं सरदार, उमराव, जागीरदार, अहलकार, धाभाई आदि बैठते थे।

दशहरे के दिन महाराव रंगबाड़ी बालाजी के दर्शन हेतु मय जाब्ता पधारते। साथ में राज्य के प्रमुख जागीरदार उमराव भी होते थे। दशहरे के दिन शाम को

महाराव द्वारा खेजड़ी का पूजन किया जाता। ढोल नगाड़े बजते रहते थे। तोपों से फायर होते थे। खेजड़ी पूजन के पश्चात शस्त्र पूजन किया जाता। उसके द्वारा महाराव श्री ब्रजनाथ के दर्शन करते।

महाराव रावण वध हेतु पूरे ताम–झाम के साथ गढ़ से सवार होकर निकलते। राज्य की प्रजा सड़क के दोनों ओर महाराव की झलक पाने हेतु खड़ी रहती थी। रास्ते में नृत्यगान चलता रहता। शुभ मुर्हुत में रावण वध किया जाता। रावण वध के पश्चात गढ़ की तोपें महाराव की सलामी हेतु चलायी जातीं। सलामी के पश्चात महाराव गढ़ पधार कर ब्रजनाथ जी के दर्शन कर भेंट अर्पण करते थे। इसके पश्चात दरीखाना लगता जहाँ जागीरदारों, उमरावों द्वारा महाराव को नजर भेंट की जाती थी। नाच–गान चलता रहता था। सभी को बीड़े दिये जाते थे। तत्पश्चात दरीखाना बर्खास्त होता था।[20]

इस प्रकार कोटा राज्य में दशहरे का त्योहार पूर्ण हर्षोल्लास के साथ मनाया जाता जिसमें महाराव, जागीरदार, उमराव, आम प्रजा पूर्ण रूप से आनन्द उठाते थे। जागीरदार कोटा महाराव के साथ तो दशहरे का आनन्द उठाते ही थे साथ ही जागीरी क्षेत्रों में भी पूर्ण आनन्द से दशहरा मनाया जाता था जिसमें जागीरदारों के परिवार के सदस्य शामिल हो त्योहार का आनन्द लेते थे।

श्री कृष्णजन्माष्टमी – जन्माष्टमी का उत्सव भाद्रपद कृष्ण अष्टमी को मनाया जाता है। कोटा व बूंदी के शासक कृष्ण के परम उपासक रहे हैं। जैसा कि कर्नल टॉड ने लिखा है– "The Hara princes of kotah and Bundi are almost exclusive worshippers of Kaniya."[21] कोटा रियासत एवं उसके सभी ठिकानों में जन्माष्टमी का उत्सव बड़ी धूमधाम से मनाया जाता था। इस उत्सव पर विविध प्रकार के आयोजन किये जाते थे। कोटा राज्य में जन्माष्टमी के अवसर पर आठ दरीखाने लगते थे यथा – पहला बीड़ो का दरीखाना, दूसरा चौखटे का सफेद कपड़ों का दरीखाना, तीसरा बीड़ों का दरीखाना राजमहल में, चौथा केसरिया कपड़ों का दरीखाना, पाँचवा दशमी का सवेरे का दरीखाना, छठा दशमी का शाम का दरीखाना, सातवाँ एकादशी का सवेरे का दरीखाना, आठवाँ श्री ब्रजनाथजी का लाल छत्री का दरीखाना। महाराव उम्मेदसिंह द्वितीय के शासन काल में सन् 1939 में आयोजित जन्माष्टमी के उत्सव

का विवरण बक्शीखाना की नित मिति में प्रस्तुत किया गया।[22] इन दरीखानों में महाराव नियत पोशाकों में बड़े ताम झाम के साथ पधारते थे। जागीरदारों एवं अहलकारों को उत्सव में सम्मिलित होने हेतु आमंत्रित किया जाता। जागीरदार अपनी नियत पोशाकों में इस उत्सव में सम्मिलित होते। दरीखाने की बैठकों में क्रम के अनुसार जागीरदार अपना स्थान ग्रहण करते थे। इस अवसर पर भजन कीर्तन किया जाता था। ठाकुर जी की सवारी निकाली जाता थी जिसमें महाराव, श्री महाराज कुमार एवं जागीरदार सवारी के साथ पैदल कोटा गढ़ से भट्टजी घाट पधारते। वहाँ ठाकुर जी की आरती के पश्चात् पुनः सभी पैदल वापस पधारते थे। रास्ते में हरिकीर्तन चलता रहता था। महाराव द्वारा भेंट न्यौछावर की जाती थी।[23] इसी प्रकार आयोजित सभी दरीखानों में नियत कार्यक्रम आयोजित होते थे। महाराव अपने दरबारियों, जागीरदारों सेवकों एवं अपनी प्रजा के साथ बड़ी श्रद्धा के साथ जन्माष्टमी के उत्सव में सम्मिलित होते थे।

कोटा में जन्माष्टमी के दूसरे दिन सभी मंदिरों में भगवान की झाँकियों के दर्शन होते थे। कोटा राज्य की जनता विशाल पैमाने पर भगवान के दर्शन हेतु आती थी। इस अवसर पर कोटा में बड़ा उत्सव होता था। वर्तमान में कोटा में यह उत्सव बड़ी धूम धाम से मनाया जाता है। कोटा में ठाकुर जी के मथुराधीश जी, बड़े महाप्रभुजी व श्री छोटे मथुराधीश जी के मंदिरों में विशेष दर्शन होते थे। कोटा रियासत के जागीरी ठिकानों में भी जन्माष्टमी का उत्सव बड़ी धूमधाम से मनाया जाता था। सभी जागीरी ठिकानों में जागीरदारों एवं उनके परिवार के सदस्यों द्वारा निर्मित मदनमोहन जी, श्री कृष्ण के मंदिर बने होते थे। मंदिरों में बड़े उल्लास से जागीरदारों के परिवार के साथ ठिकाने की प्रजा जन्माष्टमी का उत्सव मनाती थी। मंदिरों में भजन कीर्तन होता रहता था। ठाकुर जी की आरती होती व झाँकियाँ सजाई जाती थीं। ठाकुर जी का श्रृंगार किया जाता था। उनके भोग लगाकर प्रसाद का सभी लोगों को वितरण किया जाता था। इस प्रकार जन्माष्टमी के अवसर पर बड़ी धूम रहती थी।

(ख) सामाजिक रीति–रिवाज एवं जागीरदारों के प्रभाव

पुत्र जन्म सम्बन्धी रीति रिवाज – पुत्र जन्म सदा से ही सबके लिए अतीव हर्षप्रद और आनन्ददायी रहा है। पुत्र उत्पन्न होने से राजा और जागीरदारों को जहाँ अपनी वंश परम्परा विषयक चिन्ता मिट जाती थी वहीं भावी उत्तराधिकार भी सुनिश्चित हो जाता था। जब किसी जागीरदार के घर पुत्र का जन्म होता था तब काँसे का थाल बजाया जाता था। आज भी यह परम्परा देखने को मिलती है। यह उल्लास की अभिव्यक्ति होने के साथ–साथ परिजनों के लिए शुभ सूचना का काम करता था। पुत्र जन्म के साथ ही यह रीति ऐसी मान्यता से जुड़ गई कि "थाल बजाना" शब्दावली ही पुत्र जन्म का पर्याय हो गई जैसा कि महाकवि सूर्यमल्ल के निम्नोक्त दोहे से प्रकट है –

हूँ बलिहारी राणियाँ, थाल बजाणै दीह ।
बीर जमी रा जै जणै, साकल हीटा सीह।।[24]

अर्थात मैं रानियों के उस थाल बजाये जाने वाले दिन पर बलिहारी हूँ जिस दिन वे जंजीरों को तोड फेंकने वाले सिंह के समान पृथ्वी के पराक्रमी सूरमाओं को जन्म देती हैं।

पुत्र जन्म होने पर जागीरदार द्वारा जोशी, पुरोहितों, वैद्य, बाजेदारों, कलावन्तों, गुणीजनों आदि को नेग एवं पुरस्कार दिये जाते थे। पुत्र जन्म की शुभ सूचना देने वाले बधाईदार भी पुरस्कृत होते थे। प्रसव कराने वाली दाई (धाय) भी पुरस्कृत होती थी।

पुत्र जन्म के पश्चात "सूरज पूजन" एवं "जलवा पूजन" के संस्कार किये जाते थे। पुत्र जन्म के दसवें दिन जागीरदारों द्वारा जागीर क्षेत्र में भोज दिया जाता था जिसे सूरज पूजना कहा जाता था। इसमें सगे सम्बंधियों , इष्ट मित्रों इत्यादि को आमन्त्रित किया जाता था। पुत्र जन्म सम्बन्धी अन्य संस्कार जैसे जामणा, नामकरण, कर्णवेधन, अन्नप्राशन, चूडाकर्म इत्यादि बड़े उल्लास से मनाये जाते थे।

इन संस्कारों के साथ ही ठिकाने के कँवर, भँवरों का नाम कुल बड़वे की पोथी में लिखवाया जाता था। "बड़वे" उस युग के रियासतों–ठिकानों के अधिकृत

इतिहासकार थे जो वंश परम्परा से ठिकानों तथा उनके भाई–बन्धुओं की वंशावली अपनी पोथी में अंकित किया करते थे। इन नामोल्लेख के फलस्वरूप उन्हें प्रचुर भेंट व दक्षिणा दी जाती थी। ये बड़वे वर्ष में प्रायः एक बार हर ठिकाने में आते तथा अपनी पोथी में उस समय तक की प्रविष्ठियाँ अंकित कर वंशावली को पूर्ण कर लेते।[25] बड़वों की पोथी की प्रामाणिकता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि ब्रिटिश शासनकाल में भी किसी ठिकाने में उत्तराधिकारी विषयक विवाद छिड़ने पर न्यायालय उनकी पोथियों को प्रामाणिक साथ्य के रूप में स्वीकार करता था।

विवाह संस्कार – जागीरदारों के पारिवारिक उत्सवों में विवाह संस्कार भी एक महत्वपूर्ण उत्सव रहा है। राजपूत घरानों में विवाह विशेषतः कन्या का विवाह, बहुत धूमधाम से किया जाने वाला अत्यन्त खर्चीला समारोह हुआ करता था जिसमें हर घराने की अपनी कुल परम्परा के अनुसार अपनी विशिष्ट रस्में और रीति रिवाज हुआ करते थे जिनका उल्लेख तत्कालीन ख्यातों, खरीतों, दस्तूर की बहियों आदि में उल्लेख मिलता है।

वैवाहिक रीतियों का प्रारम्भ सगाई से होता है। जब जागीरदार की कन्या सयानी होने लगती तो उसके लिए उपयुक्त वर की तलाश शुरू हो जाती थी तथा उपयुक्त वर मिलते ही विवाह के प्रस्ताव के प्रतीक नारियल[26] वर पक्ष के पास भेज दिया जाता था। ये नारियल सोने या चाँदी के मढ़े होते थे। नारियल के साथ ही सूखे मेवे, सिरोपाव, बहुमूल्य कपड़े के थान, सिरपेंच व अन्य उपहार भिजवाये जाते थे। सगाई का दस्तूर वर को बाजोट पर बिठाकर किया जाता था। पुरोहित वर को रोली का तिलक लगाकर अक्षत लगाता था। मोतियों से भी तिलक किया जाता था।[27] सगाई करने आए अतिथियों का स्वागत सत्कार किया जाता था। टीके का दस्तूर सम्पन्न हो जाने पर पुरोहित द्वारा विवाह का शुभ मुहूर्त निकलवा कर विवाह की तिथि निश्चित कर दी जाती थी।

विवाह के शुभ मुहूर्त पर गणेश पूजन किया जाता था। तदन्तर रोली के छींटे लगे सुरंगे कागज पर विवाह का शुभ मुहूर्त लिखकर नारियल सहित वर के घर भिजवाया जाता था। यह "लग्न पत्रिका" कहलाती थी जिसे लेकर प्रायः नाई जाता

था। इस अवसर पर सभी बन्धु–बाँन्धव उपस्थित होते थे जिन्हें हल्दी में रंगे पीले चावल दिये जाते जो विवाह का मुहूर्त तय होने का प्रतीक था।

इसी दिन से विवाह के निमन्त्रण पत्र भी भेजना शुरू हो जाते जिन्हें कमुकुम पत्री कहा जाता था। प्रथम कुमकुम पत्री गणेश जी महाराज के नाम लिखी जाती थी एवं प्रायः गढ़ रणथम्भौर भेजी जाती थी।

विवाह के आठ दस दिन पहले "बान बैठता" था। जिसमें वर या वधू को बाजोट पर बिठाकर सुहागिन स्त्रियों जौ–छड़ी करतीं एवं मंगल गीत गाती थीं। इसके पश्चात वर–वधू को हल्दी उबटन आदि सुगन्धित द्रव्य का लेप किया जाता था जिसे "पीठी करना" कहते है। फिर रात को वर या वधू की बिन्दोरी निकलती थी। वर प्रायः घोड़ी पर एवं वधू बग्गी या रथ में बैठती थी। बारात विदा होने से एक दिन पहले रातीजगा दिया जाता था तथा वर या वधू के हाथों के छापे मायो पूजन की जगह दीवार पर अंकित किये जाते थे। वर या वधू के हाथों में विवाह के शुभ "कांकड डोरडे" बाँधे जाते थे।

अगले दिन कुम्हार के घर जाकर चाक पूजते। इसके पश्चात मामा भात (मायरा) पहनाता तथा वर को पाटे से उतारता। इसी समय वर या वधू को "तेल बान" चढ़ाया जाता। निकासी प्रायः घोड़ी पर ही की जाती थी। निकासी के समय वर पायजामा, अचकन, सिर पेंचयुक्त साफा या पाग, तुर्रा, कलंगी, जूता जोड़ी, तलवार आदि से सुसज्जित हो विवाह हेतु घर से प्रस्थान करता था। निकासी के समय माँ वर को "स्तनपान" कराने तथा भाभी उसकी आँखों में काजल लगाने की रस्म अदा करती थी। वर के साथ बिन्दयाग (विनायक) भी उसके साथ घोड़ी पर बैठता था। "निकासी" के पश्चात देवदर्शन कर वर के साथ बारात विदा हो जाती थी।[28]

उस समय बारात घोड़ों, गाड़ियों, ऊँटों पर जाती थी। बारात में सैंकड़ों आदमी हो जाते थे। बारात के आने पर उसकी पेशवाई में कुछ कोस दूर जाकर उसका स्वागत करने की रीति थी। इसे "सामा जाना" कहा जाता था। माँडे में बारात के आगमन की अग्रिम सूचना नाई देता था। जिसे पुरस्कृत कर कन्यापक्ष की स्त्रियाँ उसकी पीठ पर हल्दी में रंगे हाथों की छाप अंकित कर देती थी जो इस बात का सूचक था कि बारात के आगमन की सूचना पहुँच गई है।

तत्पश्चात कन्या पक्ष के लोग सज धज कर बारात की अगवानी करने जाते जिसे "सामेला" कहा जाता था। वहाँ दोनों पक्षों की ओर से परस्पर भेंट निरछावल होती एवं माँडे के लोग बारात सहित गाँव में प्रवेश करते । बारात को उपयुक्त स्थान पर ठहरा दिया जाता था। बारात के पहुँचते ही उसका स्वागत सत्कार शुरू हो जाता था। सायं "तोरण मारने" से पहले वर पक्ष की ओर से कन्या पक्ष के यहाँ "बरी" भिजवाई जाती थी। "बरी" में कीमती पोशाकें होती थीं जो वरपक्ष की ओर से वधू के लिए लाई जाती थीं। इनमें से एक "फेरों" की बरी होती थी जिसे पहनकर वधू फेरे लेती थी।

वर द्वारा तोरण मारने के बाद सास उसकी आरती उतारती एवं स्वागत करती। तत्पश्चात स्त्रियाँ वर को सूत से नापने, उसके कान में झुनझुना बजाना इत्यादि क्रियाएँ करतीं। उपर्युक्त क्रियाओं के पश्चात वर–वधू फेरों की वेदी पर बैठ जाते। वहाँ वर–वधू का हथलेवा जुड़ाते और फेरो का कार्यक्रम होता। फेरे हो चुकने पर माता–पिता कन्यादान करते एवं स्वजनों द्वारा वधू को हथलेवे में उपहार दिये जाते। कन्या पक्ष के लोग जो आयु मे वधू से बड़े होते वे विवाह के दिन उपवास रखते तथा फेरे होने के बाद व्रत खोलते।

फेरों के बाद ससुर द्वारा वधू की "छोल भरने" का दस्तूर किया जाता है इसमें वधू के आँचल में मेवे , मिठाई , पताशे , उपहार इत्यादि डाले जाते थे। फेरों के अगले दिन वर जुआरी पर आता। तदन्तर देवी देवता ढोकने, कँवर कलेवे की रस्में की जाती थीं। इस दिन रात्रि को "बढार" की प्रसिद्ध दावत होती जिसमें दोनों पक्षों के लोग बैठकर एक साथ भोजन करते। एक दूसरे की मान मनुहार करते और निरछावले होती थी। महफिल में नाच गान होता। गुणीजन और कलावन्त अपनी अपनी कला का प्रदर्शन करते।

मांडे के रनिवास में "अधरात्या" की रस्म होती जिसमें साली सलहजे वर वधू को भोजन कराती। भोजन के उपरान्त वर वधू को प्रथम बार शयनागार में साथ बुलाया जाता जहाँ वे सुहागरात मनाते। इसे "गौरण" की रात भी कहा जाता था।[29] इसी रात वर द्वारा वधू का "मुँह दिखाई" का दस्तूर किया जाता जिसमें वर–वधू को अपनी ओर से कोई बहुमूल्य उपहार देता था।

बढार के दूसरे दिन कन्यापक्ष के लोग बारात के डेरे जाते जहाँ उनका स्वागत सत्कार किया जाता। इस अवसर पर चारणों और भाटों को "त्याग" के रूप में प्रचुर धन भी बाँटा जाता था। इस त्याग की प्रथा के कारण दाता का यश तो होता था परन्तु निर्धन राजपूतों के लिए यह प्रथा अभिशाप हो गई थी। राजपूतों में कन्या वध में यह भी एक परोक्ष कारण रहा था।

इसके पश्चात "समठूणी" होती थी जिसमें वर वधू को पलंग पर गठजोड़े से साथ बिठाया जाता था। जहाँ स्वजन उन्हें "जुहारी" देते थे। उधर बारातियों को भी कन्या पक्ष की ओर से जुहारी की जाती जिसमें प्रत्येक के तिलक कर उसकी पद स्थिति तथा वर के साथ सम्बंध के अनुसार नारियल, सिरोपाव , रूपये आदि दिये जाते थे।

डायजा – "समठूणी" में कन्या को डायजे में दी जाने वाली वस्तुएँ प्रदर्शित की जाती थी।

बारात के विदा होते समय सब वृत्तिदारों को "नेग" चुकाये जाते थे। मंदिरों के लिए भेंट चढ़ाई जाती थी। बारात के वर वधू सहित लौटने पर सीमा में प्रवेश करते ही नारियल वधार कर "काँकड़ पूजा" जाता था। गृहप्रवेश करने पर वर–वधू का मंगल गीतों से स्वागत किया जाता था। सास अपनी नई बहू को सामा लेती। वर के आगे काँसे की सात थालियाँ रख दी जातीं जिन्हें वर अपनी तलवार से सरकाता जाता तथा वधू उन्हें उठाती जाती। गृह के भीतरी कक्ष मे प्रवेश करने पर बहिन "बाड़ रोकने" की रस्म अदा करती जिसे भाई उपहार स्वरुप कुछ देता। इसके पश्चात वे मांया का मुँह देखती तथा उसे मुँह दिखाई का दस्तूर देती। इसी रात को राती जगा भी लगता। वर वधू अपने शयन कक्ष में सोते। उसके बाहर स्त्रियाँ रात भर गीत गान करतीं।

दूसरे दिन वर वधू देवी देवता धोकते। तदन्तर वर वधू के काँकड़, डोरडे खोल दिये जाते एवं वधू को लाख का चूड़ा पहनाया जाता। फिर वधू का पगा लागणी का दस्तूर करवाया जाता था। इसी रात को सब सजातीय बंधु–बांधव जोड़े के साथ बैठकर भोजन करते। नववधू को अपनी ससुराल के स्वजनों से परिचित

कराया जाता था। इसके साथ ही विवाह समारोह सम्पन्न हो जाता था। बहिन बेटियों को सींख दे दी जाती थी। विवाह के कुछ समय बाद मुकलावा (द्विरागमन) होता था।

यहाँ एक और रीति का उल्लेख करना आवश्यक है। बारात के विदा होने पर वर पक्ष की स्त्रियाँ अपना मनोरंजन करने हेतु रात को विशेष कार्यक्रम आयोजित करती थीं, जिसे लोक शब्दावली मे "टूंटया" कहा जाता था। इसमें एक स्त्री पुरूष वेश धारण कर पति बन जाती और दूसरी उसकी पत्नी। अन्य स्त्रियाँ भी इस अभिनय में भरपूर साथ देती (टूंटया के द्वारा वे रातभर अपना मनोंरंजन कर लेती थी)[30]

मृत्यु सम्बन्धी रीति रिवाज – राजपूतों मे चाहे वो राजा हो, जागीरदार हो या साधारण क्षत्रिय, अंत्येष्टी संस्कार की क्रियाएँ प्रायः समान ही होतीं। राजाओं, जागीरदारों के दाह संस्कार, दान पुण्य तथा द्वादशों के आयोजन उनकी उच्च पद स्थिति के अनुरुप अधिक विशाल स्तर पर होते थे। मृत्यु की सूचना को सुगावणी कहा जाता था।[31] यथा जब किसी जागीरदार या उसके परिवार के किसी सदस्य की मृत्यु होती तो मृतक का दाह संस्कार किया जाता जिसमे दिवगंत के वंश के लोगों द्वारा लकडी दिया जाना एक पवित्र कर्तव्य माना जाता था। शमशान से लौटने पर शोक संवेदनार्थ बारह दिन तक की जाने वाली बैठक को 'सांधरवाड़ा' कहा जाता था। मृत्यु के तीसरे दिन तिया किया जाता था। इस दिन मृतक के फूल अस्थि अवशेष चुनकर किसी सम्बन्धी या पुरोहित के साथ पुष्कर या गंगा में विसर्जन हेतु भेज दिये जाते थे। मृतक के निधन की सूचना देने हेतु स्वजनों परिजनों को पत्र भी इसी दिन लिखे जाते थे। ऐसे पत्र को चिट्ठी कहा जाता था। इसमें द्वादशा उस दिन होने वाले पाग बंधाई के दस्तूर की सूचना होती थी। चिट्ठी में भेजे जाने वाले व्यक्ति के नाम व स्थान का उल्लेख के साथ प्रायः इस तरह की शब्दावली लिखी होती थी। अस्थिचयन से द्वादशे तक नित्य गरुड पुराण का पाठ किया जाता था। द्वादशे के दिन 'पाग बँधाई' का दस्तूर होता था जिसमें मृतक की पगड़ी उसके उत्तराधिकारी के बाँधी जाती थी। इसी दिन मृतक का 'मोसर' मृत्युभोज किया जाता जिसमें बन्धु–बांधवों, ब्राहमणों एवं जागीदारी प्रजा आदि को जिमाया जाता था। हजारों आदमी मोसर में जीमते। मृत्यु होने पर सम्बन्धी तथा इष्टजन शोक संवेदनार्थ

बैठने हेतु आते थे जिसे 'मातमपुरसी' कहा जाता था। जागीरदारों में मृतक की शोक के लिए जोर–जोर से रोने का रिवाज था जिसे 'पल्ला लेना' कहा जाता था।[32] आज भी यह प्रथा प्रचलित है। बारहवें को मृतक के निमित्त पलंग, बर्तन, वस्त्र इत्यादि पुरोहित को दान में दिया जाता।

मातमी – 'मातमी' शब्द का अर्थ है 'राजा द्वारा उतराधिकारी को मान्यता प्रदान किया जाना।' कोटा राज्य में जब किसी जागीरदार की मृत्यु हो जाती हो थी तो कोटा महाराव स्वयं उसके आवास पर जाकर उसके उत्तराधिकारी को मान्यता प्रदान करते थे, इसे मातमी होना कहते है। मातमी होने के बाद ही उत्तराधिकारी वैध समझा जाता था। कुछ जागीरदारों के यहाँ महाराव स्वयं जाते थे तो कुछ जागीरदारों को किसी मन्दिर में बुला लिया जाता था । मातमी के समय महाराव, समस्त स्टाफ व अन्य लोग सफेद पोशाक में होते थे। शोक प्रदर्शन के दूसरे दिन उस जागीरदार को महाराव द्वारा महल में बुलाकर रंग का सिरोपाव बक्शा जाता था। सिरोपाव के अलावा जागीरदार की हैसियत या राजदरबार मे स्थिति के अनुसार हाथी या घोड़ा इनायत किया जाता था। जागीरदार को एक वर्ष का मामलात या नकदी राजकोष में जमा करानी होती थी। .कोटा रियासत में महाराव द्वारा किसी प्रमुख जागीरदार को दरबार में बुलाने पर उसे खास रुक्का भेजा जाता था। खास रुक्का विशेष जागीरदारों को ही भेजा जाता था। खास रुक्के से आया सरदार, जागीरदार जब वापस जाता था तो उसे सिरोपाव देकर विदा किया जाता था।[33]

सती प्रथा – अन्य राजपूतों के समान ही कोटा राज्य के जागीरदार परिवारों में भी सती प्रथा रही। सती शब्द उस स्त्री के लिए प्रयुक्त होता जो अपने पति की मृत्यु हो जाने पर उस शव के साथ चिता में जल मरती थी इसे ही सती होना कहते हैं। इसे सहमरण या सहगमन भी कहा जाता है। इसी से मिलता जुलता एक अन्य शब्द है अनुमरण। जब पति की मृत्यु कहीं अन्यत्र हो जाती थी तथा उसका दाह संस्कार भी वहीं कर दिया जाता है तो उसकी भस्म पादुका या पगड़ी आदि किसी चिन्ह के साथ उसकी विधवा के चिता करने को अनुमरण कहा जाता है। इतिहास मे सती होने के अनेक उदाहरण हैं। कोटा मे कनवास के पास कोलाना मे सती माता का मन्दिर है।[34] सती होना अनिवार्य नहीं था प्रायः उच्च स्तर तक ही सती प्रथा सीमित रही।[35]

शिष्टाचार सम्बन्धी रीति रिवाज – जागीरदारों में शिष्टाचार सम्बंधी शब्दों का बहुत ध्यान रखा जाता था । कोटा राज्य में खाना खाने के लिए जीमण आरोगना[36] या कांसा आरोगना[37] शब्द प्रयोग में लिया जाता था । यहाँ आरोगना शब्द के माध्यम से खाने के भाव को ही नहीं अपितु भोजन करने वाले के प्रति आरोग्य भाव को प्रगट किया जाता था । इसी भाँति विराजना, बैठने के लिए, पधारना आने या जाने के लिए, देवलोक होना या धाम पधारना मृत्यु होना, आसा होना गर्भ होना, पोढना सोने के लिए, सीख करना या सीख देना विदा होने या विदा करने के लिए इत्यादि ऐसे शब्द हैं जो जागीरदार परिवारों में पारस्परिक व्यवहार में प्रयुक्त होते रहे हैं जो अनेक उच्च सांस्कृतिक स्तर के परिचायक हैं।[38]

यह प्रथा अन्य किसी भी देशी या विदेशी जाति या समुदाय मे नहीं पाई जाती[41] कोटा में भी जागीरदार परिवारों में पारस्परिक सम्बोधन में विशिष्ट प्रणाली प्रचलित रही है। यथा पिता को पुत्र प्रायः अंदाता (अन्नदाता) दाता, पापासा आदि कहकर पुकारते हैं। इसी भाँति पुत्र को यदि उसका पिता जीवित हो तो 'कुँवर' एवं दादा जीवित हो तो 'भँवर' कहकर पुकारा जाता है। बड़े भाई को 'दादभाईसा' कहकर पुकारा जाता है। पुत्रियों को अपने पितृगृह में 'बाईसा' कहकर पुकारा जाता है। राजपूती शिष्टाचार के अन्य नियमो में नंगे सिर अंत;पुर (रावले) में न जाना , जाते वक्त नंगे सिर किसी के सामने न आना, अपने माता या बड़ों की उपस्थिति में अपने पुत्र–पुत्रियों को गोद में न लेना, उनके समक्ष नंगे सिर न जाना, किसी विशिष्ट अतिथि के आगमन पर उसकी पेशवाई में सामा जाना अथवा विवाहादि अवसरों पर अतिथि को मंगल कलशों तथा गीतगान के साथ स्वागत अभिनन्दन करना, किसी शुभ कार्य या घटना की सूचना देने वाले बधाईदार को पुरस्कृत करना आदि उल्लेख हैं। शिष्टाचार की उक्त रीतियों के बारे मे कर्नल टॉड ने उचित ही लिखा है – ``The manners of those days must have corresponded with advanced stage of refinement"[42]

राजदरबार सम्बन्धी रीति–रिवाज – .राजस्थान के प्रत्येक रजवाड़े के अपने कायदे कानून होते थे। उन्हीं के अनुरूप ठिकानेदारों की श्रेणियाँ एवं दरबार मे स्थान सुनिश्चित किया जाता था। कोटा दरबार द्वारा भी यहाँ के जागीरदारों को उन्हीं

नियमानुसार आतिथ्य दिया जाता था। कोटा रियासत में सेवा के अनुसार जागीरदारों का पद निर्धारित होता था। कोटा के जागीरदारों को दो श्रेणियों में विभाजित किया गया था यथा देशथी एवं हजूरथी। देशथी जागीरदार अपने स्थानों पर रहकर निकटस्थ गाँवों की लूटमार विद्रोही इत्यादि से रक्षा करने एवं शांति व्यवस्था बनाने रखने का कार्य करते वहीं हजूरथी जागीरदार कोटा दरबार के साथ बाह्य आक्रमण के समय मुगल सेना में सम्मिलित होते थे। कोटा राज्य मे ताजिमी सरदारों की संख्या 36 थी। कोटा दरबार के दरीखाने के बैठक में जागीरदार के बैठने का क्रम निश्चित था। कोटा महाराव के निकट सम्बन्धी किशोरसिंहोत परिवार के जागीरदार थे।[43]

राजा द्वारा सम्मानित करने की विविध रीतियाँ – कोटा दरबार द्वारा जागीरदारों को उनकी सेवाओं के बदले में समय–समय पर सम्मानित किया जाता था जैसे लाख पसाव देना, कुरब देना, सिरोपाव देना, विशिष्ट व्यक्तियों की पेशवाई में सामा जाना इत्यादि। 1857 की क्रान्ति के समय महाराव रामसिंह द्वितीय ने स्वामिभक्तिपूर्वक सेवा करने वाले जागीरदारों को पुरस्कृत किया । आप सरदारसिंह को मांगरोल निजामत में चेनपुरिया गाँव, कविराजा भवानीदान को साँगोद की निजामत में विनोद गाँव, तथा ठाकुर लक्ष्मणदान अतरालिया एवं पालक्या जागीर में मिले। महाराजा शिवनाथसिंह को चरेल नामक गाँव दिया गया।[44] इसी प्रकार महाराव उम्मेदसिंह द्वितीय ने सैन्य विभाग में अपने उल्लेखनीय योगदान के लिए पलायथा के कुँवर औंकारसिंह एवं इसके पश्चात गोविंद सिंह कोयला को कोटा राज्य सेना का जनरल ऑफिसर कमान्डिंग नियुक्त किया गया।[45]

कोटा महाराव द्वारा ताजिमी सरदारों को कुछ विशेषाधिकार प्रदान किये हुये थे। केवल ताजिमी सरदार एवं उनकी ठकुरानियाँ ही पैर में स्वर्णाभूषण पहनकर महल में आ सकती थीं। सभी जागीरदारों को पैर में स्वर्णाभूषण पहनने की अनुमति नहीं थी।[46] इस प्रकार कोटा रियासत में जागीरदारों से सम्बन्धित राजदरबार के अपने नियम कायदे थे जिनका व्यवहार में पूर्ण पूर्ण रुप से पालन किया जाता था।

अन्य रीति रिवाज – 18 वीं शताब्दी से 20 वीं शताब्दी के मध्य भी रुढ़िवाद उसी रुप में दृष्टिगोचर होता है जैसा मध्य युग में था। धार्मिक एवं सामाजिक अनुशासन

के नियम कठोर थे जिनका पालन करना निश्चित एवं जागीरी क्षेत्रों की प्रजा के लिए अनिवार्य था। ऐसा ना करने पर उन्हें दंड दिया जाता था। जाति बाहर करना, हुक्का पानी बन्द कर देना सामाजिक बहिष्कार के उदाहरण हैं। जागीर क्षेत्र में जागीरदार को वहीं अधिकार प्राप्त थे जो महाराव को रियासत में।

(ग) किसान एवं जागीरदार

19वीं सदी के प्रारम्भ तक किसानों के प्रति जागीरदारों का दृष्टिकोण अत्यन्त उदार रहता था। जागीरी क्षेत्रों में किसानों को सन्तुष्ट रखने का प्रयत्न किया जाता था। भूमि पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध थी। जागीर की सम्पन्नता कृषकों के सम्पन्न होने पर ही निर्भर थी। भूमि पर खेती करने के लिए परम्परागत अधिकार सुरक्षित रहते थे और राजस्व उपज के आधार पर ही लिया जाता था। 19 वीं सदी के अन्त में यह परिदृश्य बदलना आरम्भ हो गया और 20 वीं सदी में किसानों में असन्तोष व्याप्त होने लगा था।

19 वीं सदी के अन्तिम तीन दशकों में कृषकों की स्थिति में तेजी से परिवर्तन हुआ। अंग्रेजी शासन के (पाश्चात्य) के प्रभाव के फलस्वरूप जागीरदारों की स्थिति में परिवर्तन आया। यह परिवर्तन किसानों की खराब स्थिति के लिए उत्तरदायी हुआ। यह परिवर्तन जागीरदारों और ठिकानेदारों की धातुमुद्रा की बढ़ती हुई आवश्यकता के फलस्वरुप हुआ। सामन्ती चाकरी को नकद राशि में बदल देना और वकील कोर्टस द्वारा जागीरदारों पर जुर्माना निर्धारित करने से इन ठिकानेदारों की नकद मुद्रा की आवश्यकता बढ़ गई। चाकरी को नकद धन में परिवर्तित करने का एक परिणाम यह भी हुआ कि जागीरदार और उनकी प्रजा में अलगाव पैदा होना आरम्भ हो गया। पहले जागीरदारों को बाह्य आक्रमण के विरूद्ध अथवा दरबार की चाकरी के लिए अपनी प्रजा की आवश्यकता होती थी।इसलिए उसका दृष्टिकोण किसानों के प्रति उदार व पितृ तुल्य होता था।

मुगलकाल में राजस्थान की विभिन्न रियासतों के राजा अपने सामन्तों के साथ युद्धों में भाग लिया करते थे। कोटा के राव मुकुन्द सिंह ने कितने ही राजपूतों को घुड़सवारों की चाकरी के लिए जागीरें दे रखी थीं। प्रत्येक जागीरदार को समय पड़ने पर घोड़ों की संख्या के साथ कोटा राज्य की सेना में सम्मलित होना पड़ता था[47]

किन्तु बाद में जैसे–जैसे अंग्रेजी प्रभुत्व स्थापित होता गया राजाओं की जागीरदारों पर निर्भरता कम होती गई। सन् 1818 की सन्धियों के पश्चात् राजाओं पर अंग्रेजी प्रभाव बढ़ता ही गया। कोटा राज्य द्वारा सर्वप्रथम दिसम्बर 1817 में अंग्रेजों से सन्धि की गई थी। इस सन्धि की धाराओं के अनुसार कोटा राज्य को अंग्रेजी संरक्षणत्व प्राप्त हो गया था। कोटा महाराव और उनके उत्तराधिकारी अंग्रेजी सरकार के मातहत बन गये थे। इस स्थिति में अब जबकि महाराव को जागीरदारों की सैनिक सहायता की आवश्यकता नहीं रही थी, जागीरदारों को भी दरबार की चाकरी हेतु प्रजा की आवश्यकता कम अनुभव होने लगी। बदले हुए परिवेश में राजपूतों के साथ ही अन्य जातियों के लोग जो सैनिक हुआ करते थे, वे भी कृषि कार्य से संलग्न हो गये। विभिन्न जातियों ने भी अपने परम्परागत व्यवसायों को छोड़कर कृषि कार्य को जीविका का साधन बना लिया था। इन जातियों के ऐसा करने सम्बन्धी आँकड़े निराशाजनक हैं।[48]

कृषि श्रमिक काफी संख्या में उपलब्ध होने से जागीरदारों का कृषकों के प्रति दृष्टिकोण बदलने लगा था। एक दूसरा बड़ा परिवर्तन जागीरदारों के रहन सहन में आने लगा था। कुछ जागीरदारों की नई पीढ़ियाँ मेयो कॉलेज की पढ़ी हुई थी और उसी के अनुसार वे पश्चिमी जीवन पद्धति की ओर अधिक आकृष्ट थीं।

कोटा रियासत के आप रणधीर सिंह (कोयला), भैरोसिंह (खेडली), भँवर गजेन्द्र सिंह कुनाड़ी, आप गोरधन सिंह (सोजपुरा), ठाकुर गिरवर सिंह (करवाड़), कुँवर दुर्जनशाल (डाबरी), कुँवर केशव सिंह (बम्बूलिया), कुँवर गोपाल सिंह, कुँवर लक्ष्मण सिंह, कुँवर ऋषिराज सिंह (कुनाड़ी) इत्यादि मेयो कॉलेज के विद्यार्थी रहे थे।[49]

पश्चिमी शैली से खानपान पश्चिमी वेशभूषा की आवश्यकता रेजीडेण्ट एवं अन्य अंग्रेज अधिकारियों के आगमन के समय उनकी व्यवस्था एवं पश्चिमी शैली से प्रगतिशील कहलवाने की महत्वाकांक्षा, अंग्रेजी शराब का चलन आदि ऐसी परिस्थितियाँ थीं जिनका सामूहिक प्रभाव व्यापक हुआ। जागीरदारों के पास ऐसा कोई उत्तरदायित्व नहीं रहा था जिसके लिए उन्हें प्रयत्न एवं परिश्रम करने की आवश्यकता हो। फलस्वरूप अकर्मण्यता एवं विलासिता तेजी से बढ़ रही थी। देशी

शराब के स्थान पर विदेशी शराब का प्रचलन बढ़ रहा था। यह उल्लेखनीय है कि 1891–1901 के दशक में कल्लालों (देशी शराब बनाने वालों) की संख्या में 50 प्रतिशत की कमी हुई।[50]

राजस्थान में अंग्रेजी नियन्त्रण के उपरान्त जागीरदार अधिक गैर जिम्मेदार हो गये थे। बड़े एवं मध्यम स्तर के अधिकांश जागीरदारों ने राजधानी में अपने आवास बना लिए थे। जागीरदार द्वारा अपनी हवेलियों का निर्माण, महलों को सजवाना, पश्चिमी शैली साज–सज्जा करवाना इत्यादि कार्य आरम्भ हो गये थे। ठिकानेदारों को इन आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए नकद मुद्रा की आवश्यकता होने लगी। इसलिए 19 वीं सदी के अन्त व 20 वीं सदी के आरम्भ में जागीरदारों द्वारा नई लागतें लगाई गईं। यह परिवर्तन कोटा सहित राजस्थान की समस्त रियासतों में देखने को मिलता है। जीवन पद्धति में यह मौलिक बदलाव उस परम्परागत जागीरदारी प्रथा को शोषणवादी जागीरदारी प्रथा में बदलने में सहायक रहा। अब कृषकों एवं जागीरदारों के सम्बन्ध में एक नया मोड़ आने लगा था। अब जागीरदारों के पास ऐशो–आराम के अतिरिक्त करने का कुछ नहीं रह गया था। इस समय में अधिकांश जागीरदार राज्य के मुख्यालय पर रहने लगे थे एवं उनके किसानो के साथ समीपता के सम्बन्ध नहीं रह गये थे। यह अनुपस्थित भू–स्वामी की स्थिति बड़ी अजीब होती जा रही थी। इसका परिणाम था जागीरदारों का भूमि, कृषि और किसानों के संदर्भ में पूर्णतः अनभिज्ञ होना।[51]

यह एक निर्विवाद सत्य है कि जागीर क्षेत्र के भू स्वामी स्वयं किसान नहीं थे बल्कि वे राजस्व प्राप्तकर्ता थे एवं किसानों को किराये, बटाई अथवा पट्टे पर कृषि कर हेतु भूमि देते थे। व्यवहार में भूमि सम्बन्धी कार्य के निश्चित नियम नहीं थे एवं जागीरदार व किसान के मध्य अनुबन्ध एक पक्षीय होता था। प्रत्येक ठिकाने या जागीर में एक कामदार होता था जिसकी नियुक्ति स्वयं जागीरदार किया करता था। कामदार जागीरदार के नाम पर किसानों के साथ भूमि सम्बन्धी अनुबन्ध करता था। सिद्धान्तः कामदार जागीर में प्रशासनिक अधिकारी होता था किन्तु भूमि व भू राजस्व सम्बन्धी मामलों मे उनके पास वास्तविक शक्तियाँ थीं।

भू राजस्व के मामलों में ठिकानेदार या जागीरदार स्वयं बहुत कम ध्यान देते थे।[52] किसान एवं भूस्वामी के मध्य कामदार की स्थिति बिचौलिये की थी जो भू राजस्व के निर्धारण एवं वसूली का कार्य किया करता था। कामदार के सहायक के रूप में चौधरी, कानूनगो, पटवारी, पटेल, पुलिस या शहना, कँवरिया आदि अनेक कर्मचारी अथवा मध्यस्थ हुआ करते थे। इस सभी का भार किसानों के ऊपर लदा हुआ था। इनको जागीरदार से वेतन के स्थान पर राजस्व का एक भाग मिलता था। इनका हित राजस्व की वसूली से सीधा जुड़ा हुआ था एवं इस कार्य में भारी मुस्तैदी दिखाते थे। वास्तविकता तो यह थी कि जागीरदार अपने राजस्व में से इनको कुछ भी नहीं देता था बल्कि राजस्व के साथ इनके नाम पर किसानों से लाग बाग वसूल करता था। राजस्व के निर्धारण एवं वसूली के समय ये अधिकारी एवं कर्मचारी गाँवो में जाते थे तथा इनका व्यय भी उठाना पड़ता था। वास्तविकता यह थी कि किसानों के ऊपर जागीरदारों एवं उनके वफादार सेवकों का एक बहुत बड़ा वर्ग किसानों के श्रम पर चल रहा था।[53]

जिन जागीर या ठिकानों में भूमि प्रबन्ध कामदार अकेला नहीं कर सकता था अथवा नहीं करता था वहाँ क्षेत्र विशेष की भूमि ठेके पर धनी वर्गों को सार्वजनिक नीलामी द्वारा दे दी जाती थी। यह व्यवस्था किसानों का भार और अधिक बढ़ाती थी। सार्वजनिक नीलामी द्वारा भू राजस्व में काफी वृद्धि हो जाती थी। ये ठेकेदार एवं इजारेदार स्थायी नहीं होते थे तथा इनको निश्चित अवधि के लिए भूमि मिली होती थी। ये शुद्ध रूप से लाभार्जन के उद्देश्य से ठेके लेते थे तथा किसानों से इनका कोई भावात्मक सम्बन्ध नहीं था। स्वाभाविक तौर पर किसानों के साथ इनका व्यवहार कठोर एवं निर्दयता पूर्ण होता था। अतः ये किसानों से भू राजस्व वसूलते समय किसी प्रकार की उदारता नहीं दिखाते थे। अनेक बार साहूकार एवं महाजनों के हाथों में जागीर या जागीर विशेष का कोई भाग गिरवी रूप में आ जाता था। ऐसी स्थिति में किसान साहूकार अथवा महाजनों के दोहरे शोषण का शिकार होता था। भूस्वामी एवं बोहरा एक होने का परिणाम था किसानों की पूर्ण दासता।[54]

जागीर क्षेत्रों में भू राजस्व के कोई निश्चित नियम या कानून नहीं बल्कि यहाँ किसी भी प्रकार के भूमि सम्बन्धी दस्तावेज रखने के नियम भी नहीं थे।[55] जागीर क्षेत्रों

में भूमि बन्दोबस्त लगभग नहीं होते थे। कोटा राज्य में प्रथम बन्दोबस्त से पूर्व सन् 1875 में 1495 गाँव थे जिनमें से आधे गाँव उदक जागीर में थे। सन् 1880 में राज्य में कुल 1340 गाँव थे जिनमे से 200 गाँव जागीर में व 7 गाँव घोड़ो की चाकरी श्री जी के भण्डार के तहत थे।[56] 1923 से 1928 ई. के तृतीय बन्दोबस्त के समय राज्य में जिले व निजामतों की संख्या द्वितीय बन्दोबस्त के समान ही थी लेकिन गाँवो की संख्या अब 27773 हो गई थी। जागीर एवं माफी 428 गाँवो में द्वितीय बन्दोबस्त की व्यवस्था को ही रहने दिया गया।[57] 1923 में राजा का कुल भूमिकर 2873856 रूपये था। तृतीय बन्दोबस्त के बाद यह 3196417 रूपये हो गया। बन्दोबस्त के बाद राज्य में कुल भूमिकर में 11.25 प्रतिशत की वृद्धि हुई।[58]

सांराशतः यह कहा जा सकता है कि 1817 से 1948 ई0 मध्य कोटा राज्य के जागीर क्षेत्र में भू राजस्व व्यवस्था संतोषजनक नहीं थी। किसानों की स्थिति अच्छी नहीं थी एवं अधिकांश मामलों में कृषकों को स्थायी भूस्वामित्व प्राप्त नहीं था। यह राजस्व प्रणाली 1817 से आरम्भ हुई अर्द्ध–औपनिवेशिक एवं अर्द्ध सामन्ती व्यवस्था का परिणाम थी। 19वीं एवं 20वीं सदी में किसान व जागीरदारों के सम्बन्धों का परिदृश्य बदल चुका था। जहाँ पहले किसान व जागीरदार के सम्बन्धों में तनाव व वैमनस्य व्याप्त होने लगा था। इसका मूल कारण अंग्रेजी शासन का प्रभाव था जिसने इन परम्परागत सम्बन्धों पर प्रहार कर तनावपूर्ण वातावरण में परिवर्तित कर दिया था।

(घ) जागीर क्षेत्रों में लोक कल्याणकारी कार्य एवं कलात्मक क्षेत्र में योगदान

राजस्थान का सांस्कृतिक वैभव अपने आप में अद्वितीय रहा है। राजस्थान की प्रत्येक रियासत कला एवं साहित्य में अपनी अलग शैली के लिए जानी जाती है। राजस्थान की रियासतों, रजवाड़ों, ठिकानों तथा सुरुचि सम्पन्न व्यक्तियों द्वारा समय–समय पर लोक कल्याण एवं कला के क्षेत्र में काफी योगदान दिया जाता रहा है जो तत्कालीन संस्कृति का परिचय देता है। इन कलात्मक कार्यों से तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक स्थिति की जानकारी के साथ ही संस्कृति की भी पूर्ण जानकारी प्राप्त होती है। राजस्थान का इतिहास पराक्रम की गाथाओं से ओत–प्रोत रहा है तथा साहित्य व कला उच्च कोटि के सांस्कृतिक मूल्यों से परिपूर्ण है।[59]

कोटा रियासत भी हमेशा से ही शक्ति, शौर्य, बलिदान व भक्ति का केन्द्र रही है। कोटा राज्य अपनी गौरवमयी परम्पराओं को संजोये हुये कला व साहित्य का केन्द्र बना रहा है। कोटा राज्य के गढ़, हवेलियाँ, मंदिर, अन्य इमारतें, समाधियाँ, भित्तिचित्र, कुएँ, बावड़ियाँ अपनी कला व सौन्दर्य की अलग पहचान लिए हुये वर्तमान में भी तत्कालीन समाज को चित्रित करते हुये दिखाई पड़ते हैं।

कोटा के नरेशों द्वारा समय–समय पर लोक कल्याण हेतु अनेक कार्य करवाये गये। महाराव उम्मेदसिंह द्वितीय का समय तो कला व साहित्य के विकास का स्वर्ण युग कहलाता है। कोटा के नरेशों के साथ ही यहाँ के जागीरदारों ने भी लोक कल्याण एवं कला व साहित्य के विकास में अपना अभूतपूर्व योगदान दिया है। जागीरदारों द्वारा अपने–अपने जागीरी क्षेत्रों में जनता के लिए समय–समय पर कुएँ, तालाब, बावड़ियों का निर्माण करवाया गया। जागीरदार मंदिरों के निर्माण एवं अन्य खर्चे हेतु भूमिदान दिया करते थे।

बम्बूलिया के जागीरदार महाराजा देवसिंह के समय में बम्बूलिया में 1766 ई. में हीराधाय की स्मृति में पूर्वाभिमुखी लक्ष्मीनाथ जी का मंदिर बनवाया गया। इस मंदिर के प्रवेश द्वार पर दो विशालकाय हाथी हैं। यहाँ एक शिलालेख भी लगा हुआ है।[60] इस प्रकार गैंता के महाराजा बैजनाथ सिंह का आटोण में स्मारक बना हुआ है।[61] बम्बूलिया महाराजा जोरावर सिंह द्वारा अपने पिता महाराजा देवसिंह की स्मृति में बम्बूलिया के क्षारबाग में स्थापत्य कला के प्रतीक एक छतरी का निर्माण करवाया। यहाँ एक शिलालेख भी लगा हुआ है जो अस्पष्ट है। महाराजा जोरावर सिंह ने बमूल्या में महल बनवाये तथ डोरा भी फिरवाया।[62] महाराजा जोरावर सिंह की पत्नी मानसिंहोत जी ने सन 1839 में महलों के सामने दाऊ जी का मंदिर एवं समीप एक कुण्ड भी निर्मित करवाया एवं शिलालेख लगवाया।[63]

इनकी डायजवाल ने महलों के दूसरी ओर समीप में रघुनाथ मंदिर एवं 1840 ई. में नदी किनारे चरेलिया गाँव में एक मंदिर निर्माण की शुरूआत भी की थी जिनका पूर्ण निर्माण महाराजा महताब सिंह (प्रथम) द्वारा करवाया गया। इन्होंने बम्बूलिया के महलों के ऊपर गुंबद व प्रवेश द्वार का निर्माण करवाया। इसके अतिरिक्त अपने नाम से महताबपुरा नामक ग्राम बसाया। यहाँ मंदिर बनवाकर

उसका डोरा भी फिरवाया।[64] महाराजा महताब सिंह ने महाराजा जोरावसिंह की स्मृति में क्षारबाग में एक छतरी बनवायी।

इसी प्रकार बम्बूलिया के महाराजा भीमसिंह ने भी अपने पिता की स्मृति में क्षारबाग में छतरी का निर्माण करवाया। बम्बूलिया के महलों के समीप मदनमोहन एवं बाहर जानकी राय मंदिर इनके समय की ही देन है। इनके कनिष्ठ भ्राता महाराजा नरसिंह ने सन् 1872 में जानकीराय मंदिर को सौ बीघा भूमि भेंट की तब इस मंदिर के पुजारी गोरधन दास थे। नरसिंह सिंह द्वारा भूमिदान का हुकुम दो ताम्र पात्रों पर उत्कीर्ण है। इन्होंने जागीर के 5 गाँवों से 25 रूपये पुण्यार्थ के लिए मंजूर किये।[65] ये ताम्रपात्र पुजारी गोरधन के वंशज ब्रजमोहन गौतम अध्यापक के यहाँ अभी भी मौजूद हैं।

महाराव शत्रुसाल (द्वितीय) द्वारा नरसिंह को श्रीपुरा कोटा में रहने के लिए एक आलीशान हवेली दी गई जो 'बम्बूलिया हाउस' के नाम से चर्चित है। महाराजा नरसिंह ने ये नजर निवास बाग भी निर्मित करवाया। ये अपने आराध्य देव मदनमोहनजी के नाम पर मदनमोहन नरसिंह के ठाकुर की छाप का निशान लगाया करते थे।[66] महाराजा नरसिंह की सन् 1888 में पलायथा के अमरसिंह के विवाहोत्सव पर बारात के लौटते समय धतूरिया नामक गाँव में संदिग्धावस्था में मृत्यु हुई। उनकी स्मृति में धतूरिया में छतरी बनाई गई जहाँ ये धतूरिया महाराज के नाम से पूजनीय हैं। यहाँ भाद्रपद माह की नवमी को प्रतिवर्ष मेला भरता है।

कोटड़ा के जयसिंह (महाराव उम्मेदसिंह द्वितीय के बड़े भ्राता) बम्बूलिया ठिकाने में गोद आये थे।[67] इन्होंने बम्बूलिया के महलों के चारों ओर एक विशाल परकोटा बुर्जों सहित बनवाया। महाराजा जयसिंह की पत्नी जादोन जी ने बद्रीनाथ में एक धर्मशाला बनवाई। जादोन जी द्वारा 1937 में बमूल्या में 1800 रूपये खर्च कर एक कुण्ड निर्मित करवाया तथा जड़ाव सागर नाम से एक बाग भी लगवाया। इससे सम्बन्धित एक शिलालेख बमूल्या गढ़ पैलेस की कचहरी में रखा हुआ है जो पूर्व में बाग में था किन्हीं कारणों से यहाँ रख दिया।[68] कोटड़ा के महाराजा छगनसिंह ने कोटड़ा के गढ़ महलों का निर्माण बपावर के समीप परवन नदी के बाएँ तट पर करवाया।[69]

करवाड़ के जागीरदारों द्वारा गढ़ का निर्माण करवाया गया। वि.स. 1765 में यहाँ के जागीरदार आनंदसिंह ने गढ़ के परकोटे को वर्तमान रूप दिया व नक्कार खाना बनवाया। उन्होंने गढ़ में सबसे ऊँचा महल जिसे आनन्द महल कहते है, बनवाया। इन्होंने गढ़ में पीताम्बर राय जी का एवं आशापुरा माता का मंदिर बनवाया। ठाकुर साहब आनन्दसिंह की माता जादूण जी साहिब ने करवाड़ ग्राम में मदनमोहन जी का मंदिर बनवाया। सन् 1872 (विक्रम संवत् 1930) महाराज सौभाग्यसिंह द्वारा पूर्व निर्मित सोमेश्वर महादेव मंदिर (जहां स्वयं प्रकट चमत्कारी शिवलिंग है) के स्थान पर वर्तमान मंदिर बनवाया था।[70]

कोटा राज्य के कुनाड़ी ठिकाने के जागीरदार राजविजय सिंह झाला ने बीजासन माता का मंदिर बनवाकर वहाँ माता की प्रतिमा को स्थापित किया। यह प्रतिमा डेढ़ सौ वर्ष पूर्व कुन्हाड़ी में स्थित क्षारबाग में इमली के पेड़ के नीचे मिली थी। प्रत्येक नवरात्रा की पंचमी और अष्टमी को माता के मंदिर में मेला भरता है। मंदिर परिसर में अनेक लोक देवियाँ, सती बाई, लाल बाई इत्यादि भी प्रतिष्ठित हैं। यहाँ भैरूजी का मंदिर भी स्थित है।

कोटा रियासत के जागीरदारों द्वारा अपने लिए आलीशान हवेलियों का निर्माण करवाया गया। इन्हीं हवेलियों में एक प्रमुख हवेली झाला हवेली है जो कि कोटा गढ़ के परकोटे से लगी हुई है। इस हवेली का निर्माण कोटा राज्य के प्रमुख जागीदार एवं फौजदार झाला जालिमसिंह द्वारा अपने निवास के लिए किया गया था। यहाँ रहकर झाला जालिमसिंह कोटा महाराव पर नजर व नियंत्रण रखता था।[71] इसलिए कोटा के महारावों को इस हवेली के निर्माण से काफी चिढ़ थी।[72] इस हवेली का प्रवेश द्वार का सुदृढ़ एवं आकर्षक है। यह लाल रंग का बना हुआ है। पूरे दरवाजों को पत्थरों की खुदाई करके अलंकृत किया गया है। दरवाजे के तीनों ओर पुष्प पत्तियों का अंलकरण किया गया है। यह हवेली तीन तरफ से किले जैसी है। इस हवेली में केवल ऊपरी मंजिल पर ही खिड़की व झरोखे बने हुए हैं। इस हवेली में 80 कमरे व 50 बरामदे हैं तथा इस भवन की विशेषता यह है इसके भीतर के पतले व लम्बे रास्ते सीधे किसी कमरे में नही पहुँचते हैं। यह हवेली पाँच मंजिला है।

झाला जालिम सिंह कला में रूचि रखते थे। झाला ने इस हवेली में अपने निवास के कक्षों में सुन्दर चित्रकारी भी करवाई थी। यहाँ कोटा शैली की चित्रकारी अत्यन्त उच्च कोटि की है। यहाँ चित्रित भित्ति चित्र कोटा के सर्वाधिक सुन्दर चित्र माने जाते हैं। इस हवेली की दीवारों पर काँच के गोल, तिकोने, चौकोर टुकड़ों पर चूने की पतली परत पर काटा गया सुन्दर अलंकरण है। आखेट के सुन्दर चित्र भी उकेरे हुए हैं। काँच के ये टुकड़े काले रंग का आभास देते हुए सफेद रंग के अलंकरण को और अधिक प्रभावशाली बना देते हैं।[73] झाला हवेली का शिकार चित्रण कोटा का शिकार का श्रेष्ठतम और प्रतिनिधि चित्रण है। दुर्भाग्य से हवेली नष्टप्रायः है। कोटा के इतिहास एवं कला वैभव की परम्परा की शृंखला में झाला हवेली का अपना विशिष्ट स्थान है।

कोटा राज्य की हवेलियों में ही एक और प्रसिद्ध हवेली बड़े देवता जी की हवेली है। इस हवेली का निर्माण राजगुरू श्री लाल जी ने 1855 मे करवाया था।[74] श्री बड़े देवताजी श्री लाल जी को कोटा राज्य के दीवान झाला जालिमसिंह का आश्रय व समर्थन प्राप्त था।[75]

बड़े देवता जी की पाँच मंजिला विशाल हवेली अपनी दीवारों, दरवाजों, छत, फर्श, खम्बे, खिड़कियों इत्यादि की कलात्मकता व शिल्प सौन्दर्य से प्रख्यात है। इस हवेली की दीवारों पर अंकित भित्ति चित्रांकन उस समय की धार्मिक मान्यताओं, राजदरबार की जीवन शैली तथा तत्कालीन सामाजिक परिवेश को प्रकट करती है। हवेली के एक कक्ष में विजयादशमी पर तत्कालीन नरेश महाराव उम्मेदसिंह द्वितीय की सवारी का दृश्य, घोड़ों, हाथियों, ऊँटों, पैदल, सवारों, तोपखाने, नक्कारखाने आदि लवाजमें के साथ दरबार की सवारी का दृश्य अंकित है। इसके अलावा ढोला मारू, होली खेलते राधा कृष्ण, पुरूष वेश में नारी, हाथियों की लड़ाई के चित्र चित्रित हैं।[76] यह हवेली तत्कालीन जागीरदारों व प्रतिष्ठित व्यक्तियों के कला में दिये गये योगदान का सुन्दर उदाहरण हैं।

कोटा राज्य के कोटड़ा ग्राम के जागीरदार महाराजा छगनसिंह के पुत्र उदयसिंह को महाराव शुत्रशाल द्वारा गोद लिया गया था। यह उदयसिंह ही महाराव उम्मेदसिंह द्वितीय के नाम से कोटा की गद्दी पर बैठे।[77] छगनसिंह को कोटा में

किशोरपुरा से रेतवाली की ओर जाने वाले रास्ते पर एक हवेली प्रदान की गई थी। यह हवेली अपनी परम्परागत राजपूत स्थापत्य कला के लिए प्रसिद्ध है। यह हवेली कोटा राज्य की प्रमुख हवेलियों में से एक रही है जो कोटा रियासत की शीर्ष पदाधिकारियों के निवास के लिए बनाई गईं थीं।[78]

इस हवेली का निर्माण दो चरणों में हुआ था। प्राचीन महल जो राई जी के महल कहलाते थे, का निर्माण प्रथम चरण में तीन सौ वर्ष पूर्व हुआ था। दूसरे भाग का निर्माण लगभग 150 वर्षों पूर्व महाराजा छगनसिंह द्वारा करवाया गया। यह हवेली आयताकार एवं तीन मंजिला बनी है। इसका मुख्य प्रवेश द्वार ऊँचा एवं अलंकृत है। प्रवेश द्वार के अन्दर तिबारियाँ और एक चौक है तथा भूतल पर अनेक कमरे बने हुए हैं। प्रवेश द्वार के ऊपर बींचों बीच एक झरोखा बना है जो अलंकृत खम्बों पर टिका हुआ है। हवेली में स्तम्भों पर अलंकरण, गुम्बदीय छत, झरोखे, स्तम्भों पर हाथियों की मूर्तियाँ इत्यादि बने हुये हैं। कोटा भवन शैली में निर्मित झरोखे एवं जालियों के उत्कृष्ट नमूने इस हवेली में देखे जा सकते हैं। यह हवेली कोटा की कला के आकर्षण का केन्द्र है।

कोटा के जागीरदार एवं फौजदार झाला जालिमसिंह ने सूरजपोल में अन्य हवेली का निर्माण करवाया था। इसे झाला हाउस भी कहते हैं। जिस प्रकार झाला ने अपनी स्थिति मजबूत करने एवं महाराव पर नजर रखने के उद्देश्य से गढ़ के अन्दर हवेली का निर्माण करवाया। उसी प्रकार अपने अनेक कार्यों को तथा कार्यप्रणाली को महाराव से छिपाने के उद्देश्य तथा सुरक्षा की दृष्टि से इस दूसरी हवेली अर्थात झाला हाउस का निर्माण करवाया।[79] इस हवेली में पानी निकालने की काफी अच्छी व्यवस्था थी।

यह एक विशाल भवन है। इसमें तीन बड़े चौक, दो सौ से अधिक कमरे तथा 70 बरामदे हैं। कलात्मक तिबारियों और सुन्दर चौकों से सुसज्जित यह भवन 18वीं शताब्दी की राजपूत स्थापत्य कला का सुन्दर नमूना है। इसमें दीवान जालिम सिंह के परिवार व सैनिक रहा करते थे।[80] इस भवन का मुख्य आकर्षण मंजिल पर स्थित बारहदरी है जो कि कलात्मक स्तम्भों पर निर्मित है। अभी यहाँ सरकारी कार्यालय चलते हैं।

इसी प्रकार झाला जालिमसिंह ने अपने पैतृक जागीरी ग्राम नान्ता में भी महल का निर्माण करवाया था। जालिमसिंह के पूर्वज झाला माधोसिंह जो कि गुजरात के हलवद से कोटा आया था और सेना में भर्ती हो गया। थोड़े समय बाद वह फौजदार बनाया गया और उसे नान्ता की जागीर मिल गई ।[81] राजपूत शैली में निर्मित नान्ता महल परकोटे से घिरा हुआ है। यह दीवार सुरक्षा की दृष्टि से अत्यधिक मोटी है। इसमें प्रवेश द्वार के बाद स्वागत द्वार बना हुआ है। स्वागतद्वार के दायीं ओर पश्चिम में सैनिकों की बैरक भी बनी हुई थी। झाला जालिम सिंह के काल में बना महल का कलात्मक भाग अन्य भागों की अपेक्षा अच्छी अवस्था में है। इस इमारत में प्रवेश के बाद दो चौक हैं। यहाँ एक दरबार हाफल है जहाँ जालिमसिंह अपना नियमित दरबार लगाता था।[82]

नान्ता महल के जनाना महल में 20 कमरे, बड़े हॉल और हवादार तिबारियाँ बनी हुई हैं। यह पाँच मंजिला है। जनाना महल में प्रवेश करते ही एक बड़ा सा प्रांगण है जिसमें चार बाग पद्धति (मुगल शैली) से बना उद्यान है जिसमें फव्वारे लगे हुए हैं। इस उद्यान में अष्टकोणीय स्तम्भों से युक्त एक छतरी बनी हुई है। महल की दीवारों पर हाथियों की लड़ाई के दृश्य उकेरे गये हैं। नान्ता के इस महल के सबसे ऊपर वाले हिस्से पर तड़ित चालक[83] लगा हुआ है। ये आकाशीय बिजली से इमारत की रक्षा करता है।

इस महल की सबसे बड़ी विशेषता यहाँ की जल अभियांत्रिकी है। किले के अन्दर अनेक कुण्डों से पानी को ऊपर खींचने की व्यवस्था बेजोड़ है। राजपूत शैली में निर्मित नान्ता महल एक बहुत बड़ा महल है जिसे जालिमसिंह ने दो हजार व्यक्तियों के रहने के लिए बनवाया था। यहाँ लगभग 250 कमरे तथा 525 खिड़कियाँ हैं। झाला जालिमसिंह की पुत्री अजब कँवर बाई के विवाह के समय अनेक राजपूत शासक, मराठा सरदार एवं कर्नल टॉड भी इसी महल में ठहरे थे।[84] महल के आन्तरिक सजावट, दीवाने आम, दीवाने खास, जनाना महल, चारबाग शैली निर्मित उद्यान, फव्वारे, किलेनुमा दीवारे से सब मिलकर यहाँ मुगल प्रभाव दर्शाते हैं।[85]

यहाँ संचालित विद्यालय के शिक्षक श्री बहादुर सिंह हाड़ा की प्रेरणा से बच्चों के परिसर में स्थित सैकड़ों साल पुराने राममंदिर की सफाई करके इसकी ड्योढ़ियों, दीवारों तथा प्रवेश द्वारों को रंग से पुताई कर फिर से जीवंत बना दिया है।[86]

कोटा राज्य के जागीरदारों द्वारा अपने–अपने जागीर क्षेत्रों मे गढ़ों का निर्माण करवाया। इन गढ़ों के माध्यम से हमें उस समय के जागरीदारो के रहन–सहन की जानकारी मिलती है। इन्ही गढ़ों में प्रसिद्ध गढ़ है इन्द्रगढ़ का गढ़ जो एक पहाड़ी के ढलान पर पहाड़ी के पश्चिम में स्थित है। यह किला वर्तमान में हाड़ौती के इतिहास की जानकारी प्रदान करने में अपनी भूमिका निभाता है।

इन्द्रगढ़ की स्थापना इन्द्रशाल ने अणधोरा किले पर अधिकार करके अपनी राजधानी के रूप में स्थापित कर की थी। उसने अपनी राजधानी की सुदृढ सुरक्षा हेतु एक पहाड़ी के ढलान पर दोहरे परकोटे से निर्मित किले का निर्माण करवाया। इन्द्रशाल के वंशज इन्द्रसालोत हाड़ा कहलाये।[87] इस किले में प्रवेश करने हेतु एक साधारण सा 15 फीट ऊँचा दरवाजा लगा हुआ जिसमें सुरक्षा की दृष्टि से लोहे के एक डेढ़ फुट के बाहर निकले हुए दाँते लगे हुए है। किले के अन्दर राजपरिवार के अतिरिक्त कर्मचारी एवं सेवकों के आवास भी बने हुये थे। किले में राज्य की सेना में काम में लिए जाने वाले हाथी एवं घोड़ों को रखने के लिए गजशाला एवं अश्व शालाएँ बनी हुई थीं। राजपरिवार के मौज, शौक एवं शिकार हेतु पक्षियों एवं पशुओं को कैद रखने हेतु शेर के पिंजरे एवं कबूतर शालाएँ इत्यादि बनाये गये थे।

किले में महाराजा सरदार सिंह द्वारा निर्मित सरदार महल देखने में अत्यन्त सुन्दर हैं जिसमें कई छतरियाँ लगी हुई हैं। छतरियों में लगे तोड़े उल्टे हैं जो हिन्दू, ईरानी शैली के मिश्रित रूप में प्रतीत होते है। यह महल तीन खण्डों में बँटा हुआ है। इसका एक भाग हवामहल है जिसमें हवा के लिए कई खिड़कियाँ लगी हुई हैं। हवामहल के एक भाग में दरीखाना बना हुआ है जिसमें आम दरबार लगता था। इस महल में अनेक चित्र चित्रित है जो हमें राज परिवार के राजसी ठाठ–बाठ एवं दरबारियों, कर्मचारियों एवं सेवकों के आर्थिक एवं सांस्कतिक जीवन की झलकियाँ प्रदान करते हैं। महल के दरवाजों एवं दीवारों पर काँच की कारीगरी भी की गई है। किले में राजपरिवार के सदस्यों हेतु स्नानघर एवं शौचालय बने हुए है। महलों में

पानी की सुविधा हेतु पास में ही एक कुँआ है जिससे पानी महलों की टंकियों में पहुँचाया जाता था। कुएँ में पानी घूमते हुए बाहर लाने के यंत्र लगे हुए हैं।[88]

इन्द्रगढ़ के महाराजा शिवदान सिंह ने इन्द्रगढ़ के समीप शिवदान सागर का निर्माण करवाया जो एक जल स्त्रोत है। किले में राजपरिवार के अध्ययन हेतु सरस्वती भण्डार बना हुआ है। जिसकी स्थापना महाराज शिवसिंह द्वारा की गई। इन्होंने वेदान्त पर लगभग 20 पुस्तकें लिखी। इन्होंने किले में शिवमहल बनाया तथा उसी में समाधि ली जहाँ आज भी उनकी समाधि बनी हुई है।[89]

महाराज शिवसिंह के पुत्र संग्रामसिंह 1856 ईस्वी में सिंहासन पर आसीन हुए। इन्होंने किले छापाखाना लगवाया। उन्होंने 200 छोटी बड़ी काव्य पुस्तकें लिखीं। किले में भैरूजी, बालाजी, आशापालामाता जी, शीतलामाता इत्यादि के मंदिर स्थित हैं। किले के स्थापत्य एवं उसमें निर्मित चित्रों से हमें तत्कालीन आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक जीवन की जानकारी मिलती है।

इसी प्रकार हमें खातौली के किले से हाड़ौती एवं मध्यप्रदेश की मिश्रित संस्कृति का ज्ञान प्राप्त होता है। खातौली के किले का निर्माण इन्द्रगढ़ के संस्थापक एवं इन्द्रसालोत हाड़ा वंश के महाराजा इन्द्रशाल के पौत्र अमरसिंह ने करवाया था। इन्होंने दौलत खाँ पठान को हराकर सन 1673 में खातौली में अपना राज्य स्थापित किया था।[90]

महाराजा अमर सिंह के पौत्र अजीतसिंह ने इस किले में महल एवं शहरपनाह बनवाया। खातौली का किला 10–12 फीट ऊँचे परकोटे से घिरा हुआ है। परकोटे के दो दरवाजे है। परकोटे के अन्दर मजार है। किले के महलों के चारों ओर दीवार के रूप में कमरों की ऊँची श्रेणी है जिसके दो दरवाजे हैं। एक दक्षिणी दरवाजा और दूसरा पश्चिम दरवाजा। पश्चिमी दरवाजे के उत्तर में रसोई घर बने हुए हैं जिसके बाहरी बरामदे के बाहर 50 किलो वजनी घंटा लगा हुआ है[91] जो गढ़ में रहने वाली प्रजा के अधिकारी, कर्मचारी एवं सेवकों को समय–समय पर जागरूक करने के लिए बजाया जाता था। किले में सूर्य नारायण भगवान का मंदिर है। मंदिर की स्थापत्य कला मध्यकालीन शिल्पकला एवं स्थापत्य कला की झलक देती है जो हिन्दू शैली का प्रतीक भी है। गढ़ में कई अलग–अलग महल हैं जो अलग–अलग समय पर

खातौली महाराजाओं द्वारा बनवाये गये हैं। वहाँ नियुक्त सुरक्षा गार्ड श्यामलाल द्वारा बताया गया[92] कि खातौली के गढ़ को इंग्लैण्ड के रॉबर्ट नाम अंग्रेज ने खरीद रखा है जो वर्ष में 1–2 बार वहाँ आता था।

खातौली के दुर्ग में दुगई झाली महल, बाई साहब का बारहद्वारी महल, भाभा साहब का महल, गबला महल इत्यादि बने हुए हैं। महलों के अतिरिक्त मोटर गैरेज, अश्वशाला, गजशाला आदि बनाये गये हैं। इन महलों में चित्रकारी भी की हुई थी। महलों की छतों एवं दीवारों पर चित्र बनाये गये थे। इन चित्रों से हमें तत्कालीन समय में राज परिवार एवं साधारण प्रजा के रहन सहन, खान–पान, वेशभूषा एवं धार्मिक स्थिति की जानकारी मिलती है।

महलों के बीच में लक्ष्मीजी का मंदिर हैं। इस मंदिर में गुप्त खजाने को छुपाकर रखने हेतु 16 बक्से बने हुए हैं। इसके अतिरिक्त महलों में अनेक अलमारियाँ बनी हुई हैं। खातौली के दुर्ग से हमें हिन्दू धर्म के पालन एवं प्रभाव की जानकारी मिलती है। खातौली के महाराजा जोरावर सिंह द्वारा महलों में भिति चित्र बनवाये गये एवं सरस्वती भण्डार की स्थापना की गई।[93] किले में स्थित पीरसाहब की दरगाह इस बात का सबूत है कि समय–समय पर यहाँ मुस्लिम प्रभाव भी पड़ता रहा है। दुर्ग से ज्ञात होता है कि इस क्षेत्र में हाड़ौती क्षेत्र के रीति रिवाजों का प्रचलन अधिक था परन्तु सपाड़ क्षेत्र का प्रभाव भी यहाँ ज्यों का त्यों देखने को मिलता है। यहाँ के भित्ति चित्रों से हमें उनके पहनावे, आभूषणों एवं संस्कृति की जानकारी प्राप्त होती है। इस प्रकार खातौली का किला हमें वहाँ के जागीरदारों की स्थापत्य कला, शिल्प कला में रूचि की जानकारी तो देता ही है साथ ही राजपरिवार एवं आम जनता के जीवन की झाँकी भी प्रस्तुत करता है।

पीपल्दा ठिकाने के जागीरदारों द्वारा भी पीपल्दा में किले का निर्माण करवाया गया था। पीपल्दा स्थानीय राज्यों गैंता, पूसोद एवं पीपल्दा की सम्मिलित राजधानी था इसलिए इसे त्रिराज्य गाँव भी कहा जाता था।

हरदावत वंश के विजयराम के पाँचवें पुत्र दौतलसिंह[94] ने पीपल्दा में महल बनवाया था जिसे छोटी हवेली कहा जाता था। पीपल्दा का किला तीन भागों में बँटा हुआ है जिन्हें पीपल्दा ठिकाना, पूसोद ठिकाना एवं गैंता ठिकाना के नाम से पुकारते

हैं। इस किले में यहाँ के जागीरदार अमरसिंह, जगतसिंह एवं दौलत सिंह ने अपनी राजधानी बनाकर अपने–अपने महल बनवाये जिन्हें बड़ी हवेली, मंझली हवेली एवं छोटी हवेली के नाम से पुकारा जाता था। यह गढ़ सूखनी की सहायक खाड़ी नदी के मध्य में तीन राज्यों की राजधानी होने एवं तीन राज्यों की सीमा पर होने से आपसी झगड़े का केन्द्र स्थल रहा है। तेजाजी के झगड़े में पूसोद और गैंता के दो भाइयों के मारे जाने के बाद कोटा दरबार ने वहाँ असिसटेण्ट कोटरियात हाकिम दरबार कार्यालय खोला था।[95] वर्तमान भवन में तहसील का कार्यालय है।

पीपल्दा गढ़ के पश्चिम हिस्से को पीपल्दा ठिकाना के नाम से जाना जाता था। इस महल में प्रवेश करने हेतु एक विशाल दरवाजा है जो 15–18 फुट ऊँचा है जिसके मजबूत लकड़ी का दरवाजा लगा हुआ है। इस हवेली में 2–3 मंजिला महल बना हुआ है। हवेली में एक मंदिर भी बना हुआ है। मंदिर के बाहरी बरामदे में पत्थरों के खम्बे बने हुए हैं जिन पर बारीकी से कारीगरी की गई है। इस भाग में चित्रकारी भी की गई है।

पूसोद ठिकाने के महल में प्रवेश हेतु एक विशाल दरवाजा है। महलों के बाहर एवं अन्दर चित्र बने हुए है। पुसोद ठिकाने के महलों का निर्माण जगतसिंह द्वारा करवाया गया था जिसके सामने का हिस्सा ठाकुर सा. गुलाबसिंह ने बनवाया।[96] पूसोद गढ़ के सामने बाहर चौक है जिसको राम चौक कहते हैं। पूसोद के गढ़ में रानियों को पालकियों में लाते, ले जाते हुए चित्र बने हुए हैं।

पूसोद गढ़ के उत्तर में गैंता का गढ़ है। यह हवेली दो दरवाजों के बाद आती है। इसके बाहरी दरवाजें को हाथी पोल कहते थे क्योंकि इस दरवाजे के ऊपरी छोर पर हाथी लगाये गए थे। भीतरी दरवाजा एक साधारण दरवाजा है। इस दरवाजे को सूरज पोल कहते है।

पीपल्दा गढ़ में इन हवेलियों एवं महलों में कोटा बूंदी के दुर्गों की तरह ना तो चित्रकारी ना ही शिल्पकारी और ना ही काँच की जड़ाई की हुई है। सूरजपोल के अंदर बिहारीजी का मंदिर बना हुआ है। इस मंदिर में शिल्पकला बहुत बारीकी से की गई है। पीपल्दा के किले में साधारण सी नजर आने वाली स्थापत्य कला दिखाई देती है किन्तु इतिहास में इसका महत्व भी कम नहीं कहा जा सकता है।

गैंता के किले का निर्माण ठाकुर अमरसिंह द्वारा करवाया गया था।[97] इस किले के भीतर के महल 80 से 100 फीट ऊँचाई पर एक चबूतरे पर बने हुये नजर आते है। इस महल के दीवारों के चारों किनारों पर चार विशाल गोल बुर्जे बनवाई गई थी। महल की शत्रुओं से रक्षा करने हेतु एक गहरी खाई बनवाई गई थी जो 40 फीट गहरी एवं 20–25 फीट चौड़ी है। इन महलों की सुरक्षा हेतु गढ़ के पूर्व दिशा के दोनों ओर से एक विशाल दरवाजा बनाकर गाँव को घेरा हुआ था । इस प्रकार गैंता पूरा गाँव एक परकोटे में था।

स्थानीय निवासी प्रेमशंकर जी उम्र 72 वर्ष का कहना है कि गैंता गढ़ की बाहरी दीवार के चार दरवाजे सूरजपोल, जैलीवाला दरवाजा, बाहरी दरवाजा और भीतरी दरवाजा थे। इस गढ़ में परकोटे के भीतर 13 मंदिर थे। यहाँ सीताराम जी, मुरली मनोहर, नृसिंह भगवान का, कृष्ण भगवान एवं माताजी के मंदिर थे।[98]

वर्तमान में गढ़ के महलों के खण्डहर ही शेष हैं। यहाँ जंगली बबूल तथा झाड़ियाँ होने से इन खण्डहरों में जाना भी कठिन हो गया है। स्थानीय निवासियों का कहना है कि इस गढ़ में माताजी का मंदिर इन महलों के बीच में था तथा चौक में एक घण्टा था जो प्रति घण्टा बजता था। इस महल में रहने वाले राजपरिवार के लिए पानी की सुविधा हेतु दो कुएँ थे। इन महलों में जनाना महल भी था। जिसमें चित्र बने हुए थे। इस गढ़ में स्नानघर व रसोई घर बने हुए थे। इस दुर्ग के लकड़ी के दरवाजों पर लोहे के दरवाजे इस बात का सबूत है कि इस दुर्ग पर शत्रुओं के आक्रमण होते रहे होंगे।

इस प्रकार इन दुर्गों के माध्यम से हमें अपने अपने जागीर क्षेत्रों में जागीरदारों द्वारा करवाये गये निर्माण कार्य की जानकारी मिलती है। इस दुर्गों सुरक्षा व्यवस्था, शिल्पकला, स्थापत्य कला, चित्रकारी ठिकानेदारों की अभिरूचि के साथ ही आर्थिक स्थिति को भी प्रकट करती है।

सन्दर्भ

1. गुणसार, पत्र 147, नैणसी की ख्यात पत्र 27, राजप्रकाश, पत्र 93, दस्तूर कौमवार भाग 23, पत्र 345, भण्डार न. 1, बस्ता न. 72 (1800 ई.)
2. श्रीवास्तव, डॉ. जगतनारायण, महाराव उम्मेद सिंह द्वितीय एवं उनका समय, पृ. 229
3. (अ) डॉ. जगतनारायण, महाराव उम्मेद सिंह द्वितीय एवं उनका समय, पृ. 230
   (ब) शर्मा, देवीशंकर, स्मृति पुन्ज, पृ. 5
4. श्रीवास्तव, डॉ. जगतनारायण, महाराव उम्मेद सिंह द्वितीय एवं उनका समय, पृ. 232
5. शर्मा, देवीशंकर, स्मृति पुन्ज, पृ. 5–6
6. (अ) प्राईवेट सेक्रेटरी कार्यालय रिकार्ड (कोटा) ग्रुप 1, फाइल सं. एम/8, चौबेजी का पत्र शिवप्रताप जी के नाम
   (ब) श्रीवास्तव, डॉ. जगतनारायण, महाराव उम्मेद सिंह द्वितीय एवं उनका समय, पृ. 235
7. चूंडावत, रानी लक्ष्मी कुमारी, सांस्कृतिक राजस्थान, पृ. 10,11,12,13
8. चूंडावत, रानी लक्ष्मी कुमारी, रजवाड़ी लोकगीत (गणगौर) पृ. 16,17
9. चूंडावत, रानी लक्ष्मी कुमारी, रजवाड़ी लोकगीत (गणगौर) पृ. 23
10. (अ) निर्णय सिन्धु
    (ब) मनोहर, डॉ. राघवेन्द्र सिंह, राजस्थान के रजवाड़ो का सांस्कृतिक वैभव, पृ. 141
11. शर्मा, पं. लज्जाराम, पराक्रमी हाड़ा राव, पृ 287
12. टॉड, कर्नल जेम्स, एनल्स एण्ड एन्टीक्वीटीज ऑफ राजस्थान, भाग–2, पृ. 374
13. चूंडावत, रानी लक्ष्मी कुमारी, सांस्कृतिक राजस्थान, पृ. 23 से 30 तक
14. चूंडावत, रानी लक्ष्मी कुमारी, सांस्कृतिक राजस्थान, पृ. 23 से 30 तक
15. श्रीवास्तव, डॉ. जगतनारायण, महाराव उम्मेद सिंह द्वितीय एवं उनका समय, पृ. 208–209
16. शर्मा , डॉ. जी.एन., सोशल लाईफ इन मिडाईवल राजस्थान, पृ. 179–70
17. शर्मा, देवी शंकर, स्मृति पुन्ज, पृ. 22
18. श्रीवास्तव, डॉ. जगतनारायण, कोटा के महाराव उम्मेद सिंह द्वितीय एवं उनका समय, पृ. 220

19. श्रीवास्तव, डॉ. जगत नारायण, कोटा के महाराव उम्मेद सिंह द्वितीय एवं उनका समय, पृ. 220–21

20. (अ) श्रीवास्तव, डॉ. जगत नारायण, कोटा के महाराव उम्मेद सिंह द्वितीय एवं उनका समय, पृ. 222–23
(ब) शर्मा, देवी शंकर स्मृति पुन्ज, पृ. 10–15

21. टॉड, कर्नल जेम्स, एनल्स एण्ड एन्टी क्वीटीज ऑफ राजस्थान, भाग–1, पृ. 422

22. (अ) श्रीवास्तव, डॉ. जगत नारायण, कोटा के महाराव उम्मेद सिंह द्वितीय एवं उनका समय, पृ. 210
(ब) बही नित मिति, महकमा बक्शी खान, उमरावान,राज. कोटा बाबत् सम्वत् 1995 (ई. 1938–39)

23. श्रीवास्तव, डॉ. जगतनारायण, कोटा के महाराव उम्मेद सिंह द्वितीय एवं उनका समय, पृ. 212

24. मनोहर, सं. डॉ. शम्भूसिंह, वीर सतसई, पृ. 28

25. ठाकुर साहब श्री भँवर सिंह ठिकाना नोनेरा द्वारा बतलाया गया।

26. टॉड, कर्नल जेम्स, एनल्स एण्ड एन्टीक्वीटीज ऑफ राजस्थान, भाग–2, पृ. 58

27. मनोहर, डॉ. राघवेन्द्र सिंह, राजस्थान के रजवाड़ों का सांस्कृतिक वैभव, पृ. 173

28. श्रीमती दुर्गा देवी निवासी ग्राम बघेरा द्वारा जानकारी दी गई।

29. मनोहर, सं. डॉ. शम्भूसिंह, वीर सतसई, पृ. 274

30. मनोहर, डॉ. राघवेन्द्र सिंह, राजस्थान के रजवाड़ो का सांस्कृतिक वैभव, पृ. 181

31. मनोहर, डॉ. राघवेन्द्र सिंह, राजस्थान के रजवाड़ो का सांस्कृतिक वैभव, पृ. 188–198

32. श्रीमती उर्मिला देवी निवासी बारां द्वारा जानकारी दी गई

33. (अ) ठाकुर लक्ष्मण दान, कोटा राज्य का इतिहास,
(ब) शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास भाग प्रथम, पृ. 446

34. श्री जितेन्द्र सिंह हरदावत निवासी नोनेरा इटावा द्वारा बताये अनुसार।

35. उपाध्याय, डॉ. रामजी, प्राचीन भारत की सामाजिक संस्कृति, पृ. 92

36. शर्मा, सं. दशरथ, दयाल दास री ख्यात, भाग 2, पृ. 22

37. श्री अरविन्द सक्सेना द्वारा बताये अनुसार।

38. मनोहर, डॉ. राघवेन्द्र सिंह, राजस्थान के रजवाड़ो का सांस्कृतिक वैभव, पृ. 184

39. टॉड, कर्नल जेम्स, एनल्स एण्ड एन्टीक्वीटीज ऑफ राजस्थान, भाग 1, पृ. 493

40. (अ) अग्रवाल डॉ. वासुदेव शरण, पाणिनी कालीन भारत, पृ. 103
(ब) मनोहर, डॉ. राघवेन्द्र सिंह, राजस्थान के रजवाड़ो का सांस्कृतिक वैभव, पृ. 185

41. शेखावत, डॉ. सुरजन सिंह, शेखावाटी प्रदेश का प्राचीन इतिहास, पृ. 58–59

42. टॉड, कर्नल जेम्स, एनल्स एण्ड एन्टीक्वीटीज ऑफ राजस्थान, भाग–1, पृ. 484

43. शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास भाग 2, पृ. 412–13

44. शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास भाग 2, पृ. 627

45. श्रीवास्तव, डॉ. जगत नारायण, कोटा के महाराव उम्मेद सिंह द्वितीय एवं उनका समय, पृ. 291

46. शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास भाग 1, पृ. 304

47. शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास भाग प्रथम, पृ. 144

48. सेन्सस, 1921, राजपूताना , जिल्द 2, भाग 2 , पृ. 290–295

49. एडमिनिस्ट्रेटिव रिपोर्ट ऑफ कोटा ,सन् 1937

50. (अ) सेन्सस, 1901, राजपूताना , जिल्द , भाग 1 , पृ. 203
(ब) जैन,डॉ. एम. एस. आधुनिक राजस्थान का इतिहास, पृ. –281

51. शर्मा, डॉ. ब्रजकिशोर, आधुनिक राजस्थान का इतिहास पृ. 76

52. शर्मा, डॉ. ब्रजकिशोर, आधुनिक राजस्थान का इतिहास, पृ. 77

53. शर्मा, डॉ. ब्रजकिशोर, आधुनिक राजस्थान का इतिहास, पृ. 77

54. शर्मा, डॉ. ब्रजकिशोर, आधुनिक राजस्थान का इतिहास, पृ. 77

55. शर्मा, डॉ. ब्रजकिशोर, आधुनिक राजस्थान का इतिहास, पृ. 77

56. शर्मा, डॉ. ब्रजकिशोर, आधुनिक राजस्थान का इतिहास, पृ. 77

57. राजस्थान राज्य अभिलेखागार कोटा, बस्ता न. 134, 1890

58. स्मिथ, ए.डी., तृतीय बन्दोबस्त रिर्पोट, पृ. 4 व 87

59. शर्मा, ब्रजराज, स्मारिका, सूर्यमल्ल मिश्रण शताब्दी समारोह, बून्दी, पृ. 12

60. यादव, गजेन्द्र सिंह, किशोरसिंहोत हाड़ाओं के ठिकानें, पृ. 55

61. शर्मा, डॉ. मथुरालाल कोटा राज्य का इतिहास भाग 2, पृ. 476

62. यादव, गजेन्द्र सिंह, कोटा के किशोरसिंहोत हाड़ाओं के ठिकानें, पृ. 57

63. यादव, गजेन्द्र सिंह यादव, कोटा के किशोर सिंहोत हाड़ाओं के ठिकानें, पृ. 58

64. यादव, गजेन्द्र सिंह यादव, कोटा के किशोर सिंहोत हाड़ाओं के ठिकानें, पृ. 59

65. स्थानीय निवासी ब्रजमोहन गौतम द्वारा बनाया गया।

66. सिंह, जसवन्त, राजस्थान के रजवाड़ी गीत, भाग 3, पृ. 285 व 309

67. यादव, गजेन्द्र सिंह, कोटा के किशोरसिंहोत हाड़ाओं के ठिकानें, पृ. 59–60

68. गहलोत, जगदीश सिंह, राजपूतानें का इतिहास (कोटा राज्य), भाग 2, पृ. 153

69. यादव, गजेन्द्र सिंह, कोटा के किशोरसिंहोत हाड़ाओं के ठिकानें, पृ. 102

70. सिंह, गिरवर, शार्दुल प्रकाश ग्रन्थ, करवाड़ राजवंश और उसका संक्षिप्त इतिहास, पृ. 35

71. शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास भाग 2, पृ. 474

72. (अ) .शास्त्री, आर.पी., झाला जालिम सिंह पृ 360–361
(ब) कोटा राज्य अभिलेखागार, सम्वत 1858 3.1

73. कुलश्रेष्ठ, डॉ. अर्चना, झाला जालीमसिंह की हवेली के भित्ति चित्र, हाड़ौती का पुरातत्व, पृ. 99–100

74. वर्मा, डॉ. बद्रीनारायण, कोटा भित्ति चित्रांकन परम्परा , पृ. 41

75. वर्मा, डॉ. बद्रीनारायण, कोटा भित्ति चित्रांकन परम्परा, पृ. 41

76. वर्मा, डॉ. बद्रीनारायण, कोटा भित्ति चित्रांकन परम्परा, पृ. 41

77. शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास, भाग 2, पृ. 699

78. गुप्ता , सीमा, कोटा नगर का पुरातात्विक सर्वेक्षण, पृ. 213

79. शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास भाग 2, पृ. 474

80. शास्त्री, डॉ. आर.पी., झाला जालिमसिंह, पृ. 362–63

81. शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास भाग 2, पृ. 175

82. .शास्त्री, डॉ. आर.पी., जालिम सिंह एण्ड हिज टाईम्स, पृ 256

83. तड़ित चालक :– किसी भी ऊँची इमारत पर सबसे उपर किसी धातु का एक नुकीला सिरा निकाला जाता है। इससे जुड़ा धातु का तार इमारत या भवन के बीच से होता हुआ जमीन में गड़ा रहता है। इसे तड़ित चालक कहते है।

84. .शास्त्री, डॉ. आर.पी., जालिम सिंह एण्ड हिज टाईम्स, पृ 256–257

85. इन्टैक द्वारा तैयार रिपोर्ट के अनुसार

86. हाड़ा, बहादुर सिंह, के अनुसार ,

87. हाड़ा, शिवदान सिंह, कोटरियात का संक्षिप्त इतिहास (1605 से 1954), पृ. 33

88. स्थानीय निवासी गजेन्द्र सिंह राजावत के अनुसार ।

89. हाड़ा, शिवदान सिंह, कोटरियात का संक्षिप्त इतिहास, पृ. 37

90. हाड़ा, शिवदान सिंह, कोटरियात का संक्षिप्त इतिहास, पृ. 42

91. रवि शर्मा, दुर्ग सुरक्षा कर्मचारी उम्र 28 वर्ष के बताए अनुसार।

92. श्यामलाल, दुर्ग निरिक्षक कर्मचारी के बताए अनुसार।

93. हाड़ा, शिवदान सिंह, कोटरियात का संक्षिप्त इतिहास, पृ. 44

94. हाड़ा, शिवदान सिंह, कोटरियात का संक्षिप्त इतिहास, पृ. 30

95. हाड़ा, शिवदान सिंह, कोटरियात का संक्षिप्त इतिहास, पृ. 25

96. (अ) मूलचन्द सेन स्थानीय निवासी उम्र 78 वर्ष के बताए अनुसार।
(ब) हाड़ा, शिवदान सिंह, कोटरियात का संक्षिप्त इतिहास, पृ. 28

97. हाड़ा, शिवदान सिंह, कोटरियात का संक्षिप्त इतिहास, पृ. 26

98. स्थानीय निवासी प्रेमशंकर उम्र 72 वर्ष के बताये अनुसार

षष्टम् अध्याय

सिंहावलोकन

षष्टम् अध्याय

सिंहावलोकन

शोधार्थी को शोध के दौरान जो निष्कर्ष मिले उनको फलक पर फैलाना सम्भव नहीं है, फिर भी शोधार्थी ने जो प्रयास किया है वह अध्यायवार अधोलिखित है।

शोध प्रबंध के **प्रथम अध्याय** ''कोटा राज्य की पृष्ठभूमिं'' के अन्तर्गत कोटा राज्य के उद्‌भव, भौगोलिक क्षेत्र एवं राजनीतिक इतिहास इत्यादि की जानकारी दी गई है। राजस्थान के दक्षिण पूर्व में 13वीं शताब्दी में बून्दी के हाड़ा राज्य का उद्‌भव हुआ। उसी की एक जागीर के रूप में कोटा का अस्तित्व प्रकट हुआ। कोटा क्षेत्र भौागोलिक दृष्टि से मालवा के पठार पर स्थित था। यहाँ विध्यांचल पर्वत से निकलकर चर्मण्यवती नदी ने अपने निर्मल जल की अत्यधिक आपूर्ति की है। यहां घने जंगल व पत्थर की खानें भारी संख्या में थी, अतः यहां अनेक दुर्ग, मन्दिर, हवेलियों व मन्दिरों का निर्माण सहज हो गया।

1631 ईस्वीं में बून्दी के राजकुमार राव माधोसिंह को कोटा का स्वतंत्र राज्याधिकार सौंप दिया। तब से माधोसिंह के वंशज स्वतंत्रता प्राप्ति तक यहाँ शासन करते रहे। मुगलों, मराठों व अंग्रेजों के प्रभाव में उनका राजतंत्र विकसित हुआ। राज्य की स्थापना के साथ ही सामन्तों का अस्तित्व आरंभ हो गया था। राजस्थान के राजपूत राज्यों में सामन्त व्यवस्था का उद्‌भव वहां के शासकों की कुलीय परम्परा से हुआ था। राज्य को केवल शासक की सम्पत्ति ही न मानकर कुलीय सामन्तों की सामूहिक धरोहर माना जाता था। राज्य के सामन्त अपने आपको कुलीय सम्पत्ति अर्थात राज्य का हिस्सेदार मानते थे। इस प्रकार राजस्थान के सामाजिक व राजनैतिक जीवन में सामन्त प्रथा का एक विशेष स्थान रहा है।

शोध प्रबंध के **द्वितीय अध्याय** "कोटा राज्य में जागीर प्रथा का उद्‌भव एवं विकास" के अन्तर्गत कोटा राज्य में जागीर प्रथा की स्थापना के बारे में बताया गया है। राव माधोसिंह के पांच पुत्र थे– मुकुन्दसिंह, मोहनसिंह, जुझारसिंह, कन्हीराम और किशोरसिंह। मुगल साम्राज्य की सेवा हेतु बल्ख एवं बदक्शा जाते समय राव माधोसिंह अपने राज्य का शासन मुकुन्द सिंह के सुपुर्द कर गये थे। मुकुन्दसिंह ने अपने पिता की आज्ञा से महाराजाधिराज की पदवी धारण कर ली। राव माधोसिंह के अन्य चार पुत्रों को जागीरें प्रदान की गई। इस व्यवस्था से कोटा राज्य में जागीर प्रथा का उद्‌भव हुआ।

कोटा रियासत में कईं प्रमुख ठिकानें थे जिनका अपना विशिष्ट महत्व था। पलायथा, कोटड़ा, कोयला, सांगोद, कुन्हाड़ी, नान्ता इत्यादि के अतिरिक्त इन्द्रगढ़, करवाड़, पीपल्दा, पुसोद, बलवन, गैंता, खातौली व आंतरदा जिन्हें कोटरियात कहा जाता था, भी कोटा के प्रमुख ठिकानें रहें हैं। कोटा के प्रमुख जागीरदारों को उनके पद व प्रतिष्ठा के अनुसार ही यहाँ के दरीखाने की बैठक में स्थान प्राप्त था। महाराव द्वारा उन्हें विशेष अधिकार व उपाधियाँ प्रदान की गई थी।

शोध प्रबंध के **तीसरे अध्याय** कोटा राज्य की कम्पनी से संधि तथा उसके पश्चात् जागीर प्रथा का स्वरूप के अन्तर्गत ईस्ट इण्डिया कम्पनी से संधि से पूर्व की जागीर व्यवस्था के स्वरूप का वर्णन करते हुए संधि के पश्चात जो इस व्यवस्था में परिवर्तन आया, उनका उल्लेख है। मुगलों के समय कोटा राज्य की जागीर प्रथा का स्वरूप मुगलों की मनसबदारी प्रथा के समान था। कोटा के शासक भी मुगल बादशाहों के मनसबदार ही थे अतः उन्होंने यहाँ पर भी जागीरी व्यवस्था को मुगलों के अनुसार की विकसित किया। 19वीं सदी के प्रारंभ से ही भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी का आधिपत्य स्थापित हो चुका था। मुगल साम्राज्य का अस्तित्व समाप्ति की ओर अग्रसर था। दिसम्बर, सन् 1817 में कोटा राज्य की कम्पनी से संधि के पश्चात कोटा राज्य कम्पनी का अधीनस्थ हो गया था। संधि के पश्चात कोटा की शासन व्यवस्था में पुनः एक बदलाव देखने

को मिलता है। कोटा राज्य के प्रमुख जागीरदार एवं प्रशासक झाला जालिम सिंह की अंग्रेजों से मित्रता का परिणाम कोटा का विभाजन कर पृथक झालावाड़ राज्य की स्थापना के रूप में देखने को मिलता है। अंग्रेजों ने कोटा के महारावों को शक्तिहीन बनाने एवं झाला जालिमसिंह एवं उसके वंशजों के हितों को सुरक्षित रखने प्रयास किया। वहीं हाड़ा जागीरदारों ने सदैव कोटा महाराव का साथ दिया। इस प्रकार अंग्रेजों की कूटनीति ने शासक व जागीरदारों के संबंधो को प्रभावित किया। अंग्रेजों ने झाला जालिमसिंह से गुप्त सन्धि करके कोटा नरेश महाराव किशोरसिंह को उन्हीं के झाला दीवान की शर्तों पर राज्य करने को विवश कर दिया। यह कोटा राज्य के इतिहास का सर्वाधिक रूचिकर घटनाक्रम था।

चतुर्थ अध्याय 'जागीरदारो की शक्तियाँ अधिकार एवं कर्तव्य में जागीरदारों के राजनैतिक, वित्तीय अधिकारो के साथ–साथ उनके राज्य के प्रति कर्तव्यों का वर्णन किया गया है। जागीरदारों को अपने–अपने जागीरी क्षेत्र मे अनेक अधिकार प्राप्त थे। बड़े सामन्तों के अपने दरबार थे, अपने अधिकारी कर्मचारी और सैनिक दस्ते थे। जागीरी क्षेत्र में शान्ति व्यवस्था बनाये रखने की समस्त जिम्मेदारी जागीरदारों की ही थी। जागीरी क्षेत्र से भूमिकर कार्य वसूलने का कार्य भी उन्हीं का था। राज्य का निर्धारित हिस्सा चुकाने के पश्चात शेष हिस्सा जागीरदार स्वयं रखते थे। जागीरदारों को पर्याप्त अधिकार प्राप्त होने से उनका जागीरी क्षेत्र की प्रजा पर मजबूत नियंत्रण कायम था। राज्य के कूटनीतिक एवं राजनीतिक मसलों पर जागीरदारों से परस्पर विचार विमर्श किया जाता था। राज्य प्रशासन में जागीरदारों को उच्च पदो पर नियुक्त किया जाता था। प्रशासन संबंधी सम्पूर्ण विषयों पर इन सरदारों का पूर्ण प्रभाव रहता था। अधिकारों के साथ ही राज्य के प्रति सैनिक व वित्तीय कर्तव्यों का पालन करना एवं राज्य की सुरक्षा के लिए सदैव तैयार रहना भी जागीरदार का महत्वपूर्ण कर्तव्य था। सामन्त अपनी सेना सहित व्यतिगत सेवा के लिए राज्य के आमन्त्रण पर सदैव तत्पर रहते थे। वे महाराव के साथ सैनिक अभियानों में भाग लेते थे।

जागीरदारों को अपनी अपनी जागीर की आय अनुसार पैदल सैनिक एवं सवार रखने पड़ते थे। कम्पनी से सन्धि के पश्चात राज्य को सैनिक सहायता की आवयश्कता न के बराबर रह गई थी। इस प्रकार जागीरदारों को राज्य के आदेश पर उपस्थित होकर अपना कर्तव्य पालन करना पड़ता था। प्रस्तुत अध्याय मे जागीरदारों द्वारा किए गये षड़यन्त्रों का भी उल्लेख है कि किस प्रकार कोटा राज्य के दीवान व प्रमुख जागीरदार झाला जालिमसिंह ने अपनी कूटनीति से राज्य की सम्पूर्ण शक्ति अपने हाथ मे केन्द्रित कर महाराव को शक्तिहीन बनाने का प्रयास किया। झाला ने कोटा के हाड़ा जागीरदारों जिनकी महाराव के प्रति सहानुभूति थी, की शक्ति को सीमित कर उनकी जागीरे छीनने कर प्रयास किया। जालिमसिंह लम्बे अर्से तक अपनी कूटनीति के बल पर कोटा का सर्वेसवा बना रहा एवं अपने वंशजो के भविष्य को सुरक्षित रखने का प्रयास करता रहा। इस प्रकार झाला जालिमसिंह ने काटा राज्य की राजनीति मे महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

पंचम अध्याय 'जागीर प्रथा के अन्तर्गत सामाजिक व सांस्कृतिक स्थिति ' के अन्तर्गत जागीरदारों के पारिवारिक एवं धार्मिक उत्सवों का वर्णन किया गया है। तत्कालीन समय मे प्रचलित सामाजिक रीति रिवाजों एवं जागीरदारों की भूमिका के साथ ही किसानों व जागीरदारों के संबंधो पर चर्चा की गई है। कोटा राज्य की भाँति ही जागीरी क्षेत्रों में दीपावली, दशहरा, होली, तीज, गणगौर, जन्माष्टमी इत्यादि त्यौहार बड़े धूम–धाम से मनाये जाते थे। अपने पारिवारिक उत्सवों मे प्रजा से नजराने भी ग्रहण करते थे। किसानों व जागीरदारों के मध्य सम्बंध सौहार्दपूर्ण थे। वे आपातकाल में किसानो को सहायता भी प्रदान करते थे। किन्तु 1818 की सन्धियों के पश्चात इन संबंधो मे सौहार्द के स्थान पर वैमनस्य व शोषण की भावना उत्पन्न होने लगी थी। जागीरदार प्रजा के कल्याण हेतु गाँव मे कुएँ, बावड़ियों, मन्दिरो का निर्माण करवाते थे। वहीं अब वे अपने मौज शौक के लिए भवनों, हवेलियों व दुर्गों का भी निर्माण करवाने लगे। जागीरदारों की वास्तुकला मे रूचि बढ़ने से वास्तुकला का विकास हुआ। झाला

जालिमसिंह की हवेली, बड़े देवता जी की हवेली इत्यादि मे बने हुए सुन्दर चित्र कोटा चित्र शैली के सुन्दर उदाहरण है। कोटा राज्य के जागीरदारों एवं प्रमुख व्यक्तियों द्वारा बनवाये गये मन्दिर, भवन, हवेलियाँ तत्कालीन समय की कलात्मकता व शिल्प सौन्दर्य को प्रदर्शित करते है। साथ इन इमारतों की दीवारों पर अंकित भित्ति चित्रांकन उस समय की धार्मिक मान्यताओं, राजदरबार की जीवन शैली तथा तत्कालीन सामाजिक परिवेश का प्रकट करते है।

सारांशतः जागीरदार अपने शासक की गरिमा को अपने स्वामित्व वाले क्षेत्र में गतिशील रखने का प्रयास अवश्य करते रहें। सम्प्रभुता, अधिकार लिप्सा, आर्थिक लाभ एवं बाहरी शक्तियों के नियन्त्रण के प्रभाव से कोटा राज्य की जागीर प्रथा में परिर्वतन होते रहें थे।

शोध सारांश

शोध सारांश

भारतवर्ष के ऐतिहासिक प्रान्त राजस्थान का हाड़ौती प्रदेश अपने आँचल में प्रागैतिहासिक काल से लेकर आधुनिक काल तक विभिन्न संस्कृतियों को समेटे हुए भारतीय इतिहास के पृष्ठों पर अपनी यात्रा के गौरवान्वित इतिहास को समृद्धिशाली रुप मे प्रस्तुत करता है। तेरहवीं शताब्दी ईस्वी के अन्तिम चतुर्थांश में बून्दी राज्य के अधीन होकर कोटा 1631 ईस्वी तक एक परगना बना रहा। बून्दी के शासक रावरतन ने यद्धपि मुगल बादशाह जहाँगीर के आदेश से ही माधोसिंह को कोटा का शासक नियत किया था परन्तु उसको कोटा राज्य का फरमान 1631 ईस्वी में रावरतन की मृत्यु के पश्चात बादशाह शाहजहाँ द्वारा प्रदान किया गया था। जिसे इसी वर्ष शाहजहाँ ने राव माधोसिंह के राजत्व में स्वतंत्र राज्य का स्वरूप प्रदान कर दिया। यहीं से कोटा के स्वतन्त्र राज्य की स्थापना होती है। यहाँ पर चौहान वंशीय हाड़ा राजपूतों के शासन के कारण इस संभाग को हाड़ौती नाम दिया गया।

आज कोटा राजस्थान के सात सम्भागों में एक प्रमुख सम्भाग है वैसे ही पूर्व में कोटा रियासत राजस्थान की प्रमुख रियासतों में से एक महत्वपूर्ण रियासत थी। इसके उत्तर पश्चिम और पूर्व में विन्ध्य पर्वत श्रेणियाँ और मध्य में मुकुन्दरा पर्वत है। ये पर्वत प्रहरी की भाँति खड़े जहाँ एक ओर इस क्षेत्र की रक्षा करते हैं वहीं दूसरी ओर पानी से भरे बादलो को यहाँ बरसने के लिए बाध्य कर देते हैं। चम्बल, काली सिन्ध, पार्वती और परवन नदियों की सलिल धाराएँ इसे वर्ष भर आप्लावित करती रहती हैं और यहीं इनसे आकर मिलती हैं। वर्तमान में कोटा नगर हाड़ौती क्षेत्र का मुख्य केन्द्र स्थल है। कोटा राजस्थान प्रान्त के दक्षिण पूर्व में स्थित है। कोटा नगर $25^0$15 उत्तरी अक्षांश और $75^0$50 पूर्वी देशान्तर के मिलन बिन्दु पर बसा है। यहीं चम्बल नदी हाड़ौती के पठारी प्रदेशों को छोड़कर उपजाऊ मैदानी भागों में प्रवेश करती है। समुद्र तल से इस नगर की ऊँचाई 265 मीटर है।

मध्यकालीन राजस्थान के जन जीवन में सामन्ती प्रथा का विशिष्ट स्थान रहा है। राजस्थान के राजपूत राज्यों में सामन्त व्यवस्था का उद्‌भव वहाँ के शासकों

की कुलीय परम्परा से हुआ था। राज्य केवल शासक की सम्पत्ति ही नहीं था अपितु कुलीय सामन्तों की सामूहिक धरोहर भी था। प्रत्येक राज्य में सर्वोपरि स्थान शासक का होता था तथा शासक के बाद राज्यों में महत्वपूर्ण स्थान सामन्तों का था। लगभग प्रत्येक राज्य का संगठन कुलीय भावना पर आधारित था। शासक 'कुल का नेता' होने के कारण राज्य में उसका विशेष महत्व था। राज्य की स्थापना के साथ ही सामन्तों का अस्तित्व आरम्भ हो गया था। राजस्थान की सामन्ती व्यवस्था आपसी सांझेदारी थी और उसका स्वरूप एक प्रकार से सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक विशेषताओं से युक्त था। कर्नल टॉड द्वारा यूरोप के सामन्तवाद एवं राजस्थान के सामन्तवाद का तुलनात्मक अध्ययन भी किया गया है। कर्नल टॉड ने दोनों सामन्तवाद में समानताएँ प्रदर्शित की है। वहीं विभिन्न भारतीय लेखकों ने यूरोप एवं राजस्थान के सामन्तवाद के मध्य अन्तर स्पष्ट करते हुए राजस्थान के सामन्तवाद की विशिष्टताओं पर प्रकाश डाला है।

सन् 1631 से 1648 तक कोटा राज्य में राव माधोसिंह का शासन रहा। इनके अतिरिक्त राव मुकुन्दसिंह, राव किशोरसिंह प्रथम, राव रामसिंह प्रथम, महाराव भीमसिंह प्रथम, महाराव उम्मेदसिंह प्रथम, महाराव किशोरसिंह द्वितीय, महाराव रामसिंह द्वितीय, महाराव उम्मेदसिंह द्वितीय, महाराव भीमसिंह द्वितीय इत्यादि कोटा के प्रसिद्ध शासक हुए। महाराव भीमसिंह प्रथम कोटा राज्य के प्रथम शासक थे जिन्हें मुगल बादशाह फर्रूखसियर ने महाराव की उपाधि प्रदान की थी।

कोटा राज्य में जागीर प्रथा का उद्‌भव राव माधोसिंह द्वारा अपने पुत्रों को जागीरें प्रदान करने से हुआ था। राव माधोसिंह के पांच पुत्र थे– मुकुन्दसिंह, मोहनसिंह, जुझारसिंह, कन्हीराम और किशोरसिंह। मुगल साम्राज्य की सेवा हेतु बल्ख एवं बदक्शा जाते समय राव माधोसिंह अपने राज्य का शासन मुकुन्दसिंह के सुपुर्द कर गये थे। मुकुन्दसिंह ज्येष्ठ पुत्र थे इसलिए उन्हें कोटा का राजा बनाया। दूसरे पुत्र मोहनसिंह को 84 गाँव सहित पलायथा की जागीर दी गई। तीसरे पुत्र जुझारसिंह को 21 गाँव सहित कोटड़ा और चौथे पुत्र कन्हीराम को 27 गाँव के साथ कोयला की जागीर मिली। पाँचवे पुत्र किशोरसिंह को 24 गाँव सहित सांगोद की जागीर दी गई। इस व्यवस्था से कोटा राज्य में जागीर प्रथा का उद्‌भव हुआ।

कोटा राज्य में जागीर प्रथा के उद्‌भव के पश्चात कोटा के महारावों के संरक्षण में इसका स्वरूप परिवर्तन होता चला गया। राजस्थान के राज्यों ने मुगलों से लेकर अंग्रेजों के शासन काल तक अनेक उतार चढ़ावों को देखा। अलग–अलग काल में जागीरी प्रथा के स्वरूप में भी परिवर्तन आता गया। साथ ही जागीरी क्षेत्रों के अधिकार व राज्य के प्रति कर्तव्य भी समयानुसार परिवर्तित होते गये।

जागीरी प्रथा के कुछ मौलिक सिद्धान्त थे जिन पर यह व्यवस्था आधारित थी। राजस्थान के सामन्त अधिकांशतः राजा के रक्त सम्बन्धी ही होते थे। उन्हें जागीर इसलिए दी जाती थी कि वे राजा के भाई–बान्धव होते थे। कोटा के शासक राव माधोसिंह ने अपने ज्येष्ठ पुत्र मुकुन्दसिंह को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया एवं अन्य चार पुत्रों को जागीरें प्रदान की। राजपूतों का राजनीतिक संगठन पैतृक कुल के विचार पर आधारित था। प्रत्येक राज्य का शासक वर्ग विशिष्ट वंश या जाति का होता था। राजा के वंश वाले अन्य लोग शासक की तरह ही पैतृक सम्पत्ति और अधिकारों का उपयोग करते थे क्योंकि दोनों की पैतृकता एक ही थी जैसे कोटा व बून्दी में हाड़ा। राज्य राजा के वंश के लोगों की सांझेदारी का साधन था। इसी विचार से राज्य की रक्षा के लिए मर मिटना सभी का पुनीत कर्तव्य समझा जाता था। कोटा के महाराव को सदैव हाड़ा जागीरदारों का सहयोग प्राप्त होता रहा।

राजस्थान में जागीरदार व शासक के सम्बन्धों में समय–समय पर उतार चढ़ाव आते रहे। यद्यपि सामन्त और शासक में ऊँच– नीच का आधार था किन्तु यह ऊँच–नीच स्वामी और सेवक के समान नहीं थी। दोनों के सम्बन्धों में आदर और सम्मान की भावना निहित रहती थी। राजस्थान की सामन्त प्रथा का एक मुख्य आधार सामन्त द्वारा प्रदान की जाने वाली सैनिक सेवा भी था।

राजस्थान के शासकों द्वारा अपने सामन्तों को उपाधियाँ प्रदान की जाती थी जो राज्य में उनकी प्रतिष्ठा व सम्मान का सूचक होती थीं। इन उपाधियों का आधार सामन्तों की महाराव से नजदीकी एवं उनके महाराव से सम्बन्ध होता था। ये उपाधियाँ सामन्त की प्रतिष्ठा को व्यक्त करने के साथ ही उसके राज्य में महत्वपूर्ण स्थान को भी व्यक्त करती थीं।

कोटा राज्य में ऐसे जागीरदार जिनका महाराव से निकट का सम्बन्ध था, राजवी कहलाते थे। कोटड़ा, बम्बूलिया, सांगोद, आमली, खेरला, अन्ता तथा मूण्डली के जागीरदार किशोरसिंहोत परिवार के थे। इनमें से कुछ कम दर्जे में मोहनसिंहोत घराने के सरदार थे। इनका मुखिया पलायथा का ठाकुर था। इन सभी को 'आप' कहा जाता था। कोटड़ा के जागीरदारों को 'महाराजा' की उपाधि प्राप्त थी। कोयला ठिकाने के जागीरदारों को भी 'आप' की उपाधि से सम्बोन्धित किया जाता था। कुनाड़ी का ठिकाना कोटा नरेश मुकुन्दसिंह द्वारा 1644 ई. में देलवाड़ा (मेवाड़) के राजराणा जीतसिंह झाला के तीसरे पुत्र अर्जुनसिंह को 'राज' की उपाधि सहित प्रदान किया था।

इसी प्रकार कोटा में सम्मिलित कोटरियात के राज्यों के जागीरदारों की विशेष प्रतिष्ठा थी। इन्द्रगढ़, खातौली, बलवन व आन्तरदा के सरदारों को मुगल काल से ही 'महाराजा' का खिताब मिला हुआ जो कोटा महाराव द्वारा बदस्तूर जारी रखा गया। इन जागीरदारों की प्रजा इन्हें 'दरबार' कहती थीं। गैंता के जागीरदारों को भी 'महाराजा' की पदवी मिली हुई थी। गैंता, करवाड़, पुसोद और पीपल्दा के सरदारों को इनकी प्रजा 'सरकार' कहकर सम्मान करती थी।

कोटा राज्य के ताजिमी सरदारों की संख्या 36 थी। इनमें अधिक संख्या हाड़ा चौहानों की थी। । इनमें 8 जागीरें उन हाड़ा वंश के शासकों की थीं जिन्हें कोटरियात कहा जाता था। हाड़ौती के उत्तरी भाग को अंग्रेजों के समय कोटरियात कहा जाता था। उदयपुर, जयपुर, जोधपुर, बीकानेर, कोटा में ये विशेष अधिकार प्राप्त बड़ी जागीरें या ठिकानें थे जो कोटड़ी कहलाते थे। अन्य राज्यों की कोटड़ियों को इतने अधिकार नहीं थे जितने कोटा राज्य या हाड़ौती की कोटड़ियों को थे। सन् 1817 तक इस क्षेत्र के 15 राज्यों में से केवल 8 रह गये थे। ये राज्य थे – इन्द्रगढ़, बलबन, खातौली, गैंता, पूसोद, पीपल्दा, करवाड़ और आंतरदा। दिसम्बर सन् 1817 को जब कोटा राज्य और कम्पनी सरकार के बीच सन्धि हुई थी तब से इन आठ छोटे–छोटे राज्यों को कोटा राज्य से सम्बद्ध करके इनका नाम कोटरी कर दिया। सुविधा की दृष्टि से कम्पनी सरकार से इनका पत्र व्यवहार कोटा राज्य की मध्यस्थता से होने लगा। ये अपना खिराज भी सीधे कम्पनी सरकार को देते थे।

कोटरियात के अतिरिक्त कोटा राज्य के अन्य प्रमुख जागीरी ठिकानें पलायथा, कोयला, बम्बूलिया, सांगोद, कोटड़ा, हरनौदा, अन्ता, आमली, खेरला, मूण्डली, कुनाड़ी, नान्ता, सारथल, सारोला, राजगढ़, घाटी, कचनावदा इत्यादि थे।

कोटा राज्य की सामन्ती व्यवस्था अत्यन्त लचीली थी। राजा और उसके सामन्त तथा उनके अधीन छोटे सामन्तों के मध्य यह एक ढीली ढाली व्यवस्था थी। 16वीं–17वीं सदी में यह व्यवस्था ठीक प्रकार से चलती रही क्योंकि मुगल अधीनता में प्रत्येक महत्वाकांक्षी राजा, सामन्त तथा छोटे जागीरदारों के लिए पर्याप्त अवसर उपलब्ध थे। अठारहवीं सदी के पूर्वाद्ध में मुगलों की केन्द्रीय शक्ति के पतन के पश्चात राजपूत शासकों को पुनः अपने सामन्तों की सहायता और सहयोग पर निर्भर हो जाना पड़ा। 18 वीं सदी के मध्य में प्रायः प्रत्येक राज्य में सामन्तों का प्रभाव अपनी चरम सीमा पर पहुँच चुका था। कोटा में झाला सामन्त जालिमसिंह सर्वेसर्वा बन गया था। 18 वीं सदी का उतरार्द्ध राजा–सामन्त संघर्ष में व्यतीत हुआ। इन दोनों तत्वों में संघर्ष बहुत लम्बे समय तक चलता रहा क्योंकि प्रत्येक अपने लिए मराठों से बाह्य समर्थन जुटाने में समर्थ हो सका। मराठे एक केन्द्रीय शक्ति के अधीन न होकर सरदारों के नायकत्व मे उत्तरी भारत से चौथ एवं सरदेशमुखी की लूट मे 18 वीं शताब्दी के भारतीय इतिहास के प्रमुख कर्णधार बन गये थे। मराठों को आमन्त्रित करने से भी किसी समस्या का समाधान नहीं हुआ और 1791 ई. में प्रायः राजस्थान पर मराठा वर्चस्व स्थापित हो गया।

राजपूत शासकों ओर सामन्तों को अपनी सीमित परिधि से बाहर देखने का अवसर ही नहीं था। वे अपने घरेलू झगडों और षड़यन्त्रों में इतने लिप्त थे कि अखिल भारत में हो रहे घटनाक्रम की उन्हें कोई जानकारी ही नहीं थी। कोटा में 1771 ई0 के पश्चात जालिमसिंह झाला का बोलबाला था। वह अत्यधिक महत्वाकांक्षी था। कोटा में महाराव उम्मेदसिंह प्रथम केवल दिखावे के शासक थे। वास्तव में सत्ता जालिमसिंह के हाथों में थी। जालिमसिंह का अनुमान था कि अंग्रेज मराठों से संघर्ष में अधिक सफल होंगे इसलिए द्वितीय आंग्ल मराठा युद्ध में उसने अंग्रेजों की सहायता की। उसके पिण्ड़ारियों के साथ भी अच्छे सम्बन्ध थे।

1817–18 में राजपूत राज्यों ने ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी के साथ अधीनस्थ सहयोग की सन्धि की। वास्तव में उन्हें एक साम्राज्यवादी शक्ति के संरक्षण

की आवश्यकता थी। उन्हें यह संरक्षण अपने अधिकारों और अपनी सत्ता को अपने ही अधीन सामन्तों के अतिक्रमण से बचाव के लिए चाहिए था। 1818 की सन्धियों से एक सदी से चला आ रहा सामन्ती संघर्ष एक साम्राज्यवादी शक्ति के नियन्त्रण में आ गया।

राजस्थान में अंग्रेजों से सन्धि करने वाला सबसे पहला राज्य कोटा था। कोटा राज्य ने सबसे पहले 26 दिसम्बर 1817 को सन्धि की और इस सन्धि की शर्तें ही अन्य राज्यों के लिए आधार बनी। सन्धि की शीघ्रता का कारण झाला जालिमसिंह था जो इस समय यहाँ का मुख्य प्रशासक एवं सर्वेसर्वा था। अंग्रेजी शक्ति का उसने पूर्व में ही अनुमान लगा लिया था। अतः उसने उनके साथ शीघ्र समझौता करना ही श्रेयस्कर समझा। अंग्रेजों एवं कोटा राज्य का सन्धि पत्र 26 दिसम्बर सन् 1817 को लिखा गया था।

कोटा महाराव से हुई 1817 की सन्धि में एक पूरक धारा फरवरी 1818 में जोड़ दी गयी जिससे राज्य की अखण्डता को भारी क्षति पहुँची। तत्कालीन गवर्नर जनरल चार्ल्स मेटकॉफ हर प्रकार से जालिमसिंह को आश्वस्त करना चाहता था और गवर्नर जनरल की ओर से उसे पूरे अधिकार व्यावहारिक रूप में उपलब्ध थे। इस पूरक धारा से कोटा राज्य के प्रशासन के समस्त अधिकार जालिमसिंह और उसके वंशजो तथा उत्तराधिकारियों में निहित कर दिये गए।

महाराव उम्मेदसिंह की मृत्यु के बाद जालिमसिंह के अधिकारों को भी चुनौती दी जाने लगी थी। नये शासक किशोरसिंह का उससे आये दिन झगड़ा होने लगा। यहाँ तक कि दोनों के बीच खुले रूप से झगड़े होने लगे। कम्पनी का मानना था कि कोटा राज्य का वास्तविक शासक जालिमसिंह है न कि महाराव। ये बात कोटा नरेश स्वीकार नहीं कर सकते थे। स्थिति यहाँ तक पहुँच गई कि 1 अक्टूबर सन् 1821 को महाराव किशोरसिंह और जालिमसिंह के मध्य मांगरोल का युद्ध हुआ। इस अवसर ऐसा कोई हाड़ा जागीरदार, माफीदार या सरदार न था जिसने महाराव किशोरसिंह का पक्ष ग्रहण न किया हो। जालिमसिंह की सहायता के लिए कम्पनी सरकार की दो पलटने, नौ रिसालें और एक तोपखाना आया। जालिमसिंह की निजी आठ पलटने, चौदह रिसालें और तेईस तोपें थी। अतः जालिमसिंह का पलड़ा भारी रहा एवं महाराव किशोरसिंह को पराजय का सामना करना पड़ा। 1822 ई. में उदयपुर महाराणा की

मध्यस्थता से महाराव किशोरसिंह एवं जालिमसिंह के मध्य एक समझौता हुआ जिसके अनुसार सन्धि की गुप्त शर्तें रख ली गई और महाराव को कुछ अधिक विशेषाधिकार प्रदान किये गये।

राजस्थान के राज्यों एवं ईस्ट इण्डिया कम्पनी के मध्य हुई सन्धि से जागीरदारों की स्थिति में काफी परिवर्तन आया। पूर्वकालीन जागीर प्रथा का अवलोकन करने पर यह दृष्टिगोचर होता है कि समय के परिवर्तन के साथ–साथ सामन्तों के अधिकारों में भी उतार चढ़ाव आते रहे। राजा इन सामन्तों के सहयोग से ही राज्य की स्थापना व इसकी सीमा में विस्तार करने में सक्षम हुआ था। अतः सामन्तगण अपने को इसका भागीदार समझते थे। कोटा व राजस्थान के अन्य राजपूत राज्यों में कुलीय सामन्त प्रारम्भ से ही बड़े शक्तिशाली थे। राज्य की कार्यव्यवस्था और प्रबन्ध में उनकी सांझेदारी रहती थी। सामन्तों की इच्छा के विपरीत शासकों के लिए सामान्यतः कोई भी महत्वपूर्ण निर्णय लेना सम्भव नहीं था।

मुगल साम्राज्य के लिए कुलीय प्रतिस्पर्धा लाभदायक ही सिद्ध हुई इसलिए मुगल सम्राटों ने कुलीय परम्परा को क्षीण नहीं होने दिया। उन्होंने इतना नियन्त्रण अवश्य रखा कि प्रतिस्पर्धा साम्राज्य की प्रगति में बाधक न बने। इसलिए मुगलों ने राज्य के उत्तराधिकारियों के प्रश्न को अपने नियन्त्रण में रखा और आन्तरिक अव्यवस्था को पनपने नही दिया। 18 वीं सदी इस अर्थ में कुलीय सामन्त प्रणाली के लिए अत्यन्त संघर्षमय सिद्ध हुई। मुगल साम्राज्य के पतन के साथ–साथ इसमें परिर्वतन दृष्टिगोचर होने लगे। राजा और सामन्तों का यह आंतरिक संघर्ष 18वीं सदी के उत्तरार्द्ध एवं 19वीं सदी के प्रथम दशकों की राजनीति को समझने में अत्यन्त महत्वपूर्ण है। दोनों में संघर्ष प्रायः राजस्थान के प्रत्येक राज्य में होता रहा।

1818 की सन्धियों के फलस्वरूप एक सदी से चला आ रहा सामन्ती संघर्ष एक साम्राज्यवादी शक्ति के नियन्त्रण में आ गया। सामन्ती गुटों की अराजकता से तंग आकर राज्यों ने संघर्ष किये बिना अंग्रेजों के आगे घुटने टेक दिये और अधीनता स्वीकार कर ली।

1818 में अंग्रेजी संरक्षण में आने के पश्चात राजा अंग्रेजों के समर्थन पर अधिकाधिक निर्भर होते गये। गोद लेने और उत्तराधिकार के समस्त प्रश्न अंग्रेजी स्वीकृति मिल जाने के पश्चात हल हो जाते थे। कोटा के मामले में अंग्रेजों ने

जालिमसिंह का साथ दिया। महाराव किशोरसिंह को स्वतन्त्रता हेतु कड़ा संघर्ष करना पडा। अन्त में उन्हें पूरक सन्धि की शर्तों को स्वीकार करना पड़ा। कोटा में राजराणा माधोसिंह तथा मदनसिंह अंग्रेजी समर्थन से दीवान के पद पर बने रहे।

अंग्रेजी प्रभुसत्ता स्थापित हो जाने से इतना अवश्य हुआ कि सामन्त अब अपनी शिकायतें षडयन्त्र और युद्ध के स्थान पर पोलिटिकल एजेन्ट के दरबार में याचिका पेश करके दूर करवा सकते थे। इस महत्वपूर्ण परिवर्तन के अतिरिक्त सामन्तों की उपयोगिता भी बहुत कम रह गई थी क्योंकि अब राजा को उनकी सैनिक सहायता की आवश्यकता नहीं थी।

इस प्रकार 1818 की सन्धि के पश्चात सामन्तों की स्थिति और भी दुर्बल हो गयी। वे राज्य के लिए कोई उपयोगी कार्य करने की स्थिति में नहीं थे। उनका महत्व उतना था ही जितना सर्वोपरि सत्ता चाहती। सामन्तों के विशिष्ट अधिकार, उनका मान व गौरव केवल दरबारों में देखने दिखाने की वस्तु बनकर रह गई और सारी कुलीय संरचना तर्कहीन और कालदोष युक्त संस्था के रूप में परिवर्तित हो गई।

कोटा के प्रशासक झाला जालिमसिंह ने अंग्रेजों को अपना पूर्ण समर्थन दिया तो अंग्रेजों ने महाराव को दुर्बल बना जालिमसिंह के उत्तराधिकारियों हेतु अधिकार सुरक्षित रखने का प्रयत्न किया। सन् 1824 में 84 वर्ष की अवस्था में झाला जालिमसिंह की मृत्यु के पश्चात उसका अयोग्य उत्तराधिकारी झाला माधोसिंह स्वेच्छाचारी व्यवहार करने लगा। झाला माधोसिंह को अंग्रेजों का समर्थन प्राप्त था। महाराव किशोरसिंह के उत्तराधिकारी महाराव रामसिंह द्वितीय के समय झालाओं की उद्दण्डता बढ़ती जा रही थी। झाला मदनसिंह (माधोसिंह का पुत्र) का व्यवहार शासक की तरह था। मदन सिंह ने महाराव रामसिंह की पूर्ण उपेक्षा करना प्रारम्भ कर दिया था। तब अन्य जागीरदार सशस्त्र विद्रोह की तैयारी करने लगे थे। इधर अंग्रेज सरकार कोटा में एक सैन्य बल के गठन का निश्चय कर चुकी थी। झाला मदनसिंह भी इस सेना के गठन हेतु तैयार था अतः कोटा में कम्पनी की एक सेना रहने लगी जिसका नाम 'कोटा कन्टिन्जेन्ट' रखा गया। इसका खर्च कोटा राज्य कोष से मिलने लगा। महाराव रामसिंह ने इसका घोर विरोध किया। महाराव रामसिंह एवं मदनसिंह में निरन्तर कलह बढ़ता ही जा रहा था अंततः कोटा राज्य के 19 परगने

अलग कर ब्रिटिश सरकार ने 28 अप्रेल 1838 को एक नये झालावाड़ राज्य की नींव रखी एवं मदनसिंह झाला को वहाँ का शासक बनाया गया।

अंग्रेजों ने कोटा महाराव को न केवल विभाजन योजना स्वीकार करने के लिए बल्कि कोटा सैन्य बल के लिए तीन लाख रूपये वार्षिक देने के लिए भी बाध्य किया। यह सैन्य बल 1000 सैनिक और 100 घुड़सवारों का था। इससे सम्बन्धित प्रस्ताव भी 1838 की सन्धि में समाविष्ट कर दिये गये थे।

इस प्रकार 1817 की कम्पनी सन्धि के फलस्वरूप कोटा का विभाजन कर झालावाड़ राज्य की स्थापना हुई। वहीं दूसरी ओर झाला सामन्तों की निरंकुशता से कोटा महाराव को स्वतन्त्रता प्राप्त हुई और वे शासन के वास्तविक अधिकारी बन सके। कोटा महाराव रामसिंह द्वितीय को घोर वित्तीय संकट का भी सामना करना पड़ा। कईं जागीरदारों ने झालावाड़ में अपनी जागीरें छोड़ दी और कोटा नरेश की सेवा करना स्वीकार किया। ऐसे जागीरदारों को महाराव ने अपने राज्य में जागीरें प्रदान की। साथ ही महाराव द्वारा अपने सरदारों को भी सत्कृत किया गया।

1818 की सन्धि के पश्चात् निःसन्देह अंग्रेज सरकार का राज्यों के शासन पर वर्चस्व कायम हो गया था किन्तु कोटा में हाड़ा जागीरदारों ने सदैव महाराव के पक्ष में अपना समर्थन दिया। कोटा में संघर्ष झाला जालिमसिंह एवं उसके उत्तराधिकारियों एवं कोटा महाराव के बीच चला।

साथ ही एक परिवर्तन जागीरदारों के रहन सहन में दृष्टिगोचर होने लगा। पश्चिमी शैली का प्रभाव उनके एवं उनके उत्तराधिकारियों के जीवन पर पड़ने से अकर्मण्यता एवं विलासिता बढ़ने लगी। अतः 19 वीं सदी के अन्त में एवं 20 वीं सदी के आरम्भ में जागीरदारों द्वारा कृषकों/प्रजा पर नई लागतें लगाई गईं। जीवन पद्धति में यह मौलिक बदलाव उस पैतृक जागीरदारी प्रथा को शोषणात्मक जागीरदारी प्रथा में परिवर्तित करने में सहायक रहा।

मुगलों की मनसबदारी प्रथा से प्रेरणा लेकर राजपूत राजाओं ने भी अपने सामन्तों को पद एवं प्रतिष्ठा के आधार पर विभिन्न श्रेणियों में विभाजित कर दिया। राजस्थान के विभिन्न राज्यों में सामन्तों की श्रेणियाँ उनके मान– सम्मान तथा पद प्रतिष्ठा अनुसार भिन्न–भिन्न रही। कोटा के जागीरदारों को दो श्रेणियों में विभाजित किया गया था– देशथी एवं हजूरथी। कोटा महाराव के निकट के कुटुम्बी 'राजवी'

कहलाते थे और अन्य सरदार 'अमीर उमराव' के नाम से सम्बोधित किये जाते थे। देशथी जागीरदार को देश का जागीरदार भी कहते थे। ये जागीरदार गाँव में शान्ति एवं व्यवस्था स्थापित करते थे। इनमें तन के जागीरदार भी होते थे जो राजा के निकटतम रिश्तेदार, भाई, चाचा आदि होते थे। पलायथा, कोटड़ा, सांगोद एवं कोयला इसी प्रकार की जागीरें थी। ये राज्य में रहकर निश्चित घोड़े, पैदल एवं सैनिक रखते थे एवं जागीर की आय से सब खर्च चलाते थे। ये राजा के प्रति अपने कर्तव्यों को समझ कर युद्ध में सम्मिलित होते थे। ऐसे जागीरदारों में अधिकांश हाड़ा वंश के राजपूत होते थे।

हजूरथी जागीरदारों को दरबार के साथ युद्धों में जाना जरूरी होता था। उन्हें नौकरी के एवज में जागीरें प्रदान की जाती थीं।

जागीरों के अन्य प्रकारो में सैनिक जागीरें थीं जो मूण्डकटों (युद्ध में वीरगति प्राप्त करने वाले), बन्दूकों की चाकरी, पालतूपेट रोटी, रमराठौड़ी, घोड़ों की चाकरी इत्यादि के लिए दी जाती थीं। इसके अतिरिक्त बख्शाऊ जागीरें थीं जो राज्य परिवार के सदस्यों, रानियों, रिश्तेदारों, मेहरबानी करके धायमाँ, पासवान, खवास, नाई को, चाकरी में पटेल, पटवारी, चौधरी, बलाई, कानूनगो को नगारखाने (नक्कार खाना) में चौपहर चाकरी, राज्य परिवार के वैद्य चिकित्सक, चारण–भाट, ड्योड़ी की चाकरी इत्यादि हेतु दी जाती थीं। पुण्यार्थ, माफी, डोहली की जागीरें भी होती थीं। ऐसी जागीरों में पुण्यार्थ, दान में दी गई तथा मंदिरों आदि में दान की गई भूमि आती थी। इन जागीरों से किसी प्रकार का कर नहीं लिया जाता था तथा इनकी सम्पूर्ण आय माफीदार मंदिर को मिलती थी। राज्य में उदक जागीरें भी होती थीं। ब्राह्मण बैरागी आदि को जो भूमि दान में दी जाती थी वह उदक कृष्णपण कहलाती थी। महाराव की शुभ चिन्तगी करने पर, एकादशी, द्वादशी, मृत्यु के समय पाँचवा दान, द्वादश आदि पर जो भूमि दान में दी जाती थी, वह कर मुक्त एवं वंश पम्परागत कर दी जाती थी। यह कभी वापस नही ली जाती थी। उदक जागीरों के भी पट्टे दिये जाते थे।

राजस्थान के शासकों द्वारा 1818 में कम्पनी से सन्धि कर ली गई एवं अपनी सुरक्षा का भार कम्पनी को सौंप दिया । अब उन्हें सामन्तों के सहयोग की आवश्यकता नहीं रही जिसके कारण शासकों की दृष्टि में सामन्तों का महत्व समाप्त हो गया।

1818 ईस्वी तक कम्पनी सरकार का सामन्तों से कोई सीधा सम्बंध भी नहीं था परन्तु जैसे–जैसे अंग्रेजों की नरेशों से निकटता बढ़ती गई वैसे–वैसे उन्हें सामन्तों के साथ भी सम्बंध स्थापित करने के अवसर प्राप्त होने लगे। सन्धि सम्पन्न हो जाने के उपरान्त अंग्रेज किसी राजा को निरकुंश नहीं देखना चाहते थे तो सामन्तों को भी शक्तिशाली नहीं देखना चाहते थे अपितु उनकी नीति दोनों पक्षों की शक्ति को क्षीण करके, दोनों को ही अपना आश्रित बनाकर राज्यों के आन्तरिक शासन पर अपना नियन्त्रण स्थापित करने की थी।

कोटा के सन्दर्भ में भी अंग्रेजों ने महाराव किशोर सिंह को पूरक सन्धि की शर्तों को स्वीकारने हेतु बाध्य किया क्योंकि उनकी सहानुभूति जालिमसिंह के प्रति थी। जब किशोरसिंह ने हाड़ा जागीरदारों को एकत्र कर झाला जालिमसिंह के विरूद्व माँगरोल का युद्व लड़ा एवं पराजित हुए तब कम्पनी ने जालिम सिंह के प्रति समर्थन की नीति अपनाते हुए भी कोटा महाराव एवं पराजित हाड़ा सरदारों के प्रति सहानुभूति की भावना रखी। माँगरोल के युद्ध से वापस लौटे हुये सरदारों के साथ पॉलिटिकल एजेण्ट ने जालिमसिंह को दुर्व्यवहार नहीं करने दिया और माँगरोल के युद्व का किसी से बदला नहीं लिया गया। सब सरदारों को शांन्तिपूर्वक अपनी–अपनी जागीरों में जाने दिया।

19 वीं सदी के उत्तरार्ध में ब्रिटिश सरकार की नीति में फिर बदलाव देखने को मिला। जब अंग्रेज धीरे–धीरे सामन्तों के सम्पर्क में आये तो उन्हें सामन्तों के विशेषाधिकारों तथा उनके महत्व के बारे में जानकारी प्राप्त हुई। रियासतों में नियुक्त ब्रिटिश रेजिडेन्ट ने यह प्रयास किया कि सामन्तों को निर्बल बनाने हेतु उनके आर्थिक अधिकारों को सीमित किया जाए। अतः उनके राजस्व वसूलने एवं भूमि अनुदान के अधिकारों को सीमित कर दिया। ब्रिटिश सरकार ने सामन्तों से व्यक्तिगत सैनिक रखने का अधिकार छीन लिया। सामन्तों को अपने सैनिक समाप्त करने के लिए विवश होना पड़ा जिसके कारण उनकी शक्ति एवं प्रभाव में कमी आई। धीरे–धीरे सामन्तों के न्यायिक अधिकार भी समाप्त कर दिये गये। राज्य प्रशासन में भी सामन्तों के प्रभाव को समाप्त कर दिया गया। राज्य के उच्च पदों पर पूर्व की भाँति अब उनकी नियुक्ति करना आवश्यक नहीं था। ब्रिटिश सरकार ने राज्यों में निष्ठावान तथा अपने प्रति स्वामीभक्त सेवकों का एक नया वर्ग तैयार कर लिया ताकि सामन्तों का

महत्व समाप्त हो सके। ये सेवक या नया वर्ग न तो राजा की परवाह करते थे ना ही सामन्तों की। कोटा के महाराव शत्रुशाल द्वितीय के समय नवाब फैजअली की नियुक्ति इसका महत्वपूर्ण उदाहरण है।

शिक्षा के क्षेत्र में अंग्रेजों ने सामन्तों के विशेषाधिकार को कायम रखा। उनके पुत्रों की शिक्षा के लिए अलग से शिक्षण संस्थाओं की स्थापना की गई। अंग्रेजों के सभ्य बनाओ अभियान के तहत ही अजमेर दरबार में 22 अक्टूबर 1870 को मेयो कॉलेज की स्थापना की घोषणा की। कोटा के कई ठिकानों के जागीरदार मेयों कॉलेज के विद्यार्थी रहे थे। आप रणवीर सिंह (कोयला), भैरोसिंह (खेड़ली), भँवर गजेन्द्र सिंह (कुनाड़ी), आप गोरधन सिंह (सोजपुर), आप अमरसिंह (कोयला), भँवरसिंह (कुनाड़ी), ठाकुर कल्याणसिंह, भँवर जसवन्त सिंह, तेजराजसिंह (गैंता), भँवर दशरथ सिंह, भँवर गोपालसिंह, लक्ष्मणसिंह, गुलाबसिंह, हमीरसिंह (कुनाड़ी), ठाकुर गिरवरसिंह (करवाड़), कुँवर दुर्जनशाल (डाबरी), कुँवर केशवसिंह (बम्बूलिया), आप कल्याणसिंह (कोयला) इत्यादि मेयो कॉलेज के विद्यार्थी रहें हैं।

जहाँ 19 वीं सदी के मध्य तक जागीरदारों का कृषकों के प्रति दृष्टिकोण उदार रहता था। वहीं जागीरदारों की जीवन पद्धति में यह भौतिक बदलाव उस पैतृक जागीरदारी प्रथा को शोषणयुक्त जागीरदारी प्रथा में परिवर्तित करने में सहायक रहा। इसका परिणाम कृषक विद्रोह के रूप में सामने आया। इस प्रकार अंग्रेजों ने जागीरदारों को पाश्चात्य सभ्यता के रंग में रंगकर सामाजिक ढाँचे के भौतिक रूप को ही बदल दिया।

कोटा राज्य के जागीरदारों को अनेक राजनीतिक व वित्तीय शक्तियाँ प्राप्त थीं। उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक सामन्त लोग अपनी जागीरों में लगभग स्वतंत्र शासक की भाँति शासन करते थे। बड़े सामन्तों के अपनें दरबार थे, अपनें अधिकारी कर्मचारी और सैनिक दस्ते थे। अपनी जागीरों में शान्ति व्यवस्था बनाये रखनें एंव आंतरिक उपद्रवों को दबानें की जिम्मेदारी भी उन्हीं की थी। उनके न्यायिक अधिकार भी बड़े–चढ़े थे। व्यापारियों तथा दुकानदारों की सुरक्षा के बदले उन्हें, उनसें कई प्रकार के शुल्क वसूल करने के अधिकार भी प्राप्त थे। इस प्रकार सामन्तों को अपने अपने क्षेत्रों में पर्याप्त अधिकार प्राप्त थे जिसके परिणाम स्वरुप अपनी प्रजा पर उनका मजबूत नियंत्रण कायम था। राज्य प्रशासन में भी जागीदारों को उच्च पदों पर नियुक्त

किया जाता था। प्रशासन संबधी महत्वपूर्ण विषयों पर इन सरदारों का पूर्ण प्रभाव रहता था इनकी सलाह को महत्व दिया जाता था। सामन्तों की सेना पर ही नरेश पूर्णरूप से निर्भर थे।

प्रथम श्रेणी के सामन्त अपने शासक का 'खास रूक्का' मिलने पर ही राजदरबार में उपस्थित होते थे। राजदरबार में उपस्थित होनें पर शासक को उन लोगों का उनकी श्रेणी और पद मर्यादानुसार सम्मान करना पड़ता था और जब वे अपनी जागीरों में वापस लौटते तो शासक को उन्हें 'सिरोपाव' देकर विदा करना पड़ता था। शासक के राज्यभिषेक, राजघराने में विवाह, युवराज के जन्म आदि अवसरों पर शासक से सिरोपाव प्राप्त करना, उनका विशेषाधिकार था। अपनी श्रेणी व पद मर्यादानुसार शासक से लवाजमा (जिसमें नक्कारा, निशान, चँवर–चँवरी, सोने–चाँदी की छड़ी इत्यादि होती थी) प्राप्त करना भी उनका विशेषाधिकार होता था।

कोटा के सामन्त अपने जागीरी क्षेत्र के कृषकों से उपज का हिस्सा माल हासिल के रूप में वसूला करते थे। इसमें राज्य का हिस्सा भी सम्मिलित रहता था। राज्य का निर्धारित हिस्सा चुकाने के पश्चात् शेष हिस्सा जागीरदार के पास रहता था। कृषकों की उपज में जागीरदारों का हिस्सा राजकर्मचारियों द्वारा तय किया जाता था। इसके अतिरिक्त जागीरदारों को व्यापारियों एवं दुकानदारों की सुरक्षा के बदले में उनसे कई प्रकार के शुल्क वसूल करने का अधिकार भी प्राप्त था। राज्य के जागीरदारों को स्वयं अपने तथा अपने पाटवी पुत्र एवं अपनी पुत्रियों के विवाह पर अपने शासक से सिरोपाव और न्यौत की रकम प्राप्त करने का अधिकार होता था।

बड़े जागीरदार अपने अधीनस्थ जागीरदारों को जागीरें प्रदान किया करते थे। ये अधीनस्थ जागीरदार अपने सरदार के प्रति पूर्ण निष्ठा से अपने उत्तरदायित्व निभाते थे। कोटा में पलायथा, कोयला, सारथल, कोटरियात इत्यादि के ठिकानेदारों ने अपने अधीनस्थ कईं जागीरदारों को जागीरें दी हुई थी।

सैनिक सेवा, शासकों और जागीरदारों के आपसी सम्बन्धों की मुख्य कड़ी थी। सामन्तों का सबसें महत्वपूर्ण कर्तव्य अपने शासकों को सैनिक सेवा प्रदान करना था। सामन्त अपनी सेना सहित व्यक्तिगत सेवा के लिए राज्य के आमन्त्रण पर सदैव तैयार रहते थे। कोटा के नरेशों नें मुगलों की मनसबदारी प्रथा का अनुसरण किया। इसके

अनुकूल ही राव मुकुंदसिंह ने कितने ही राजपूतों को घुडसवारों की चाकरी के लिए जागीरें दे रखी थीं। प्रत्येक जागीरदार को समय पड़ने पर घोड़ों की नियत संख्या के साथ कोटा नरेश की सेवा में सम्मिलित होना पड़ता था। कोटा राज्य के ब्रिटिश साम्राज्य के संरक्षण में आने के पश्चात से ही यद्यपि युद्ध की दृष्टि सें सेना का इतना महत्व नहीं रह गया था जो पूर्व नरेशों के समय था।

सन् 1818 के पश्चात मांगरोल के युद्ध एंव 1857 के विप्लव के समय जागीरदारों ने पूर्ण स्वामिभक्ति निभाते हुये महाराव के प्रति अपने सैनिक कर्तव्यों का पालन किया था। अब परिस्थितियाँ बिल्कुल बदल चुकी थी। ब्रिटिश सरकार द्वारा कोटा में राज्य के खर्चे पर कम्पनी की सेना रहने लगी थी जिसका नाम ''कोटा कन्टिन्जेन्ट'' रखा गया। इसका खर्च कोटा राज्य से मिलने लगा था।

कोटा के महाराव उम्मेदसिंह द्वितीय ने सन् 1889 से 1940 तक कोटा पर राज किया उन्हें आधुनिक कोटा का निर्माता कहा जाता है। कोटा राज्य की सेना का आधुनिकीकरण उन्हीं के समय हुआ। राज्य के प्रमुख ठिकानों के जागीरदारों ने सैन्य विभाग में अपनी प्रशंसनीय सेवाएँ दीं।

पलायथा के कुँवर औकारसिंह को राज्य की सेना का जनरल ऑफिसर कमाण्डिंग बनाया गया। कुँवर औकारसिंह के पश्चात आप गोविन्दसिंह कोयला को कोटा राज्य की सेना का जनरल ऑफिसर कमाण्डिंग नियुक्त किया गया। इनके समय की प्रमुख उपलब्धि सेना के पुनर्गठन का कार्य था। भारत सरकार ने इनकी सेवाओं के बदले इन्हे ''राव बहादुर'' का खिताब दिया। आप गोविन्दसिंह के निधन के पश्चात अन्ता के मेजर ठाकुर पृथ्वीसिंह को कर्नल की रैंक देकर कोटा राज्य की सेना का चीफ जनरल ऑफीसर कमाण्डिंग 2 अप्रेल, 1929 को बनाया गया। कोटा राज्य की सेना का आधुनिकीकरण करने का श्रेय इन्हें ही जाता है।

इस प्रकार मुगलकाल से लेकर ब्रिटिश काल तक कोटा के जागीरदारों ने राज्य की रक्षा में अपना योगदान देकर कोटा नरेश के प्रति अपनी निष्ठा एवं स्वामीभक्ति प्रदर्शित की। साथ ही राज्य की सेना में भी मुख्य पदों पर रहकर सेना का प्रबंध एवं संचालन कर कोटा राज्य की ख्याति को बढ़ाया।

राजस्थान की सामन्त प्रणाली मर्यादाओं एवं कर्तव्यों के निर्वहन पर आधारित सामाजिक व्यवस्था थी। कोटा राज्य की सामन्ती प्रथा का अध्ययन एवं विश्लेषण करने पर स्पष्ट होता है कि किस प्रकार सामंतों के आपसी मतभेदों एवं अपने वर्चस्व को बढ़ाने की होड़ ने राज्य की व्यवस्थाओं को हानि पहुँचाई। कोटा राज्य में राजनीतिक षड़यंत्रों का महत्वपूर्ण दौर झाला जालिमसिंह के समय शुरू हुआ। झाला जालिमसिंह कोटा में ना केवल नान्ता ठिकाने का जागीरदार था अपितु कोटा राज्य का फौजदार भी था। धीरे–धीरे उसने अपने षड़यन्त्रों और कूटनीति के बल पर अपने आप को कोटा का मुख्य प्रशासक एवं सर्वेसर्वा बना लिया। जालिमसिंह ने अपनी कूटनीति से अंग्रेजों को दी गई समस्त सहायता का श्रेय स्वयं लेकर शक्तिशाली मित्र की सहानुभूति प्राप्त कर कोटा के महाराव को नाममात्र का शासक बनने पर मजबूर कर दिया। वहीं अपने उत्तराधिकारियों का भविष्य सुरक्षित कर दिया। झाला जालिमसिंह अपने इन कुचक्रों के बल पर ही कोटा में 60 वर्ष तक शासन कर सका एवं सर्वेसर्वा बना रहा।

जागीरदारी संस्कृति के विविध पहलुओं के अध्ययन के साथ ही जागीरदारों व प्रजा के मध्य स्थापित सामाजिक व सांस्कृतिक रिश्तों का भी एक अहम स्थान रहा है। इस स्थानीय संस्कृति की झलक हमें पारिवारिक और सामाजिक उत्सवों में देखने को मिलती है। ये लोक उत्सव एक ऐसा माध्यम होते थे जिसमें शासक और प्रजा अपनें सुखों को अपनी खुशियों को एक दूसरे से सांझा करते हुए अपनी सांस्कृतिक विरासत की निरंतरता को बनाये रखते थे।

कोटा रियासत के समान ही रियासत के जागीरदारों द्वारा भी समस्त उत्सव व त्योहार अपनी जागीर क्षेत्रों में पूर्ण हर्षोल्लास व शानोशौकत के साथ मनाये जाते रहे हैं। इन उत्सवों व त्याहारों में क्रमशः होली, दशहरा, गणगौर, तीज, दीपावली एवं अन्य उत्सवों में जन्माष्टमी, बसंतपंचमी आदि महत्वपूर्ण हैं। कोटा रियासत की प्रत्येक जागीर में होली का उत्सव बडे हर्षोल्लास के साथ मनाया जाता था। सभी जागीरों में होली का अलग ही रंग देखने को मिलता था। कोटा रियासत में होलिका दहन के समय 'नाथोपण्डों' हाड़ौती भाषा का गीत गाया जाता था। रियासत के जागीरदार भी महाराव द्वारा मनाये जाने वाले रंग उत्सव में शिरकत करते थे। ये उत्सव कई दिनों तक चला करता था। जागीरी ठिकानों में होली के दिन "राम–राम" होती जिसमें

जागीर की प्रजा जागीरदार को अभिवादन करने आती । इनमें हर वर्ग का व्यक्ति अपनी ओर से जागीरदार को अपने व्यवसाय अनुसार प्रतीक रूप में कुछ भेंट देता था। इस दिन सब भाई–बन्धु आपस में होली की राम–राम करने आते थे। इस प्रकार एक ओर जहाँ जागीरदार कोटा दरबार के साथ होली के उत्सव का आनंद उठाने हेतु उपस्थित होते वहीं जागीरी क्षेत्र में भी उसी उल्लास के साथ वे अपनी प्रजा और परिवार के साथ होली मनाते थे।

गणगौर उत्सव कोटा में बड़ा लोकप्रिय था। रजवाड़ों के समान ही जागीरी ठिकानों में भी गणगौर का उत्सव बड़ी धूमधाम से मनाया जाता था। सभी ठिकानों की अपनी–अपनी गणगौर होती थी।

कोटा का दशहरा अपनी विशिष्ट पहचान रखता है। कोटा राज्य के प्रमुख जागीरदारों को राजधानी में आमंत्रित किया जाता था। महाराव रावण वध हेतु पूरे तामझाम के साथ गढ़ से सवार होकर निकलते। इसके पश्चात दरीखाना लगता जहाँ जागीरदारों, उमरावों द्वारा महाराव को नजर भेंट की जाती थी। जागीरदार कोटा महाराव के साथ तो दशहरे का आनन्द उठाते ही थे साथ ही जागीरी क्षेत्रों में भी पूर्ण आनन्द से दशहरा मनाया जाता था जिसमें जागीरदारों के परिवार के सदस्य शामिल हो त्योहार का आनन्द लेते थे।

कोटा रियासत के जागीरी ठिकानों में भी जन्माष्टमी का उत्सव बड़ी धूमधाम से मनाया जाता था। सभी जागीरी ठिकानों में जागीरदारों एवं उनके परिवार के सदस्यों द्वारा निर्मित मदनमोहन जी, श्रीकृष्ण के मंदिर बने होते थे। मंदिरों में बड़े उल्लास से जागीरदारों के परिवार के साथ ठिकाने की प्रजा जन्माष्टमी का उत्सव मनाती थी।

जागीरदारों द्वारा पारिवारिक उत्सव भी बड़ी धूमधाम से मनाये जाते थे। पुत्र जन्म होने पर जागीरदार द्वारा जोशी, पुरोहितों, वैद्य, बाजेदारों, कलावन्तों, गुणीजनों आदि को नेग एवं पुरस्कार दिये जाते थे। जागीरदारों के पारिवारिक उत्सवों में विवाह संस्कार भी एक महत्वपूर्ण उत्सव रहा है। हर घरानें की अपनी कुल परम्परा के अनुसार अपनी विशिष्ट रस्में और रीति रिवाज हुआ करते थे जिनका उल्लेख तत्कालीन ख्यातों, खरीतों, दस्तूर की बहियों आदि में उल्लेख मिलता है।

कोटा राज्य में जब किसी जागीरदार की मृत्यु हो जाती हो थी तो कोटा महाराव स्वंय उसके आवास पर जाकर उसके उत्तराधिकारी को मान्यता प्रदान करते थे। इसे मातमी होना कहते थे। 'मातमी' होने के बाद ही उत्तराधिकारी वैध समझा जाता था ।

रजवाड़ों, ठिकानों तथा सुरूचि सम्पन्न व्यक्तियों द्वारा समय–समय पर लोककल्याण एवं कला के क्षेत्र में काफी योगदान दिया जाता रहा है जो तत्कालीन संस्कृति का परिचय देता है। जागीरदारों द्वारा अपने अपने जागीरी क्षेत्रों में जनता के लिए समय–समय पर कुएँ, तालाब, बावड़ियों का निर्माण करवाया गया। जागीरदार मंदिरों के निर्माण एवं अन्य खर्चे हेतु भूमिदान दिया करते थे।

बम्बूलिया के जागीरदार महाराजा देवसिंह के समय में बम्बूलिया में 1766 ई. में हीराधाय की स्मृति में पूर्वाभिमुखी लक्ष्मीनाथ जी का मंदिर बनवाया गया। कोटड़ा के जयसिंह (महाराव उम्मेदसिंह द्वितीय के बड़े भ्राता) बम्बूलिया ठिकाने में गोद आये थे। इन्होंने बम्बूलिया के महलों के चारों ओर एक विशाल परकोटा बुर्जों सहित बनवाया। महाराजा जयसिंह की पत्नी जादोन जी ने बद्रीनाथ में एक धर्मशाला बनवाई। कोटा राज्य के कुनाड़ी ठिकाने के जागीरदार राज विजयसिंह झाला ने बीजासन माता का मंदिर बनवाकर वहाँ माता की प्रतिमा को स्थापित किया। कोटा रियासत के जागीरदारों द्वारा अपने लिए आलीशान हवेलियों का निर्माण करवाया गया। इन्हीं हवेलियों में एक प्रमुख हवेली झाला हवेली है जो कि कोटा गढ़ के परकोटे से लगी हुई है। यहाँ चित्रित भित्ति चित्र कोटा के सर्वाधिक सुन्दर चित्र माने जाते है। झाला जालिमसिंह ने सूरजपोल में अन्य हवेली का निर्माण करवाया था। इसे झाला हाउस भी कहते है। कोटा राज्य की हवेलियों में ही एक और प्रसिद्ध हवेली बड़े देवता की हवेली है। इस हवेली का निर्माण राजगुरू श्री लाल जी ने सन् 1855 मे करवाया था। कोटा राज्य के जागीरदारों द्वारा अपने–अपने जागीर क्षेत्रों मे गढ़ों का निर्माण करवाया। इन गढ़ों के माध्यम से हमें उस समय के जागरीदारों के रहन–सहन की जानकारी मिलती है। इन्ही गढ़ों में प्रसिद्ध गढ़ है इन्द्रगढ़ का गढ़ जो एक पहाड़ी के ढलान पर पहाड़ी के पश्चिम में स्थित है।

पीपल्दा ठिकाने के जागीरदारों द्वारा भी पीपल्दा में किले का निर्माण करवाया गया था। पीपल्दा स्थानीय राज्यों गैंता, पूसोद एवं पीपल्दा की सम्मिलित

राजधानी था इसलिए इसे त्रिराज्य गाँव भी कहा जाता था। पीपल्दा का किला तीन भागों में बँटा हुआ है जिन्हें पीपल्दा ठिकाना, पूसोद ठिकाना एवं गैंता ठिकाना के नाम से पुकारते हैं। इन दुर्गों की सुरक्षा व्यवस्था, शिल्पकला, स्थापत्य कला, चित्रकारी ठिकानेदारों की अभिरूचि के साथ ही उनकी आर्थिक स्थिति को भी प्रकट करती है।

राज्य की शासन व्यवस्था में जागीरी प्रथा अपनी विशिष्टताओं के साथ महत्वपूर्ण स्थान रखती है। ये विशेषताएँ ही उनके चिर स्थायित्व का प्रमुख कारण रही। आगे चलकर इस व्यवस्था में अनेक बुराइयाँ आ गई किन्तु इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि एक युग में राजस्थान के अस्तित्व एवं स्वरूप के लिए इसका महत्वपूर्ण योगदान रहा है। अनेक परिवर्तनों से गुजरती हुई सामन्ती व्यवस्था को ब्रिटिश शासन ने सर्वाधिक आघात अवश्य पहुँचाया किन्तु राज्य व समाज के गौरवस्तम्भ के रूप में इसका अस्तित्व स्वतन्त्रता तक विद्यमान रहा।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

(Bibliography)

संदर्भ ग्रन्थ सूची
(Bibliography)

1. अभिलेखागारीय सामग्री

- भारत का राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली
- राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर
- राजकीय अभिलेखागार, शाखा कोटा

2. पुरालेख सामग्री

- ठिकाना रिकार्डस, कोटा रियासत
- प्राच्य शोध संस्थान, कोटा
- प्रताप शोध संस्थान, उदयपुर

3. हिन्दी में प्रकाशित ग्रन्थ

- बांकीदास, ख्यात, ओरियन्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, जयपुर, राजस्थान
- बघेला, हेतसिंह, राजस्थान के इतिहास की रुपरेखा, रिसर्च पब्लिकेशन, जयपुर.
- भाटी, नारायण सिंह, राजस्थान के ऐतिहासिक ग्रन्थों का सर्वेक्षण, राजस्थानी ग्रन्थागार जोधपुर, 1989 ई.
- चीतलवाना, राव गणपत सिंह, हाड़ा (चहुवान) राजवंश, कनकगढ़ प्रकाशन, सांचौर, वि.सं. 2069
- चौधरी, रामनारायण, आधुनिक राजस्थान का उत्थान एक संस्मरणात्मक इतिहास, अजमेर प्रकाशन मण्डल, 1967 ई.

- चूण्डावत, रानी लक्ष्मी कुमारी, सांस्कृतिक राजस्थान , राजस्थान पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा. लि.), जयपुर, 1984 ई.
- चूण्डावत, रानी लक्ष्मी कुमारी, मांझलरात, राजस्थानी ग्रन्थाकार, जोधपुर, 2015 ई.
- चूंडावत, रानी लक्ष्मी कुमारी, रजवाड़ी लोकगीत (गणगौर), राजस्थानी ग्रन्थाकार, जोधपुर
- देवडा, जी.एस.एल., राजस्थान की प्रशासनिक व्यवस्था (1568 से 1818 ई.), धरती प्रकाशन बीकानेर, 1989 ई
- दिवाकर, बी.एम., राजस्थान का इतिहास, साहित्यकार, जयपुर, 1987 ई
- गहलोत, जगदीश सिंह, राजपूताने का इतिहास, भाग 2, हिन्दी साहित्य अकादमी, जोधपुर 1960
- गुप्ता, बेनी, राजस्थान का इतिहास, बोहरा प्रकाशन जयपुर , 1988 ई.
- गुप्ता, के. एस., एंव ओझा, जे. के., राजस्थान का राजनीतिक व सांस्कृतिक इतिहास , राजस्थान ग्रन्थाकार, जोधपुर, 1986 ई.
- हाड़ा, शिवदान सिंह, हाड़ा चौहानों की शाखाऐं, उनके ठिकाने एंव साहित्यकार, श्री राघवेन्द्र प्रकाशन, कोटा, 2004
- हाड़ा, शिवदान सिंह, कोटरियात का संक्षिप्त इतिहास, श्री राघवेन्द्र प्रकाशन, कोटा
- जैन, हुकमचन्द, ऐतिहासिक राजस्थान – इतिहास मार्तण्ड गौरीशंकर हीराचन्द ओझा का समग्र अवदान, श्याम प्रकाशन जयपुर, 1973 ई.
- जैन, एम. एस., आधुनिक राजस्थान का इतिहास, पंचशील जयपुर, 1988 ई.
- कोडिया, बनमाला, राजपूताने का इतिहास (1793 ई0 से 1817 ई.), शोध प्रबन्ध, राज.वि.वि., जयपुर
- कवीवर श्याममल दास,, वीर विनोद, राज यन्त्रालय उदयपुर,संवत् 1943 ई., मित्र वासर,चैत्र शुक्ला

- मनोहर, राघवेन्द्र सिंह, राजस्थान के राजधरानें का सांस्कृतिक अध्ययन, पंचशील जयपुर, 1991
- मिश्र, रतनलाल, राजस्थान का इतिहास, वैदिक यन्त्रालय अजमेर, 1993 ई.
- मीसण, सूर्यमल्ल, वंश भास्कर, संपादक स्व. पण्डित रामकरण आसोपा मुद्रक–प्रताप प्रेस, उदयपुर, बाफना बुक डिपो।
- नैणसी, मुहणोत, ख्यात, भाग एक, काशी संस्थान, राजस्थान के राजवंशों का इतिहास, राज.साहित्य मन्दिर ,1976 ई0
- ओझा, गौरीशंकर हीराचन्द, राजपूताने का इतिहास, वैदिक यन्त्रालय अजमेर मण्डल, 1967 ई.
- ओझा, गौरीशंकर हीराचन्द, उदयपुर राज्य का इतिहास (तीन खण्ड), वैदिक यंत्रालय, अजमेर, 1938 ई.
- पालीवाल, देवीवाल, टॉड कृत राजस्थान में सामन्तवाद, राजस्थानी ग्रन्थागार जोधपुर, 1989 ई.
- पानगडिया, बी. एल., राजस्थान का इतिहास (प्राचीन काल से 1956 ई.)
- सहाय, गंगा, वंश प्रकाश , श्री रंगनाथ मुदण यन्त्रालय, बून्दी ,1927 ई.
- सक्सेना डॉ. अरविन्द बूंदी राज्य का इतिहास, 1818 से 1948 राजस्थान साहित्य संस्थान, जेधपुर, 1981
- शर्मा, बृजकिशोर, सामन्तवाद एंव किसान संधर्ष, पोइन्टर पब्लिशर्स, जयपुर 1992 ई.
- शर्मा, गोपीनाथ, राजस्थान के इतिहास के स्त्रोत, हिन्दी ग्रन्थ अकादमी जयपुर 1973 ई.
- शर्मा, गोपीनाथ, आधुनिक राजस्थान का इतिहास, ग्रन्थ भारती ,जयपुर 1994 ई
- शर्मा, कालूराम, कर्नल जेम्स टॉड़ कृत राजस्थान का इतिहास, श्याम प्रकाशन, जयपुर, 1988 ई.

- शर्मा, मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास (दो खण्ड), कोटा प्रिन्टिंग प्रेस, 1940 ई.
- श्रीवास्तव, जगतनारायण, कोटा के महाराव उम्मेदसिंह द्वितीय एंव उनका समय, नेहा विकास प्रकाशन, 1983
- सिंह, महाराज गिरवर, शार्दुल प्रकाश ग्रन्थ काव्य एवं करवाड़ राज्य का संक्षिप्त इतिहास (1618 से 1948 ई.), भारतीय इतिहास संकलन योजना, जोधपुर शाखा, राजस्थान
- सिंह, रघुवीर, पूर्व आधुनिक राजस्थान, पंचशील प्रकाशन जयपुर, 1990 ई.
- टॉड, कर्नल जेम्स, एनल्स एण्ड एंटीक्वीटीज ऑफ राजस्थान, हिन्दी संस्करण, प्रकाशक–आदर्श हिन्दी पुस्तकालय, इलाहाबाद, 1965 ई.
- वर्मा, डॉ. बद्रीनारायण, कोटा भित्ति चित्रांकन परम्परा, राधा पब्लिकेशन नई दिल्ली, 1989
- व्यास, प्रकाश, राजस्थान का सामाजिक इतिहास (7वीं शताब्दी से 1950 ई. तक), पंचशील, जयपुर
- व्यास, रामप्रसाद, आधुनिक राजस्थान का वृहत इतिहास, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 1998 ई.
- यादव, गजेन्द्र सिंह यादव, कोटा के किशोर सिंहोत हाड़ाओं के ठिकानें, जय शोध संस्थान, मांगरोल, बारां, 2008.

4 The Published works in English

- A.Collection, The Treaties Engagements and Santtas Relating to India and Neighbouring Countries, Complied by C.Y. Aitchison B. Cs. Vol.III.The Traties Containig and Relating to the state in Rajputana. Recieved and Continue upto 1930A.D. by the Authority of the Foriegn and Political Department, Calcutta.Goverment of India Cantrol Publication Branch,1932 A.D.

- Benergy, Anil Chandra, Lecturers on Rajput History, Firma K.L. Mukhobandhary Calcutta, 1962.
- Chief and Leading, Families of Rajputana, Calcutta, Superintendent, Goverment Printing ,India 1912 A.D.
- Gahlot, Jagdish Singh, Rajsthan (A Social Economic Study) Rajsthan Sahitya Mandir, Jodhpur, 1981
- Gupta, Beni, Maratha Penetration in to Rajsthan. Printed at Reasearch Publication Delhi. 1979 A.D.
- Imprial India Gazetteer , Provincial Series Rajputana 1908 A.D. Published by Superintedent, Govt Press Calcutta
- Mahamahopadhya Shri Shayam Das Ji , Veer Vinod, Published by Raj Yantralaya, Udaipur
- Munshi Nawal kishore, Yantralaya Lucknow, 1934 V.S.1878 A.D.
- Nensi, Muhnota, Muhta Nensi Ri Khyat, Published by Oriental Reasearch Jodhpur (Raj.)
- Ojha, Gauri Shankar Hira Chand, History of Udaipur States (Hindi) Published by Vedik Yantralaya Ajmer, 1938 A.D.
- **Rajputana Gazatteers: Vol.III B.The Western Rajputana State Residency The Bikaner Ajency, Publication Allahabad. The Pioneer Press 1906 A.D.** Shaukat Ali Khan, History & Historious of Rajasthan New Delhi, Triveni Publication 1981, Jodhpur
- Sahai , Pandit Ganga, Vansh Prakash, Published by Vajpeyi Pandit Ram Ratan
- Sardesai , G.S., Selection From Peshwas Dafter, Published by Govt. Press, Bombay 1927_1932
- Sardesai, G.S., New History of the Marathas, Vol. II Published by K.B. Dhawale Phonix Publications. Chira bazar Bombay, 1957

2nd Edition

- Sarkar, J.N., Fall of the Mughal Empire, Published by S.C. Sarkar & Sons, Calcutta,1932
- Saxena, R.K., Maratha Relations with the Major States of Rajputana (1761-1818) New Delhi (S.Chand Publications 1973, Central Arid Zone Reasearch Institute Jodhpur, Rajsthan)
- Sharma, G.C., Important Features Of the Administration of the Rajputana States 1605 to 1818 A.D. Jaipur (Raj.)
- Sharma, Mathura Lal, Kota Rajya ka Itihas, Published by Kota Printing Press, Kota
- Shastri, R.P., Jhala Jalim Singh, Printed at Raj Printing works Kishan Pole, Jaipur.
- Tod, Colonel James, Annals and Antiquities of Rajsthan, Published by Geoge & Sons Limited London , 1832
- Vashishtha, V. K., Rajputana Ajency (1832-1858) Publishers, Jodhpur,1978

5. अप्रकाशित पाडुलिपि–मौलिक ग्रंथ

- महाराज हरिसिंह, खातोली इतिहास दर्पण
- मुंशी मूलचन्द, तवारिख ए कोटा राज
- शिवदान सिंह हाड़ा, कोटरियात का वृहत इतिहास
- ठाकुर लक्ष्मण दान जी महाराज, कोटा राज्य का इतिहास

6. जर्नल रिपोर्ट्स एवं शोध – पत्रिकाएँ

- जर्नल ऑफ द राजस्थान इन्स्ट्टीट्यूट ऑफ हिस्टोरिकल रिसर्च, जयपुर
- जिज्ञासा : ए जर्नल ऑफ द हिस्टरी ऑफ आइडियाज एंड कल्चर, डिर्पाटमेंट ऑफ हिस्ट्री राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

- ख्यात (इतिहास, कला एवं संस्कृति की शोध पत्रिका) अंक –2,1995 संम्पादक बी.एल. भादानी, मरुभूमि शोध संस्थान, श्री डुगरगढ़, (चुरु)
- राजस्थान भारती, बीकानेर

7. गजेटियर

- इम्पीरियल गजेटियर ऑफ इंडिया, राजपुताना, 1908
- राजपूताना गजेटियर (The W.R.S., Residency, Bikaner Agency1909)
- द एनुअल रिपोर्ट ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ कोटा फ्राम 1885–1945 A.D.

छायाचित्र

महाराव उम्मेदसिंह 'द्वितीय'

महाराजा छगनसिंह, 'कोटड़ा'
(महाराव के पिता)

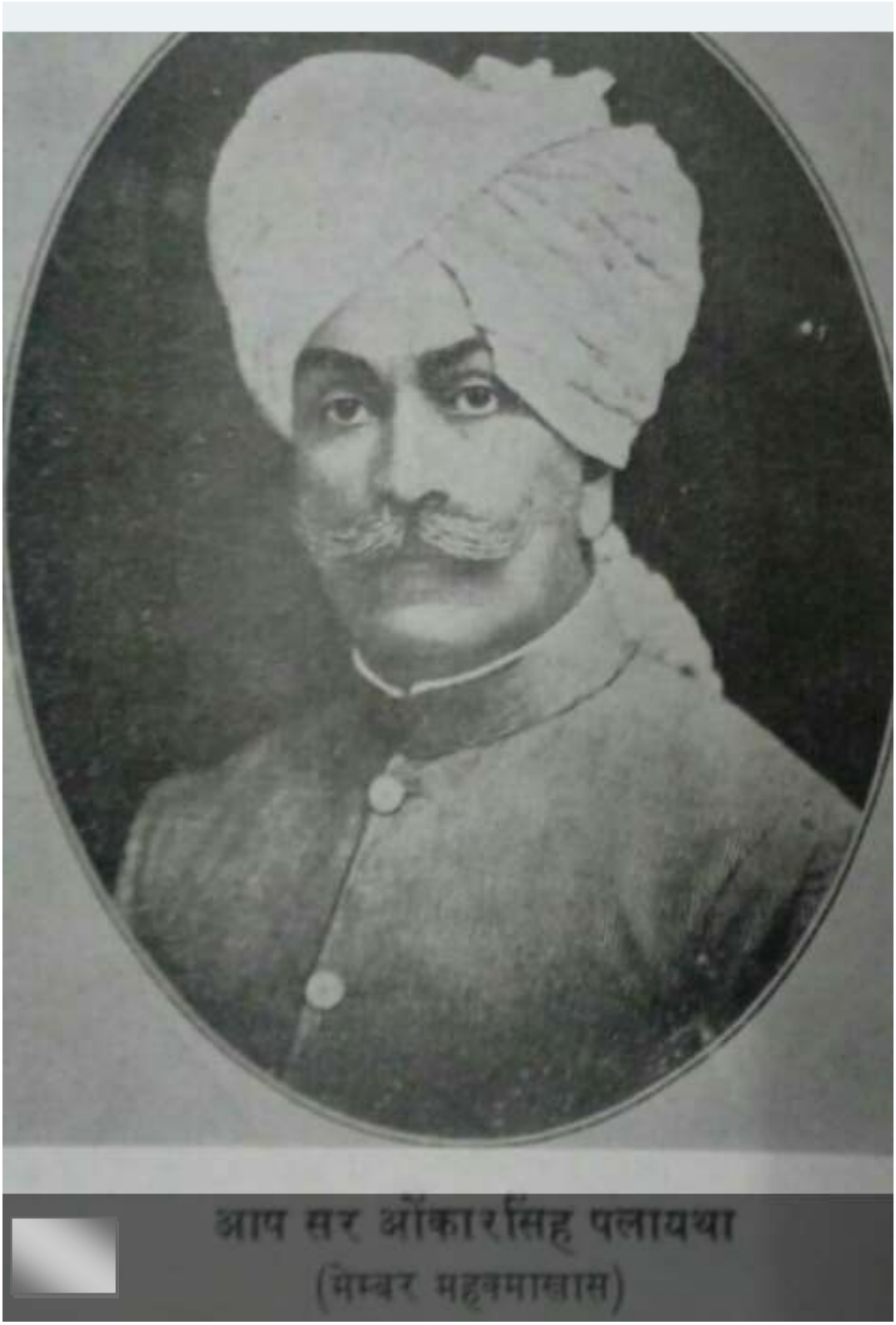

आप सर ओंकारसिंह पलायथा
(मेम्बर महकमाखास)

आप गोविन्दसिंह कोयला

कर्नल पृथीसिंह

राज विजयसिंह कुनाड़ी
(हार्दिक पुण्यार्थ)

महाराव अधिकारियों एवं जागीरदारों के साथ (उम्मेद क्लब, C. 1916 ई०)

बाएं से दाहिने (पीछे खड़े हुए) : ठाकुर देवीसिंह पालवया, नजीर हुसैन (हाकिम कारखाना), बाबू कल्याणसिंह (हाकिम बंगलात), बाबू किशन सहाय (रेवेन्यू कमिश्नर), कुंवर अक्षयराजसिंह गेंता, पण्डित पुरुषोत्तम राव सारोला, पण्डित विशनसहाय कौल (सीनियर जज), पण्डित श्रीराम (मजिस्ट्रेट), कुंवर चन्द्रसेन कुन्हाड़ी, ठाकुर बल्देवसिंह (हाकिम इकात)

" (कुर्सियों पर) : दीवान चौबे रघुनाथ दास, कुंवर ओंकारसिंह पलायथा, आप गोविन्दसिंह कोथला, महाराव, राज विजयसिंह कुन्हाड़ी, मुंशी शिवप्रताप—प्राइवेट सेक्रेटरी, मुंशी मैरोंलाल (हाकिम फौज)

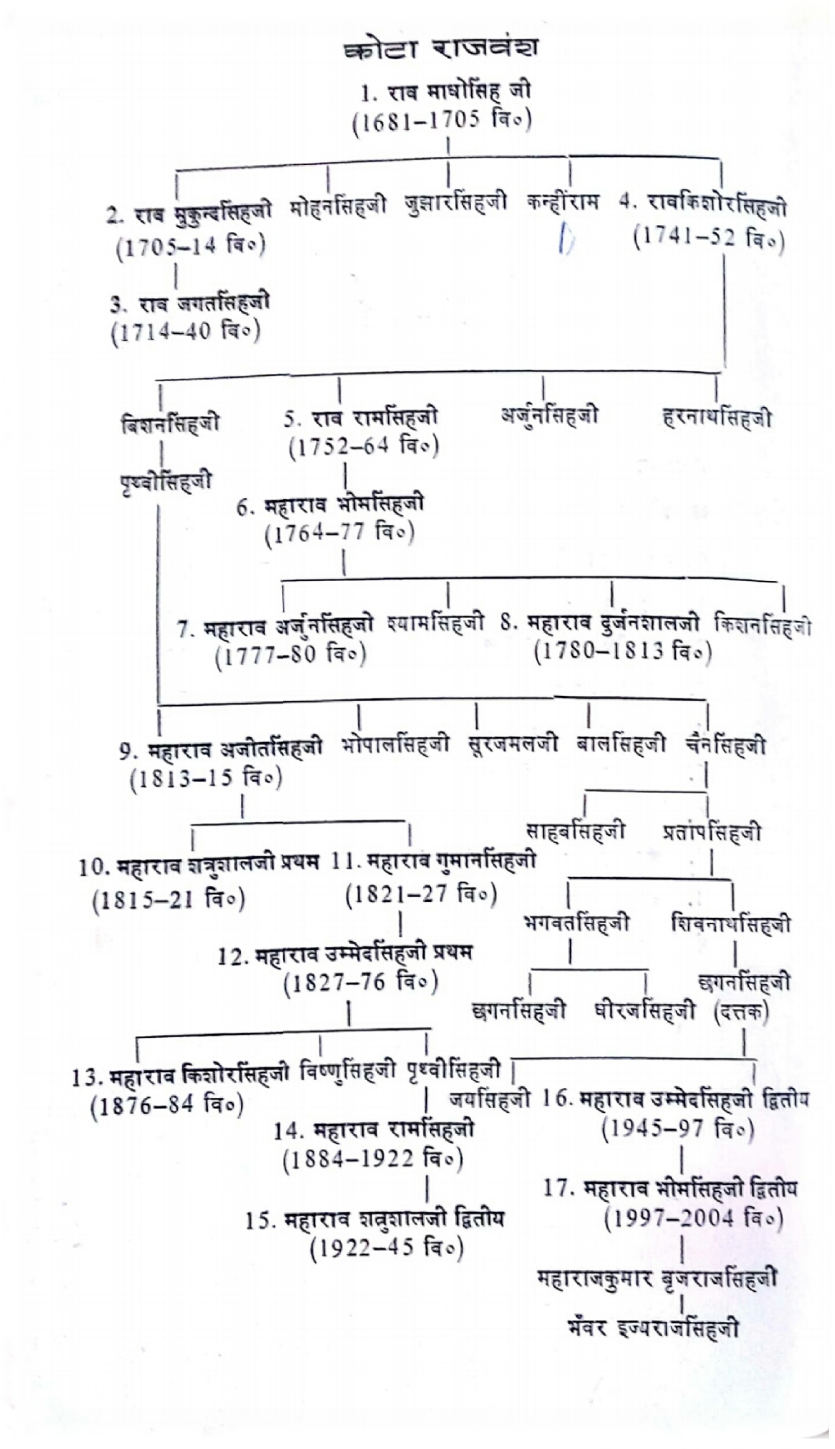
कोटा राजवंश
1. राव माधोसिंह जी
(1681–1705 वि०)
2. राव मुकुन्दसिंहजी
(1705–14 वि०)
मोहनसिंहजी
जुझारसिंहजी
कन्हीराम
4. रावकिशोरसिंहजी
(1741–52 वि०)
3. राव जगतसिंहजी
(1714–40 वि०)
बिशनसिंहजी
पृथ्वीसिंहजी
5. राव रामसिंहजी
(1752–64 वि०)
अर्जुनसिंहजी
हरनाथसिंहजी
6. महाराव भीमसिंहजी
(1764–77 वि०)
7. महाराव अर्जुनसिंहजो
(1777–80 वि०)
श्यामसिंहजी
8. महाराव दुर्जनशालजी
(1780–1813 वि०)
किशनसिंहजी
9. महाराव अजीतसिंहजी
(1813–15 वि०)
भोपालसिंहजी
सूरजमलजी
बालसिंहजी
चैनसिंहजी
साहबसिंहजी
प्रतापसिंहजी
10. महाराव शत्रुशालजी प्रथम
(1815–21 वि०)
11. महाराव गुमानसिंहजी
(1821–27 वि०)
भगवतसिंहजी
शिवनाथसिंहजी
12. महाराव उम्मेदसिंहजी प्रथम
(1827–76 वि०)
छगनसिंहजी
छगनसिंहजी
धीरजसिंहजी (दत्तक)
13. महाराव किशोरसिंहजी
(1876–84 वि०)
विष्णुसिंहजी
पृथ्वीसिंहजी
जयसिंहजी
16. महाराव उम्मेदसिंहजी द्वितीय
(1945–97 वि०)
14. महाराव रामसिंहजी
(1884–1922 वि०)
15. महाराव शत्रुशालजी द्वितीय
(1922–45 वि०)
17. महाराव भीमसिंहजी द्वितीय
(1997–2004 वि०)
महाराजकुमार बृजराजसिंहजी
भँवर इज्यराजसिंहजी

प्रकाशित शोध पत्र

Vol. 3, Issue IV, UGC Approved Journal No - 43919 April 2018

Jai Maa Saraswati Gyandayini

An International Multidisciplinary e journal

UGC Approved

ISSN: 2454-8367 e-ISJN: A4372-3118

ISSN: 2454-8367

Website: www.jmsjournals.in

Impact Factor : 4.032 (IIJIF).

Opened Access, Indexed & Peer Reviewed e-Journal

Editor-in-Chief

Dr. Raj Kumar Verma

Jai Maa Saraswati Gyandayini: An International Multidisciplinary e- Journal

JMS Institute of Law 52, Mayur Market Above Dr. Ambedkar Bank,

Thatipur Morar Gwalior, M.P. India Pin 474011, Phone: **07514066000**, Mob: **09755599942**

Email : jmsjournals.in@gmail.com, web: www.jmsjournals.in

Jai Maa Saraswati Gyandayini ISSN: 2454-8367
An International Multidisciplinary e-Journal
(Peer Reviewed, Open Access & Indexed)
Web: www.jmsjournals.in Email: jmsjournals.in@gmail.com
Vol. 3, Issue-IV
April 2018
Impact Factor : 4.032 (IIJIF) UGC Approved e-Journal No. - 43919
e-ISJN: A4372-3118

Index Vol. 3, Issue-IV, April 2018

S.No.	Title	Author Name	Subject	Page No.
0	Cover Page Vol. 3, Issue– IV, April 2018	Journal	Article	00
01	Editorial Board	Journal	Article	00
02	Index Vol. 3, Issue-IV, April 2018	Journal	Article	00
03	Indian Middle Class Values and Materialism in Vivek Shanbhag's Novel Ghachar Ghochar : A Study	Mrs. Kiran Singh	Article	01-04
04	Pratityasamutyapad Siddhant Se Anishwarwad Siddhant Ka Vikas – Ek Bodhya Darshnik Vishleshan	Abhinav Divyanshu	Article	05-11
05	A Study of Judicial Activism and Public Interest Litigation in India	Raj Kumar Verma Ramesh Kumar	Article	12-15
06	Happiness Ka Samajshastriya Vishleshan	Dr. Jyoti Sidana	Article	16-25
07	Binodini Dasi On/ Off Stage: Engendering Gossip And Sexualizing Stardom	Anuradha Tiwari	Article	26-30
08	User Satisfaction On I.T. Oriented Library Services: A Study on Selected College Libraries of Upper Assam	Anurag Borpatra Gohain, Akramul Haque	Article	31-37
09	Shung kalin Kala Evam Sahitya Me Suryoupasna: Ek Addhyan	Dr. Shraddha Tripathi	Article	38-42
10	Home based Women Embroiderers of Aligarh: An Insight into their Work and Working Conditions	Dr. Saman Ahmed	Article	43-54
11	Vartman Pariprekshaya Me Buddha Ke Manviya Moolyo Ki Prasangigta	Nand Kumar Mishra	Article	55-58
12	Dad; My Everlasting Hero	Dr. Sri. Pa. Dhevarajan,	Article	59-60
13	Bhavuktaon Ka Ant	Mihir Dev, Abhinav Divyanshu	Article	61-62
14	Effectiveness of Intrapersonal Intelligence Based Teaching Strategies on Academic Achievement of Secondary School Students	Dr. Bhavik M Shah, Sushma Kumari Jha	Article	63-69
15	Role of Self Help Groups in Eradicating Poverty (With Special Reference to Karnataka State)	Abdul Wahab	Article	70-75
16	Sangit Chikitsa (Raktchap Evam Mansik Rogiyo Ke Sandarbh	Smt. Rachna Singh	Article	76-78
17	Jila Mainpuri (U.P.) Me Maleria Rog Paristhiki: Ek Bhougolik Addhyan	Dharmendra Singh Yadav	Article	79-86
18	Substantial Assistance Scheme of Travancore–Cochin Government: A Critical Analysis	C.L. Vimal Kumar	Article	87-95
19	Vision 2022: A Development Agenda	Ashutosh Pandey	Article	96-101
20	Trauma of Flesh: A Commentary on The Prostituted Women in Select Indian Short Fiction	Jyothsana M Ramesh	Article	102-107
21	Sahitya ke Sarokar Aur Media Ki Bhoomika	Saumitra Mani Tripathi	Article	108-110
22	Shiksha Darshan: Arth, Avashyakta, Prakrati tatha Karya	Upendra Nath Yadav	Article	111-114
23	Flipped Learning	Ranjan Kumar	Article	115-118
24	Shaley Vatavarn, Unke Prakar Evam Aayamo Ka Adhdhyan	Rahul Kumar Tiwari, Dr. Pragya Yadav	Article	119-122
25	Mahakavi Vasudev Ke Mahakavya Me Varnit Rajnaitik Vyavastha	Dr. Renu Shukla	Article	123-127
26	Kabir Ki Bhakti ka Lokopyog	Brijesh Kumar	Article	128-130
27	Lab to Land Initiative in Mizoram: A Process Evaluation	Lalnilawma, Cherie L. Chhangte,	Article	131-145

57	Quotient-3 Cordial For Generalized Petersen Graph-Part-II	P. Sumathi, A. Mahalakshmi,	Article	352-385
58	Spatial Magnitudes And Social Metaphysics: Revisiting Aristotelianism	Devanjan Khuntia	Article	386-392
59	Symbolizing Khadi And Village Industries In India	Adrita Gogoi	Article	393-400
60	Bhookh	Asha Gour	Poem	401-402
61	Unheard Voice of a Fetus	Dr. Sri. Pa. Dhevarajan	Poem	403
62	Jharkhand Rajya Ke Birhor Janjati (Viluptpraya Prajati) Ke Arthik, Samajik Evam Shaikshinik Stithi ka Parichaya: Giridih Jile ke Sandarbh Me	Amita Kumari, Shweta Kumari	Article	404-416
63	Thiruvalluvar's Observation On Nature: A Study On The Classical Tamil Text Thirukkural	Dr. M. Kalaiarasan	Article	417-419
64	Academic Achievement Of Adolescents In Relation To Parental Encouragement	Ghratendra kumar	Article	420-426
65	Survey On Corporate Social Responsibility In Indian Corporate Sectors: Trends, Challenges And Opportunities	K.S. Khatheeja Parvin, Dr. D. Sasikumar	Article	427-433
66	Raja Rammohan Roy On Social Welfare	Rakhi Sutradhar	Article	434-437
67	Study of soil parameters of Khonp village of Chhatarpur District	Anita Dubey	Article	438-441
68	Role of Different Educational Agencies in Value Based Education	Lt. (Dr.) Pravesh Kumar, Noor Aisha	Article	442-447
69	The Spirituality in Sri Thyagaraja Vibhakthi Krithis of Mutthuswamy Dikshithar	G. K. Shubhamangala	Article	448-453
70	Dr. C.V. Raman Vishwavidhyalaya Ka Kshetriya Arthik Gatividhiyo Par Prabhav (Ek Addhyan)	Ku. Suman Lata Rathore, Dr. Pratima Bais	Article	454-459
71	"Adhunik Bhartiya Arthvyavastha Evam Cashless (Nagad Rahit) Pranani Ka Addhyan" (Bilaspur C.G. Ke Sandarbh Me)	Dr. Pratima Bais, Kamini Singh	Article	460-466
72	Chhattisgarh Shasan ki Shikchha Yojnao ka Aadim Jati par Prabhaw (Baloda Bazaar Jile ke Bilaigarh kshetra ke Vishes Sandarbh me)	Sakuntla Rakesh, Dr. Pratima Bais	Article	467-470
73	Nagaarjun ke Kavya me Manviya Samvedna Ke Vividh Swaroop	Dr. Rajmuni	Article	471-482
74	Prachin Kal Se Adhunik Kal Tak Bharat Me Karagraho ka Vikash	Dr. Ravi Kumar Tyagi	Article	483-494
75	Child Labour: A Socio-Legal Analysis	Kapil Dev, Dr. Surendra Kumar	Article	495-502
76	Water Resource, Needs And Development	Dr. Pratima Bais	Article	503-506
77	A Comparative Study of Test Anxiety of Open Book and Closed Book Examinees Studying in B.Ed. Programme in Gujarat State	Dr. Sanjay M. Gupta	Article	507-518
78	A Study on Drought and Migration of Agricultural Labourers And Farmers: - Reference to Dumberpali Panchayat, Sohela Block (Odisha)	Rajib Kumar Barik, Dr. Pratima Bais,	Article	519-524
79	Impact of Working Environment on Teaching Efficiency of Primary School Teacher:- Referance To Sohela Block of Bargarh District (Odisha)	Toshabanta Duan	Article	525-531
80	Indian Politics and Coalition Politics	T. Girish Nayaka	Article	532-539
81	Kota Rajya Ke Jagirdar Evam Unki Sainik Sevayen	Sunita Ojha	Article	540-543

****

Jai Maa Saraswati Gyandayini ISSN: 2454-8367
An International Multidisciplinary e-Journal
(Peer Reviewed, Open Access & Indexed)
Web: www.jmsjournals.in Email: jmsjournals.in@gmail.com
Vol. 3, Issue-IV
April 2018
Impact Factor : 4.032 (IIJIF) UGC Approved e-Journal No. - 43919
e-ISJN: A4372-3118

कोटा राज्य के जागीरदार एवं उनकी सैनिक सेवाएँ

सुनिता ओझा
शोधार्थी (इतिहास)
कोटा विश्वविद्यालय, कोटा

शोध सार

मध्यकालीन राजस्थान के जन जीवन में सामन्ती प्रथा का विशिष्ट स्थान रहा है। राजस्थान के राजपूत राज्यों में सामन्त व्यवस्था का उद्भव वहाँ के शासकों की कुलीय परम्परा से हुआ था। राज्य केवल शासक की सम्पत्ति नही था, अपितु कुलीय सामन्तों की सामूहिक धरोहर था। प्रत्येक राज्य में सर्वोपरि स्थान शासक का होता था तथा शासक के बाद राज्यो में महत्वपूर्ण स्थान सामन्तों का था। लगभग प्रत्येक राज्य का संगठन कुलीय भावना पर आधारित था। शासक 'कुल का नेता' होने के कारण राज्य में उसका विशेष महत्व था।[1] राज्य के सामन्त अपने आपको कुलीय सम्पत्ति (राज्य) का हिस्सेदार मानते थे।[2] इस शोध पत्र के माध्यम से शोधार्थी द्वारा 'कोटा राज्य के जागीरदार एवं उनकी सैनिक सेवाएँ" के बारे में शोध किया गया है जिसमें सैनिक सेवाओं पर महत्व डाला गया है।

राज्य की स्थापना के साथ ही सामन्तों का अस्तित्व आरम्भ हो गया था। राजा इन सामन्तों के सहयोग से ही राज्य की स्थापना व इसकी सीमा में विस्तार करने में सक्षम हुआ था। सामन्त गण अपने को राजा के अधीन नहीं, बल्कि उसका सहयोगी समझते थे। उनका राजा के साथ बन्धुत्व एंव रक्त का सम्बंध था, स्वामी और सेवक का नहीं। शासक और सामन्तों के बीच भाई–बन्धु के इस सम्बंध के कारण ही शासक की स्थिति 'बराबर वालों में प्रथम' के समान थी। सामन्त घरेलू और राजनैतिक मामलों में सामाजिक समानता का दावा करते थे। यद्यपि अन्य कुलों के राजपूतों को उनकी सेवाओं को ध्यान में रखते हुए जागीरें दी जाती थी तथापि राज्य के महत्वपूर्ण एंव विश्वसनीय पदों पर सामान्यतः स्वकुलीय सामन्तों को ही नियुक्त किया जाता था। एक ही कुल के सदस्य होने के कारण तथा स्वामी धर्म के सिद्दान्त से उत्प्रेरित होकर वे राजा की सेवा करने के लिए सदैव तत्पर रहते थे। युद्ध के समय सामन्त राजा की सहायता करते थे क्योंकि उनमें यह भावना निहित थी कि वे अपनी पैतृक सम्पत्ति की सामूहिक रूप से रक्षा करने हेतु ऐसा कर रहे है।[3]

राजपूताने की रियासतों पर मुगल सत्ता स्थापित हो जाने के पश्चात् यहां के राजपूत शासकों और उनके सामन्तों के आपसी सम्बन्धों में महत्वपूर्ण परिवर्तन आये। राजपूताने के शासक भी मुगल बादशाहों के मनसबदार बन गये थे। अतः इन शासकों ने भी मुगलों की मनसबदारी प्रथा को अपनाते हुये अपने राज्यों में जागीरदारी व्यवस्था को स्थापित किया। प्रस्तुत शोध पत्र कोटा रियासत के जागीरदारों एवं उनके सैनिक कर्तव्यों पर आधारित है।

1. कोटा राज्य की जागीर व्यवस्था

कोटा रियासत में भी जागीरदारों की मुख्यतः दो श्रेणियाँ थी एक देशथी एवं दूसरी हजुरथी। इन दोनों प्रकार के जागीरदारों के कोटा नरेश के प्रति सैनिक कर्तव्य थे। जिनका निर्वहन इनके द्वारा समय–समय पर किया

जाता था।

सैनिक सेवा शासकों और जागीरदारों के आपसी सम्बन्धों की मुख्य कड़ी थी। राज्य के जागीरदारों का सबसे महत्वपूर्ण कर्तव्य अपने शासकों को सैनिक सेवा प्रदान करना था। कोटा राज्य में भी जागीरदारों द्वारा दो प्रकार की सैनिक सेवा प्रदान की जाती थी। 1. युद्ध कालीन सेवा 2. शान्ति कालीन सेवा। युद्ध के समय जागीरदारों को अपनी दल बल सहित शासक की सहायता करने को जाना पड़ता था।[4] वहीं शान्ति काल में जागीरदारों को अपनी जागीरों की आय के अनुसार पैदल सैनिक तथा सवार देने पड़ते थे।[5]

2. कोटा नरेशों को जागीरदारों द्वारा दी गई सैनिक सेवायें

कोटा राज्य के प्रथम स्वतंत्र शासक राव माधोसिंह ने अनेक मुगल अभियानों में भाग लिया उन्हें लगभग 4 वर्ष तक बल्ख एवं बदख्शा में रहना पड़ा। वे मुगल साम्राज्य में पांच हजारी मसबदार थे। उस समय राज्य की रक्षा एवं मुगल साम्राज्य की सेवा हेतु युद्ध में ले जाने हेतु जागीरदारों की निरन्तर आवश्यकता रहती थी। राज्य का बहुत सा हिस्सा छोटी–छोटी जागीरों में बंटा हुआ था।[6]

राव माधोसिंह के पुत्र राव मुकन्द सिंह ने कितने ही राजपूतों को घुड़सवारों की चाकरी के लिए जागीरें दे रखी थी। प्रत्येक जागीरदार को समय पड़ने पर घोड़ो की नियत संख्या के साथ कोटा राज्य की सेवा हेतु सम्मिलित होना पड़ता था। जागीरदारों की हैसियत घोड़ो की संख्या पर निर्भर थी। जागीरदारों के पट्टों में घोड़ों की किस्म का भी उल्लेख रहता था। इसकी निगरानी परगने के हाकिम करते थे। कुछ जागीरदारों के साथ कुछ नियत संख्यक पैदल सैनिक रखने की शर्त की जाती थी। कभी–कभी जागीरदार के निवेदन करने पर उसको घोड़ों के वजाय पैदल सैनिक रखने की अनुमति मिल जाती थी।[7] कोटा राज्य में भी सैनिक सेवा के लिए जागीर प्रायः राजपूतों को ही दी जाती थी। इनमें हाड़ाओं के अतिरिक्त सोंलकी, कछवाहा, राठौड़, सिसोदिया, तंवर, पंवार एवं झाला राजपूत थे। इनके अतिरिक्त गुर्जर, मीणा, अहीर, भील सहरिया और मुसलमानों की भी कई गांव जागीर में दिये हुए थे।[8]

कोटा नरेशों को भी मुगल सेना के साथ युद्ध हेतु सिन्धु नदी के पार जाना पड़ता था। उस समय भारतीय सीमा को उलांघना धर्म विरुद्ध माना जाता था। अतः जागीरदारों से सिन्धु नदी पार जाने की शर्त कर ली जाती थी।[9] पलायथा, कोटड़ा, कोयला तथा सांगोद इन चार माधाणी ठिकानों के साथ एसी शर्त नहीं की जा सकती थी। क्योंकि यह कोटा नरेश के भाई थे। राव मुकुन्दसिंह ने सन् 1658 में मुगल बादशाह शाहजहां की ओर से धरमत के युद्ध मे भाग लिया ओर वीरगति प्राप्त की उनके साथ उनके तीन छोटे भाई और राज्य के प्रमुख जागीरदार मोहन सिंह, जुझारसिंह और कन्हीराम भी युद्ध भूमि में वीरगति को प्राप्त हुये। इनके अतिरिक्त छः अन्य सरदारों ने भी वीरगति प्राप्त की। इसी प्रकार कोटा नरेश राव किशोरसिंह प्रथम ने भी मुगलों के लिए मराठों एवं जाटों के साथ हुये युद्धों में भाग लिया। जाटों के साथ हुये युद्ध में राजगढ़ के जागीरदार गोरधन सिंह ने अद्भुत शौर्य का प्रदर्शन किया[10] इस युद्ध में घाटी के रावत तेजसिंह, गैंता के कुंवर घासीराम, पानाहेड़ा के ठाकुर सुजान सिंह, तारज के ठाकुर राजसिंह तथा कोटा के कई अन्य जागीरदारों ने भी वीरगति प्राप्त की।[11] कोटा के महाराव भीमसिंह प्रथम ने भी मुगलों एवं सैयद बन्धुओं के लिए अनेक युद्धों में अपनी वीरता प्रदर्शित की। उनके इन विजयी अभियानों में उनके जागीरदारों ने युद्ध में अपनी महत्वपूर्ण सेवा प्रदान की।

कोटा महाराव शत्रुशाल प्रथम के समय कोटा व जयपुर के मध्य कोटरियात के राज्यों को लेकर भटवाड़ा का प्रसिद्ध युद्ध हुआ था। इस युद्ध में कोटा के सरदारों ने अपनी अद्भुत वीरता दिखाते हुए जयपुर को शिकस्त दी। इस

युद्ध में कोटा के जागीरदार आप नाथसिंह राजगढ़, अमानसिंह नौताड़ा, चॉदसिंह सिसोदिया, गुलाब सिंह सौलंकी, इन्द्रसिंह मोतीकुऑ, शेरसिंह राठौड़, फतेहसिंह पूर्विया वीरगति को प्राप्त हुए।[12]

सन् 1804 में महाराव उम्मेदसिंह प्रथम के समय गरोठ के युद्ध में होल्कर के विरूद्ध अंग्रेजो के पक्ष में कोयला के आपजी अमरसिंह एवं पलायथा के आपजी अमरसिंह ने रणभूमि में वीरता प्रदर्शित करते हुए प्रार्णोत्सर्ग किया एवं होल्कर के आक्रमण से कर्नल मानसून की रक्षा की।[13] इस कारण अंग्रेजों ने भी इन वीरों के परिवारों के प्रति सम्मान प्रदर्शित किया।

दिसम्बर सन् 1817 में अंग्रेजों एवं कोटा राज्य के मध्य परस्पर संधि हो जाने के पश्चात् स्थिति में परिवर्तन आया। कोटा के प्रमुख जागीरदार एवं फौजदार झाला जालिम सिंह को अंग्रेजों का पूर्ण समर्थन प्राप्त था। अतः कोटा महाराव किशोरसिंह को पूर्ण अधिकार प्राप्ति हेतु संघर्ष करना पड़ा एवं झाला जालिम सिंह व कोटा महाराव किशोर सिंह के मध्य मांगरोल का युद्ध हुआ। इस युद्ध में सभी हाड़ा जागीरदारों ने महाराव का पक्ष ग्रहण कर युद्ध में भाग लेकर अपनी स्वामिभक्ति का परिचय दिया। यद्यपि इस युद्ध में महाराव किशोरसिंह पराजित हुए किन्तु हाड़ा वीरों का साहस देख कर कैप्टन मिलन व कर्नल टॉड भी चकित हो गये।[14]

कम्पनी से संधि के पश्चात् कोटा में राज्य के खर्चे पर कम्पनी की सेना रहने लगी थी जिसका नाम 'कोटा कन्टिन्जेन्ट' रखा गया था।[15]

महाराव रामसिंह के समय 1857 की क्रान्ति हुई था। इस घोर संकट के समय में जबकि बागियों ने कोटा महाराव को गढ़ में बन्द कर दिया था, कोटा के कई सरदार गैंते के महाराज चतुर्भुजसिंह, कोयले के आप अजीतसिंह, पीपल्दा के ठाकुर अजीतसिंह इत्यादि महाराव की सहायता एवं सेवा के लिए आए।

कोटा के महाराव उम्मेदसिह द्वितीय के समय (1889 से 1940 तक) कोटा राज्य की सेना का आधुनिकीकरण हुआ। इन परिवर्तित परिस्थितियों में जागीरदारों की सेना की महती आवश्यकता नहीं रह गयी किन्तु राज्य के प्रमुख ठिकानों के जागीरदारों ने सैन्य विभाग में अपनी प्रशंसनीय सेवाऐं दी। पलायथा ठिकाने के जागीरदार आपजी अमरसिंह महाराव उम्मेदसिंह के राज्यारोहण के समय कोटा राज्य की सेना के प्रधान थे।[16] बाद में इनके पुत्र और पलायथा के कुंवर औंकारसिंह को कोटा राज्य की सेना का जनरल ऑफीसर कमाण्डिंग बनाया गया। बाद में वे मेम्बर महकमा खास बना दिये गये। कुंवर औंकार सिंह के पश्चात् आप गोविन्द सिंह (कोयला ठिकाने के जागीरदार) को कोटा राज्य की सेना का जनरल ऑफीसर कमाण्डिग नियुक्त किया गयज्ञ[17] भारत सरकार ने इनकी सेवाओं के बदले इन्हें 'राव बहादुर' का खिताब दिया।[18]

अन्ता के ठाकुर पृथ्वीसिंह भी कोटा राज्य की सेना के चीफ जनरल ऑफिसर कमाण्डिंग रहे। कोटा राज्य की सेना का आधुनिकीकरण करने का श्रेय इन्हें ही दिया जाता है। कर्नल पृथ्वी सिंह ने ब्रिटिश आर्मी की ओर से प्रथम विश्वयुद्ध में भाग लिया। इन्होंने कोटा की सेना को ब्रिटिश सैन्य पद्धति पर पुनर्गठित किया।

उपसंहार

मुगल काल से लेकर ब्रिटिश काल तक कोटा के जागीरदारों ने राज्य की रक्षा में अपना योगदान देकर कोटा नरेश के प्रति अपनी निष्ठा एवं स्वामिभक्ति प्रदर्शित की। साथ ही राज्य की सेना में भी मुख्य पदों पर रहकर सेना का प्रबन्ध व संचालन कर कोटा राज्य की ख्याति को बढ़ाया। ये जागीरदारी व्यवस्था एक प्रकार की आपसी

साझेदारी थी और उसका स्वरुप सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक विशेषताओं से युक्त था। इस प्रथा में निजी रुप से भूमि से लाभ और राज्य की सैनिक सेवा सम्मिलित थी। इस प्रकार से ये विशेषतायें ही इसके चिर स्थायित्व का प्रमुख कारण रहीं।

सन्दर्भ पुस्तकें

1. डॉ. रामप्रसाद व्यास : रोल ऑफ नोबिलिटी इन मारवाड़, पृ. 8।
2. राजस्थान राज्य अभिलेखागार (जोधपुर रिकार्ड्स) हकीकत खाता बही 20 पृ. 95।
3. डॉ. रामप्रसाद व्यास – आधुनिक राजस्थान का वृहत इतिहास, पृ. 309।
4. राजस्थान राज्य अभिलेखागार (जोधपुर रिकार्ड्स) अर्जीफाईल न. 1/5 वि.स. 1858।
5. डॉ. गोपीनाथ शर्मा : राजपूत स्टडीज, पृ. 180।
6. डॉ. मथुरालाल शर्मा – कोटा राज्य का इतिहास, भाग–1 पृ. 144।
7. तकसीम सवत् 1706–07 पोष बुदी–II जागीर नाहर खान माकरोत।
8. (अ) कागजात संवत् 1704–1705।
   (ब) डॉ. मथुरालाल शर्मा : कोटा राज्य का इतिहास, भाग–1 पृ. 84।
9. डॉ. मथुरालाल शर्मा : कोटा राज्य का इतिहास, भाग–1 पृ. 144।
10. (अ) ठाकुर लक्ष्मणदान : कोटा राज्य का इतिहास, भाग।
    (ब) सूर्यमल्ल मिश्रण : वंश भास्कर पृ. 2887–2890।
11. डॉ. मथुरालाल शर्मा : कोटा राज्य का इतिहास, भाग–1 पृ. 208–09।
12. वही, भाग–2 पृ. 446।
13. वही, भाग–2 पृ. 491।
14. वही, भाग–2 पृ. 574।
15. वही, भाग–2 पृ. 593।
16. डॉ. जगत नारायण : कोटा के महाराव उम्मेदसिंह द्वितीय एवं उनका समय पृ. 139।
17. वही, पृ. 291।
18. वही, पृ. 292।

UGC 45080 Vol - 10/Jan 2018 ISSN 2321 5054

History Times

A Peer Reviewed & UGC Approved Research Journal
of History & Archaeology

Editors
Prof. Naveen Gideon
Prof. B. K. Shrivastava

Bundelkhand Itihas Parishad Evam Shodh Sansthan, Sagar (M.P.)
Regd. No. 06/09/01/09369/12

कोटा के जागीरदारों की विभिन्न श्रेणियाँ एवं उपाधियाँ

सुनीता ओझा
शोधार्थी - इतिहास
कोटा विश्वविद्यालय, कोटा (राज.)

शोध सार

तेरहवीं शताब्दी ई. के अन्तिम चतुर्थांश में बून्दी राज्य के अधीन होकर कोटा 1631 ई. तक एक परगना बना रहा जिसे इसी वर्ष शाहजहाँ ने राव माधोसिंह के राजत्व में स्वतंत्र राज्य का स्वरूप प्रदान कर दिया। यहीं से कोटा के स्वतन्त्र राज्य की स्थापना होती है।[1] राव माधोसिंह के पाँच पुत्र थे - मुकुन्दसिंह, मोहनसिंह, जुझारसिंह, कन्हीराम और किशोरसिंह। मुगल साम्राज्य की सेवा हेतु बल्ख एवं बदक्शा जाते समय राव माधोसिंह अपने राज्य का शासन मुकुन्दसिंह के सुपुर्द कर गये थे। मुकुन्दसिंह ने अपने पिता की आज्ञा से महाराजाधिराज की पदवी धारण कर ली।[2] राव माधोसिंह के अन्य चार पुत्रों को जागीरें प्रदान की गईं। इस व्यवस्था से कोटा राज्य में जागीर प्रथा का उद्भव हुआ। कोटा राज्य में जागीर प्रथा के उद्भव के पश्चात कोटा के महारावों के संरक्षण में इसका स्वरूप परिवर्तित होता चला गया। राजस्थान के राज्यों ने मुगलों से लेकर अंग्रेजो के शासन काल तक अनेक उतार चढ़ावों को देखा। अलग-अलग काल में जागीरी प्रथा के स्वरूप में भी परिवर्तन आता गया। साथ ही जागीरी क्षेत्रों के अधिकार व राज्य के प्रति कर्तव्य भी समयानुसार परिवर्तित होते गये।

राजपूत राजाओं ने मुगल सम्राट का अनुकरण करते हुए सामन्तों को नियन्त्रित करने के प्रयास किये। मुगलों की मनसबदारी प्रथा से प्रेरणा लेकर राजपूत राजाओं ने भी अपने सामन्तों को पद एवं प्रतिष्ठा के आधार पर विभिन्न श्रेणियों में विभाजित कर दिया। इस प्रकार सामन्त कई श्रेणियों में विभक्त हो गये थे। प्रस्तुत शोध पत्र कोटा रियासत के जागीरदारों की श्रेणियों तथा उपाधियों पर आधारित है। सामन्तों की श्रेणियाँ विभिन्न राज्यों में अलग-अलग थी। राज्यों में सामन्तों की श्रेणियाँ उनके मान-सम्मान तथा पद-प्रतिष्ठा पर आधारित थीं।

सामन्तों के पद उनकी सामाजिक-राजनीतिक कार्यवाहियों द्वारा परम्परागत रूप से अर्जित किये हुए थे और उसी अनुसार उनकी राजनीतिक प्रतिष्ठा एवं मान-सम्मान पैतृक परम्परा में बना रहता था। राजस्थान में सामन्तों का स्तरीकरण ऊँच नीच के अनुसार न होकर मान-सम्मान पर आधारित था। इस रूप में स्तरीकरण का पैमाना आर्थिक दृष्टि से अधिक सामाजिक व्यवहार पर प्रचलित रहता था।[3] कोटा में मोहनसिंहोत एवं किशोरसिंहोत जागीरदारों की राज परिवार के भाई होने के नाते अन्य ठिकानेदारों की अपेक्षा विशेष प्रतिष्ठा थी।[4] अतः सामन्त पद-प्रतिष्ठा परम्परागत होने के साथ-साथ शासक द्वारा भी प्रदान की जा सकती थी।

सामन्तों को उनके पद व प्रतिष्ठा के अनुसार उपाधियाँ तथा मान सम्मान दिया जाता था। मान सम्मान की अभिव्यक्ति का माध्यम सामन्तों के दरबार में बैठने का क्रम अर्थात शासक के पास, उसके दायीं ओर उसकी बांयी ओर अथवा उसके सामने, बैठने एवं खड़े रहने आदि से व्यक्त होता था। इसके अतिरिक्त

राजदरबार या बाहर सामन्त के प्रति शासक का सामाजिक, आर्थिक व्यवहार भी जागीरदार की श्रेणी को निश्चित करता था। ताजीम, बाँह पसाव, हाथ कुरब, जीकारा, भेंट आदि ग्रहण करते समय शासक का उठकर भेंट ग्रहण करना अथवा सामन्त की भेंट को बैठे-बैठे ही स्वीकार करना, सामन्त को पैर में सोना धारण करने का अधिकार आदि कई ऐसे मान सम्मान थे जो शासक और सामन्त के सम्बन्धों को प्रकट तो करते ही थे साथ ही इन सम्मानों से सामन्त की प्रतिष्ठा/श्रेणी भी निश्चित होती थी।[5]

कोटा के जागीरदारों की विभिन्न श्रेणियाँ

कोटा के जागीरदारों को मुख्यतः दो श्रेणियों में विभाजित किया गया था देशथी एवं हुजूरथी। कोटा महाराव के निकट के कुटुम्बी 'राजवी' कहलाते थे और अन्य सरदार अमीर उमराव के नाम से सम्बोधित किये जाते थे।

देशथी (देश के) - ऐसे जागीरदार को देश का जागीरदार भी कहते थे। ये जागीरदार गाँव में शान्ति एवं व्यवस्था स्थापित करते थे। इनमें तन के जागीरदार भी होते थे जो राजा के निकटतम रिश्तेदार भाई, चाचा आदि होते थे। पलायथा, कोटड़ा, सांगोद एवं कोयला इसी प्रकार की जागीरें थीं। ये राज्य में रहकर निश्चित घोड़े, पैदल एवं सैनिक रखते थे एवं जागीर की आय से सब खर्च चलाते थे। ये राजा के प्रति अपने कर्तव्यों को समझ कर युद्ध में सम्मिलित होते थे। ऐसे जागीरदारों में अधिकांश हाड़ा वंश के राजपूत होते थे।[6]

झालाओं के आगमन एवं जालिमसिंह के प्रभाव में आने के पश्चात् झाला राजपूत जागीरदारों की संख्या भी राज्य में काफी मात्रा में हो गई। इन जागीरदारों को किसी प्रकार के कर नहीं देने पड़ते थे। नये उत्तराधिकारी की नियुक्ति पर उन्हें नजराना देना पड़ता था एवं प्रतिवर्ष तनखा नाम से मामूली सी राशि राज्य में जमा करवानी होती थी। जागीरदार राजा को समय-समय पर नजर एवं भेंट आदि प्रदान किया करते थे।[7]

हुजूरथी :- इन जागीरदारों को दरबार के साथ युद्धों में जाना जरूरी होता था। उन्हें नौकरी के एवज में जागीरें प्रदान की जाती थी।[8] जागीरदार हुजूरथी दरबार के साथ मुगल सेना में सम्मलित होते थे। मुगल काल में प्रायः राजपूत नरेशों को शाही सेना के साथ देश विजय के लिए रहना पड़ता था। अपने मनसब का जाप्ता तो इनके साथ ही रहता था परन्तु इसके अतिरिक्त वीर और विश्वास पात्र जागीरदार भी अपने-अपने सैनिकों के साथ रहते थे।

जागीरों के अन्य प्रकारो में सैनिक जागीरें थीं जोमूण्डकटो (युद्ध में वीरगति प्राप्त करने वाले), बन्दूकों की चाकरी, पालतूपेट रोटी, रमराठौड़ी, घोड़ों की चाकरी इत्यादि के लिए दी जाती थी। इसके अतिरिक्त बख्शाऊ जागीरें थीं जो राज्य परिवार के सदस्यों, रानियों, रिश्तेदारों, मेहरबानी करके धायमाँ, पासवान, खवास, नाई को चाकरी मेंपटेल, पटवारी, चौधरी, बलाई, कानूनगो को, नगारखाने (नक्कार खाना) में चौपहर चाकरी, राज्य परिवार के वैद्य चिकित्सक, चारण-भाट, ड्योडी की चाकरी इत्यादि हेतु जागीरे दी जाती थीं। पुण्यार्थ, माफी, डोहली की जागीरें भी होती थी। ऐसी जागीरों में पुण्यार्थ, दान में दी गई तथा मंदिरों आदि में दान की गई भूमि आती थी। इन जागीरों से किसी प्रकार का कर नहीं लिया जाता था तथा इनकी सम्पूर्ण आय माफीदार मंदिर को मिलती थी।[9] राज्य में उदक जागीरें भी होती थी। ब्राह्मण, बैरागी आदि को जो भूमि दान में दी जाती थी वह उदककृष्ण पण कहलाती थी। महाराव की शुभ चिन्तगी करने पर, एकादशी द्वादशी, मृत्यु के समय पाँचवादान, द्वादश आदि पर जो भूमि दान में दी जाती थी वह कर मुक्त एवं वंश पम्परागत कर दी जाती थी। यह कभी वापस नहीं ली जाती थी। उदक जागीरों के भी पट्टे दिये जाते थे।[10]

जागीरदारों की उपाधियाँ

राजस्थान के शासकों द्वारा अपने सामन्तों को उपाधियाँ प्रदान की जाती थीं जो राज्य में उनकी प्रतिष्ठा एवं सम्मान का सूचक थी। यह उपाधियाँ सामन्त की प्रतिष्ठा के साथ ही उसके राज्य में महत्वपूर्ण स्थान को भी व्यक्त करती थी।

कोटा राज्य में भी कोटा नरेश द्वारा जागीरदारों को उपाधियाँ प्रदान की गई थीं। कोटा राज्य में ऐसे जागीरदार जिनका महाराव से निकट का सम्बन्ध था वे राजवी कहलाते थे।[11] इनके अतिरिक्त अन्य सरदार अमीर उमराव के नाम से सम्बोधित किये जाते थे। कोटड़ा बम्बूलिया सांगोद, आमली, खेरला, अन्ता तथा मूण्डली के जागीरदार किशोरसिंहोत परिवार के थे। इनमें से कुछ कम दर्जे में मोहनसिंहोत घराने के सरदार थे। किशोरसिंहोत व मोहनसिंहोत घराने कोटा नरेश के भाईबन्धुओं के थे। इनका मुखिया पलायता का ठाकुर था। इन सभी को 'आपजी' कहा जाता था। इन्हीं घरानों से राज्य गद्दी के लिए गोद लेने की प्रथा थी।[12] महाराव उम्मेदसिंह द्वितीय भी कोटड़ा के जागीरदार छगनसिंह के पुत्र थे जिन्हें महाराव शत्रुशाल द्वितीय द्वारा गोद लिया गया। ये कोटा के उत्तराधिकारी हुए। कोटड़ा के जागीरदारों को 'महाराजा' की उपाधि प्राप्त थी। इस प्रकार कोयला का ठिकाना रावमाधोसिंह द्वारा अपने चौथे पुत्र कन्हीराम को प्रदान किया गया था। इन्हें भी 'आप' की उपाधि से सम्बोन्धित किया जाता था। कुनाड़ी का ठिकाना कोटा नरेश मुकुन्दसिंह द्वारा 1644 में देलवाड़ा (मेवाड़) के राजराणा जीतसिंह झाला के तीसरे पुत्र अर्जुनसिंह को 'राज' की उपाधि सहित प्रदान किया था।

हरनौदा ठिकाने के जागीरदार राव अर्थात् भाट जाति के थे यहाँ के जागीरदार प्रताप सहायकों कोटा राज्य से 'राव राजा' की उपाधि तथा तीन गाँव की जागीर प्राप्त हुई थी। सन् 1919 में राव राजा शंकर सहाय इस जागीर के उत्तराधिकारी हुए।

कोटा के महाराव दुर्जनशाल ने 1727 में बम्बूलिया एक दर्जन गाँव सहित महाराजा सूरजमल को जागीर में दिया था। बम्बूलिया के जागीरदारों को 'महाराजा' की उपाधि प्राप्त थी।

इसी प्रकार कोटा में सम्मिलित कोटरियात के राज्यों के जागीरदारों की भी विशेष प्रतिष्ठा थी। इन्द्रगढ़, खातौली, बलवन, पुसोद, गैंता, करवाड़, पीपल्दा एवं आंतरदा कोटरियात के राज्य कहलाते थे। इन्द्रगढ़, खातौली, बलवन व आंतरदा के जागीरदारों को मुगल काल से ही 'महाराजा' का खिताब मिला हुआ था जो कोटा महाराव के समय भी बदस्तूर जारी रहा। इन जागीरदारों की प्रजा इन्हें 'दरबार' कहती थी। गैंता के जागीरदारों को भी 'महाराजा' की पदवी मिली हुई थी। गैंता करवाड़, पुसोद और पीपल्दा के सरदारों को इनकी प्रजा 'सरकार' कहकर सम्मान करती थी।[13] कोटा राज्य के दरीखाने की बैठक में यहाँ के जागीरदारों का उनकी प्रतिष्ठा के अनुसार निश्चित क्रम था। महाराव द्वारा उन्हें ताजीम प्रदान की जाती थी।

उपसंहार

इस प्रकार कोटा महाराव द्वारा अपने जागीरदारों को कई उपाधियाँ एवं विशेष सम्मान प्रदान किये गये थे। राजस्थान के प्रत्येक रजवाड़े के अपने कायदे-कानून थे। उन्हीं के अनुरुप ठिकानेदार की श्रेणियाँ एवं दरबार में स्थान सुनिश्चित किया जाता था। कोटा दरबार द्वारा भी यहाँ के जागीरदारों को उन्हीं नियमानुसार आतिथ्य दिया जाता था। जागीरदारों की श्रेणियाँ एवं दरबार में स्थान कोटा रियासत में सेवा के अनुसार जागीरदारों का पद निर्धारित होता था। कोटा राज्य में ताजीमी सरदारों की संख्या 36 थीं। कोटा दरबार के दरीखाने की बैठक में जागीरदार के बैठने का क्रम निश्चित था।

कोटा दरबार द्वारा जागीरदारों को उनकी सेवाओं के बदले में समय-समय पर सम्मानित किया जाता था। जैसे लाख पसाव देना, कुरब देना, सिरोपाव देना, विशिष्ट व्यक्तियों की पेशवाई में सामा जाना इत्यादि। इस प्रकार कोटा महाराव द्वारा अपने जागीरदारों को श्रेणियों में विभाजित कर कई उपाधियाँ एवं विशेष सम्मान प्रदान किये गये थे।

सन्दर्भ

1. (अ) मथुरालाल शर्मा : कोटा राज्य का इतिहास भाग -1, पृ. 108
   (ब) जगदीश सिंह गहलोत : राजपूताने का इतिहास कोटा राज्य - पृ. 42
2. (अ) कागजात सम्वत् 1704, सीगा मुतफर्रिकात।
   (ब) मथुरालालशर्मा : कोटा राज्य का इतिहास भाग -1, पृ. 134
3. जी. एन. शर्मा : सोशल लाईफ इन मिडाइवल राजस्थान, पृ. 145
4. मथुरालाल शर्मा : कोटा राज्य का इतिहास भाग 1, पृ. 304
5. जी. एन. शर्मा : सोशल लाईफ इन मिडाइवल राजस्थान, पृ. 146
6. (क) डॉ. मथुरालाल शर्मा : कोटा राज्य का इतिहास, भाग-1, पृ. 145
   (ख) डॉ. रामप्यारी शास्त्री : झाला जालिमसिंह, पृ. 305
7. उपरोक्त, पृ. 306
8. डॉ. मथुरालाल शर्मा : कोटा राज्य का इतिहास, भाग-1 पृ. 146
9. राजस्थान राज्य अभिलेखागार कोटा, बस्ता नं. 115, 1859-70 ई.
10. राजस्थान राज्य अभिलेखागार कोटा, बस्ता नं. 115, 1921-23 ई.
11. आर. पी. व्यास : आधु. राज. का वृहत इतिहास, पृ. 326
12. मथुरालाल शर्मा : कोटा राज्य का इतिहास भाग-2, पृ. 412-13
13. शिवदान सिंह हाडा कोटरियात का संक्षिप्त इतिहास पृ. 10-11